विशेष अध्ययन –कबीरदास

एम.ए. , हिन्दी Semester-III, Paper- V

पाठ के लेखक

डॉ. सूर्य कुमारी. पी.
एम.ए., एम. फिल., पीएच.डी.
हिन्दी विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय
हैदराबाद।

डॉ. अन्नदासु सरला देवी
एम.ए., एम.फिल., पीएच.डी.
हिन्दी विभाग, हेच.ओ.डी.
यस. यस. & यन कलाशाला
नरसरावपेट।

लेखक और संपादक

डॉ. एम. मंजुला
एम.ए., एम. फिल., पीएच.डी.
हिन्दी विभाग
रामकृष्ण हिन्दू हाई स्कूल
अमरावती, गुंटूर।

निर्देशक
डॉ . नागराजु बट्टू
M.H.R.M, M.B.A., L.L.M, M.A.(Psy), M.A (Soc), M.Ed., M.Phil, Ph.D
दूरस्थ शिक्षा केंद्र, आचार्या नागार्जुना विश्वविद्यालय
नागार्जुना नगर – 522510
Phone No-0863-2346208, 0863-2346222,
0863-2346259 (अध्ययन सामाग्री)
Website : www.anucde.info
E-mail : anucdedirector@gmail.com

एम. ए., हिन्दी - विशेष अध्ययन –कबीरदास

First Edition :2023

© Acharya Nagarjuna University

This book is exclusively prepared for the use of students of M.A, HINDI Centre for Distance Education, Acharya Nagarjuna University and this book is meant for limited circulation only.

Published by:

Dr. NAGARAJU BATTU,

Director

Centre for Distance Education

Acharya Nagarjuna University

Printed at:

FOREWORD

Since its establishment in 1976, Acharya Nagarjuna University has been forging ahead in the path of progress and dynamism, offering a variety of courses and research contributions. I am extremely happy that by gaining 'A' grade from the NAAC in the year 2016, Acharya Nagarjuna University is offering educational opportunities at the UG, PG levels apart from research degrees to students from over 443 affiliated colleges spread over the two districts of Guntur and Prakasham.

The University has also started the Centre for Distance Education in 2003-04 with the aim of taking higher education to the door step of all the sectors of the society. The centre will be a great help to those who cannot join in colleges, those who cannot afford the exorbitant fees as regular students, and even to housewives desirous of pursuing higher studies. Acharya Nagarjuna University has started offering B.A., and B.Com courses at the Degree level and M.A., M.Com ,M.Sc., M.B.A., and L.L.M., courses at the PG level from the academic year 2003-2004onwards.

To facilitate easier understanding by students studying through the distance mode, these self-instruction materials have been prepared by eminent and experienced teachers. The lessons have been drafted with great care and expertise in the stipulated time by these teachers. Constructive ideas and scholarly suggestions are welcome from students and teachers involved respectively. Such ideas will be incorporated for the greater efficacy of this distance mode of education. For clarification of doubts and feedback, weekly classes and contact classes will be arranged at the UG and PG levels respectively.

It is my aim that students getting higher education through the Centre for Distance Education should improve their qualification, have better employment opportunities and in turn be part of country's progress. It is my fond desire that in the years to come, the Centre for Distance Education will go from strength to strength in the form of new courses and by cateringtolargernumberofpeople.MycongratulationstoalltheDirectors,AcademicCoordinators, EditorsandLesson-writersoftheCentre who have help edit the seen devours.

Prof.P.RajaSekhar
Vice-Chancellor
Acharya Nagarjuna University

SEMESTER – III

PAPER – V: SPECIAL STUDY OF AN AUTHOR - KABIRDAS

विशेष अध्ययन –कबीरदास

प्रथम खण्ड –क

पाठ्य पुस्तक :-

कबीर ग्रंथावली : संपादक *:* डॉ . श्याम सुन्दर दास।

प्रकाशक *,* नागरी प्रचारिणी सभा *,* काशी।

पाठ्यांश :

क. विस्तृत अध्ययन हेतु निर्धारित अंश :

1. गुरुदेव कौ अंग ।
2. सुमिरन कौ अंग ।
3. बिरह कौ अंग।
4. ज्ञान बिरह कौ अंग।
5. पारचा कौ अंग ।
6. निहकर्मी पवित्रता कौ अंग।
7. चितवनि कौ अंग।
8. मन कौ अंग
9. माया कौ अंग
10. सहज कौ अंग
11. सांच कौ अंग

ख. पद : 1 से 30 तक

आलोचना विषय

निर्गुण मत और कबीर।

भक्ति आंदोलन और कबीरदास।

मध्यकालीन युगीन परिस्थितियाँ।

संत काव्य परम्परा।

कबीर की जीवनी एवं व्यक्तित्व।

कबीर का साहित्य।

कबीर की सामाजिक विचारधारा।

निर्गुण भक्ति एवं कबीरदास।

कबीर की दार्शनिक विचारधारा।

कबीर का रहस्यवाद।

कबीर का काव्य – शिल्प।

कबीर का उलटवासियाँ।

कबीरदास की प्रासंगिकता।

कबीर के साहित्य में प्रयुक्त कुछ पारिभाषिक शब्द-आजपाजाप , अनहदनाद , उनमन , निरंजन , सुरति निरति सहज , शून्य नाद-बिन्दु औंधा कुआँ।

व्याख्या के लिये स्वीकृत पाठ्यक्रम

1. गुरु कौ अंग
2. विरह कौ अंग
3. परचा कौ अंग
4. माया कौ अंग
5. उपदेश कौ अंग

सहायक ग्रंथ :-

1. कबीर की विचार धारा – गोविन्द त्रिगुणयत , साहित्यनिकेतन , कानपुर ।
2. हिन्दी का निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि-डॉ. गोविन्द त्रिगुनायत , साहित्यनिकेतन कानपुर।
3. निर्गुण काव्य : प्रेरणा और प्रवृत्ति – डॉ. रामपाण्डेय , सद्भाव निरंजन , प्रकाशन , दिल्ली।
4. संतों की सांस्कृतिक संसुती – डॉ. राज रतन पाण्डेय , उपकार प्रकाशन , दिल्ली।
5. कबीर मीमांसा – डॉ . रामचन्द्र तिवारी – लोक भारती प्रकाशन , इलाहाबाद।
6. कालजयी कबीर – संपादक – हर महेंद्र सिंह गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी , अमृतसर।
7. कबीर साहित्य की परख – परशुराम चतुर्वेदी , भारती भण्डार , इलाहाबाद।
8. कबीर – हजारी प्रसाद द्विवेदी राजकमल प्रकाशन , दिल्ली।
9. हिन्दी काव्य में निर्गुण संप्रदाय – पीताम्बर दत्त बडथ्वाल अवध पब्लिशिंग हाउस , लखनऊ।
10. कबीर : व्यक्तित्व , कृतित्व एवं सिद्धांत – सरनाम सिंह शर्मा , भारतीय शोध संस्थान , गुलावपुरा।
11. संतों रह दुओ हम दीठा – संपादक – भगवानदेव पाण्डेय , विश्वविद्यालय प्रकाशन , वाराणासी।
12. कबीर दर्शन : रामजी लाल सहायक , लखनऊ विश्वविद्यालय , लखनऊ।
13. आधुनिक कबीर – डॉ . राजदेव सिंह , लोक भारती , इलाहाबाद।
14. कबीर समग्र : प्रथम खण्ड , द्वितीय खण्ड – प्रो . पुगेश्वर , हिन्दी प्रचारक संस्थान , वारणासी।

अनुक्रमणिका

प्रथम खण्ड :

1.	भक्ति काल – निर्गुण मत और कबीर	1.1-1.13
2.	मध्यकालीन युगीन परिस्थितियाँ – भक्ति आंदोलन और कबीर	2.1-2.17
3.	संत काव्य परंपरा	3.1-3.20
4.	कबीर की जीवनी एवं व्यक्तित्व	4.1-4.11
5.	निर्गुण भक्ति एवं – कबीर	5.1- 5.13
6.	कबीर का साहित्य (सामाजिक एवं दार्शनिक विचारधाराएँ)	6.1-6.11
7.	कबीर का रहस्यवाद	7.1-7.12
8.	कबीर का काव्य शिल्प (भाषा शैली)	8.1-8.14
9.	कबीरदास (उलटवासियाँ और प्रासंगिकता)	9.1-1.15
10.	कबीर के साहित्य में प्रयुक्त कुछ पारिभाषिक शब्द	10.1-10.11

द्वितीय खण्ड :

क) व्याख्या के लिए निर्धारित अंश (पद 1 से 30 तक)

11.	गुरुदेव कौ अंग	11.1-11.19
12.	विरह कौ अंग	12.1-12.13
13.	परचा कौ अंग	13.1-13.13
14.	माया कौ अंग	14.1-14.15
15.	उपदेश कौ अंग, मन कौ अंग	15.1-15.9

ख) विस्तृत अध्ययन हेतु निर्धारित अंश

16.	सुमिरन, सांच कौ अंग	16.1-16.15
17.	ग्यान बिरह, निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग	17.1-17.11
18.	चितावणी, सहज कौ अंग	18.1-18.11

1. भक्ति काल – निर्गुण मत और कबीर

1.0. उद्देश्य

हिन्दी साहित्यक के इतिहास में सन् 1638 से 1700 तक के काल को भक्ति काल की संज्ञा दी गई है। इस काल से संबंधित सगुण उक्ति और निर्गुण भक्ति के बारे में जानना और निर्गुण भक्ति के मत और उसमें कबीर के बारे में जानना इस इकाई का मुख्य उद्देश्य है। इस इकाई को पढ़ने के बाद हम भक्तिकाल में निर्गुण भक्ति का समय, निर्गुण भक्ति की विशेषताएँ एवं प्रमुख कवि कबीर के बारे में जान पाएंगे।

रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 भक्ति काल

1.3 निर्गुण मत और कबीर

1.4 संत काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

1.5 कबीर – भक्ति पद्धति

1.6 सारांश

1.7 बोध प्रश्न

1.8 सहायक ग्रंथ

1.1 प्रस्तावना

भक्ति एक रागात्मक प्रवृत्ति है , हृदयस्थ भाव है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में जिस काल को 'भक्तिकाल' नाम दिया गया था , वह उस देश के जीवन में नवीन सांस्कृतिक चेतना का काल था। निर्गुण , निराकार , निरंजन के रिप में भगवान की आराधना करने वाले निर्गुण भक्ति धारा के लोग हैं। यह भी दो शाखाओं में बाँटा गया है। ज्ञानाश्रईशाखा और प्रेमाश्रयी शाखा। ज्ञानमार्गि भक्ति का अनुसरण करनेवाले संत , ज्ञान के पक्ष की बात कहते समय भले ही रूपातीत की बात करते हो , भक्ति के पक्ष में जिस प्रियतम की भावना रखते हैं। वह सामान्य मानवीय क्रिया-व्यापारों से अछूता नहीं रह पाता। ज्ञानाश्रयी शाखा के साहित्य की मूल चेतना की अव्दैतता उसकी निराकारता और भक्ति द्वारा उसकी उपलब्धि के भावों में निहित हैं।

हिन्दी में भक्ति साहित्य की रचना के तीन प्रमुख कारण हैं। उस समय तक मुसलमान शासक युद्धों से ऊब चुके थे। वे जनता से संबंध बनाकर अपने राज्यको जमाना चाहते थे। हिन्दू जनता भी जो कि शासित है , अपने धर्म में सुधार चाहती थी। दोनों धर्मों कि जनता में भाईचारे की प्रकृति बढ़ रही थी। निर्गुण पंथ का मार्ग प्रशस्त किया।

1.2. भक्ति काल

हिन्दी साहित्य के इतिहास में **भक्ति काल** महत्वपूर्ण स्थान रखता है। आदिकाल के बाद आये इस युग को 'पूर्व मध्यकाल' भी कहा जाता है। इसकी समयावधि 1375 वि.सं से 1700 वि.सं तक की मानी जाती है। यह हिंदी साहित्य का श्रेष्ठ युग है जिसको जॉर्ज ग्रियर्सन ने **स्वर्णकाल,** श्यामसुन्दर दास ने **स्वर्णयुग,** आचार्य राम चंद्र शुक्ल ने **भक्ति काल** एवं हजारी प्रसाद द्विवेदी ने **लोक जागरण** कहा। सम्पूर्ण साहित्य के श्रेष्ठ कवि और उत्तम रचनाएं इसी में प्राप्त होती हैं।

दक्षिण में आलवार बंधु नाम से कई प्रख्यात भक्त हुए हैं। इनमें से कई तथाकथित नीची जातियों के भी थे। वे बहुत पढ़े-लिखे नहीं थे, परंतु अनुभवी थे। आलवारों के पश्चात दक्षिण में आचार्यों की एक परंपरा चली जिसमें रामानुजाचार्य प्रमुख थे। रामानुजाचार्य की परंपरा में रामानंद हुए। उनका व्यक्तित्व असाधारण था। वे उस समय के सबसे बड़े आचार्य थे। उन्होंने भक्ति के क्षेत्र में ऊंच-नीच का भेद तोड़ दिया। सभी जातियों के अधिकारी व्यक्तियों को आपने शिष्य बनाया। उस समय का सूत्र हो गयाः

जाति-पांति पूछे नहिं कोई। हरि को भजै सो हरि का होई ।।

रामानंद ने विष्णु के अवतार राम की उपासना पर बल दिया। रामानंद ने और उनकी शिष्य-मंडली ने दक्षिण की भक्तिगंगा का उत्तर में प्रवाह किया। समस्त उत्तर-भारत इस पुण्य-प्रवाह में बहने लगा। भारत भर में उस समय पहुंचे हुए संत और महात्मा भक्तों का आविर्भाव हुआ। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने पुष्टि-मार्ग की स्थापना की और विष्णु के कृष्णावतार की उपासना करने का प्रचार किया। उनके द्वारा जिस लीला-गान का उपदेश हुआ उसने देशभर को प्रभावित किया। अष्टछाप के सुप्रसिध्द कवियों ने उनके उपदेशों को मधुर कविता में प्रतिबिंबित किया।

इसके उपरांत माध्व तथा निंबार्क संप्रदायों का भी जन-समाज पर प्रभाव पड़ा है। साधना-क्षेत्र में दो अन्य संप्रदाय भी उस समय विद्यमान थे। नाथों के योग-मार्ग से प्रभावित संत संप्रदाय चला जिसमें प्रमुख व्यक्तित्व संत कबीरदास का है। मुसलमान कवियों का सूफीवाद हिंदुओं के विशिष्टाद्वैतवाद से बहुत भिन्न नहीं है। कुछ भावुक मुसलमान कवियों द्वारा सूफीवाद से रंगी हुई उत्तम रचनाएं लिखी गईं।

संक्षेप में भक्ति-युग की चार प्रमुख काव्य-धाराएं मिलती हैं :

सगुण भक्ति : रामाश्रयी शाखा ; कृष्णाश्रयी शाखा

निर्गुण भक्ति : ज्ञानाश्रयी शाखा ; प्रेमाश्रयी शाखा

1.3 निर्गुण मत और कबीर

निर्गुण संस्कृत भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ विशिष्टता रहित या गुण रहित, स्वरूप रहित हुता है। वेदांत के रूढ़िवादी हिंदू दर्शन के बुनियादी महत्त्व की अवधारणा, जो यह प्रश्न उठाता है कि सर्वोच्च सत्ता 'ब्रह्म' को **निर्गुण** कहा जाए या सगुण । हिंदी साहित्य के इतिहास में मध्यकाल के पूर्व भाग को भक्तिकाल की संज्ञा दी गई हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसकी समय सीमा संवत् 1375 – संवत् 1700 तक स्वीकार की है। भक्तिकाल हिंदी साहित्य का "स्वर्णयुग " है। भक्तिकाल की दो प्रमुख काव्यधाराएँ हैं –

1. निर्गुण काव्यधारा
2. सगुण काव्यधारा

निर्गुण के अंतर्गत ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी काव्यधारा को स्थान प्राप्त है। वहीं सगुण के अंतर्गत रामकाव्य और कृष्णकाव्य आते हैं।

निर्गुण संप्रदाय के संतों ने निराकार, अगोचर, अगम, अविगत, वर्णनातीत, शब्दातीत, ईश्वर को प्राप्त करने के लिए ज्ञान एवं प्रेम को आधार बनाया। जिन कवियों ने ज्ञान को प्रश्रय दिया वे ज्ञानाश्रयी काव्यधारा के और जिन कवियों ने प्रेम को आधार बनाया में प्रेमाश्रयी काव्यधारा के कवि माने जाते हैं। लोक कल्याण, लोकमंगल, मानवता के उच्च आदर्शों की अपने काव्य में प्रतिष्ठा करने वाला सत्यम् – शिवम – सुंदरम के सूत्र को अपने में समाहित करने वाला संपूर्ण भक्ति काव्य हिंदी साहित्य का अनमोल एवं अनुपम रत्न है। भक्तिकाल की ज्ञानाश्रयी काव्यधारा को डॉ. रामकुमार वर्मा ने संतकाव्य परंपरा के नाम से अभिहित किया।

संतकाव्य की विशेषताओं पर विचार करने से पूर्व हमारे सामने सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि संत कौन है? स्वयं कबीरदास संत के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहते हैं –

निरबैरी, निहकामता, साईं सेती नेह ।
विषयां सौं न्यारा रहै, संतनि का अंग ऐह ।।

दूसरे दोहे में वे कहते हैं – वृक्ष कबहुँ न फल चखै ,नदी न संचै नीर ।
परमारथ के कारने, साधु धरा सरीर ।।

भारतीय आर्यभाषा में "संत" शब्द वैदिक साहित्य में ब्रह्म के लिए प्रयुक्त हुआ है। गीता में कहा गया है "सद्भावे साधु भावे च संदित्येत्प्रयुज्यते "वास्तव में सद्भाव व साधु भाव रखकर ही प्राणीमात्र से प्रेम करना, सर्वभूत हित करना और राग द्वेष आदि द्वंद्वों में ना पड़ना ही संत है। महाभारत में संत का प्रयोग सदाचारी के लिए हुआ है। भागवत में इस शब्द का प्रयोग पवित्रात्मा के लिए हुआ। किंतु लोकवाणी में यह शब्द कुछ परिवर्तित हो गया और इसका अर्थ भी बदल गया ।

डॉ. पितांबरदत्त बड़थ्वाल का मत है किस संत शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से संभव है वह सत का बहुवचन भी हो सकता है जिसका हिंदी में एकवचन का प्रयोग हुआ है। वह शांत का अपभ्रंश रूप हो सकता है जैसा पाली भाषा में हुआ है। पहली व्युत्पत्ति के अनुसार संत का अर्थ होगा वह व्यक्ति विशेष जिसे सत्य की अनुभूति हो गई है दूसरी व्युत्पत्ति के अनुसार जिसकी कामनाएँ शांत हो चुकी हैं। जो निष्काम है। यह दोनों ही भावार्थ निर्गुण संतों पर निरूपित होते हैं। संत शब्द की उत्पत्ति कैसे हुई? सच्चा संत कौन है? इस संबंध में विद्वानों के मत में भिन्नता है लेकिन सर्वमत से हम यह कह सकते हैं कि जो आत्मोन्नति सहित परमात्मा के मिलन भाव को सत्य मानकर लोक-मंगल की कामना करता है वही सच्चा संत है ।

संत काव्य में आध्यात्मिक विषयों की सुंदर एवं सहज अभिव्यक्ति हुई है। गंगा की पवित्रता को अपने में समाहित करने वाला यह लोक जीवन का और लोकमंगल का काव्य है इसमें एक और साधना की कठोरता है तो वहीं दूसरी और ईश्वरीय प्रेम और भक्ति की कोमलता मधुरता एवं सुंदरता भी विद्यमान है। वास्तव में संतकाव्य जनभाषा में लिखा गया ऐसा काव्य है जो सामान्य जन में ज्ञान का प्रकाश पर विकीर्ण करता है। काव्य सौष्ठव की दृष्टि से भी यह एक अनुपम काव्य है। नामदेव इसके प्रवर्तक हैं परंतु कबीर को इस काव्य धारा का शिरोमणि कवि होने का गौरव प्राप्त है। धर्मदास, सुंदरदास, गुरु नानक, दादू दयाल आदि इसकी के प्रमुख कवि हैं।

1.4. संत काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

1. निर्गुण ब्रह्म में आस्था

संत कवियों ने निर्गुण ब्रह्म में आस्था प्रकट करते हुए उसे पुष्प की सुगंध के समान अति सूक्ष्म तथा घट-घट का वासी बतलाया है। इनके ईश्वर का न तो कोई रंग है, न रूप है, न जाति है, न कोई आकार है, न वह जन्म लेता है और न ही वह मर सकता है, वह तो अजर-अमर है, अगोचर है, निराकार है, निर्गुण है, शाश्वत है। कबीर निर्गुण राम की उपासना पर बल देते हुए कहते हैं।

निर्गुण राम, जपहुँ रे भाई।
अविगत की गति, लखि न जाए॥

दशरथ सुत तिहुं लोक बखाना।
राम नाम का मरम है आना॥

संत हरिदास भी कहते हैं –

अचल अघट सम सुख को सागर, घट-घट सबरा राम माही रे।
जन हरिदास अविनासी ऐसा कहीं तिसा हरि नाही रे॥

2. ज्ञान पर बल

निर्गुण भक्ति के संत कवियों ने ईश्वर प्राप्ति का मुख्य साधन ज्ञान माना है। इनके विचार से संत या महात्मा की धार्मिक उच्चता की परख उसके ज्ञान से ही प्राप्त की जा सकती है। संत कवियों के अनुसार आत्मज्ञान के द्वारा ही मनुष्य को इस संसार की क्षणभंगुरता, नश्वरता का बोध होता है। वह परमतत्व को प्राप्त करने के मार्ग में प्रवृत्त होता हैं। इसलिए कबीर कहते हैं।

पाछे लागा जाइ था, लोक वेद के साथि।
आगे थे सतगुरु मिल्या दीपक दीया हाथि॥

सद्गुरु की कृपा से कबीर को ज्ञान रूपी दीपक प्राप्त हुआ और उन्हें यह बोध हुआ –

पोथी पढ़ -पढ़ जग मुआ पंडित भया न कोय ।
ढाई आखर प्रेम के पढ़े सो पंडित होय ।।

इतना ही नहीं वह कहते हैं –

जो वो एकै जांणिया, तौ जाण्या सब जाण ।
जो वौ एकै न जांणिया ,तौ सब जांण अजाण ।।

3. गुरु का महत्व

संतकाव्य के सभी कवियों ने गुरु के महत्व को प्रतिपादित करते हुए उसे ईश्वर से भी अधिक महत्व दिया है क्योंकि ईश्वर तक पहुंचाने वाला गुरु ही है, जो अपने शिष्यों को अज्ञानता के अंधकार से निकाल कर, उन्हें ईश भक्ति के पथ पर अग्रसर करता है।

कबीर कहते हैं –

गुरु गोविंद दोऊ खड़े काके लागूं पाय ।
बलिहारी गुरु आपने जिन गोविंद दियो बताय ।।

नामदेव भी कहते हैं –

सुफल जनम मोको गुरु कीना ।
दुख बिसार सुख अंतर दीना।।
ज्ञान दान मोको गुरु दीना।
राम नाम बिन जीवन हीना ।।

तो वहीं पर रज्जबदास कहते हैं –

जीव रचा जगदीश ने, बांधा काया मांहि।
जन रंजन मुक्ता किया, तौ गुरु सम कोई नाहि ।।

4. जाति-पांति का विरोध

संत काव्य के सभी संतों का एक नारा था, सूत्र था जिसके आधार पर उन्होंने जाति-पाति का विरोध किया। वह है

जाति पाति पूछे न कोई ,हरि को भजे सो हरि का होई ।

मानव धर्म की प्रतिष्ठा कर इन संत कवियों ने ईश्वर भक्ति का अधिकारी सभी को बताया। उनकी दृष्टि में सभी मनुष्य समान हैं। चाहे वह ब्राह्मण हो, वैश्य हो, क्षत्रिय हो या फिर शुद्र। कबीर, रैदास आदि कवि निम्न जाति के थे परंतु इसमें इन्हें कोई आपत्ति ना थी ।

कबीर कहते हैं – जाति न पूछो साधु की पूछ लीजिए ज्ञान
मोल करो तलवार का पड़ी रहन दो म्यान ।।

5. बहुदेववाद का खंडन

संत कवियों ने बहुदेव वाद और अवतारवाद का खंडन करते हुए एकेश्वरवाद पर बल दिया है। हिंदू-मुस्लिम एकता के निमित्त उनकी यह विचारधारा परम उपयोगी सिद्ध हुई। उनका मत है कि ईश्वर एक है, सबका साईं एक है परंतु एक होते हुए भी उसके रूप अनेक हैं ।

कबीर कहते हैं – अक्षय पुरुष इक पेड़ है, निरंजन ताकि डार ।
त्रिदेवा शाखा भये, पात भया संसार ।।

6. रूढ़ियों व बाह्याडंबरों का विरोध

संत कवियों ने तत्कालीन समाज में व्याप्त कुरीतियों, रूढ़ियों तथा धार्मिक आडंबरों का कड़ा विरोध किया। उन्होंने हिंदू- मुस्लिम दोनों के धर्म में निहित बाह्य आडंबरों की निंदा की। वृ रोजा, मूर्ति-पूजा, नमाज, तीर्थयात्रा, बलि - प्रथा आदि की कड़ी आलोचना की । कबीर जहाँ हिंदुओं की मूर्ति पूजा का विरोध करते हुए कहते हैं –

पाथर पूजे हरि मिले तो मैं पूजूँ पहार ।

तो वहीं वे मुसलमानों को कहते हैं

कांकर पाथर जोरि के मस्जिद लई बनाय
ता चढ़ी मुल्ला बांग दे क्या बहरा हुआ खुदाय।।

दिनभर रोजा रखत है राति हनत है गाय ।
यह तो खून वह बंदगी कैसे कैसी खुसी खुदाय ।।

ईश्वर मंदिर-मस्जिद में नहीं बल्कि जग के कण-कण में व्याप्त है। वह घट-घट के वासी हैं परंतु नादान और अज्ञानी मनुष्य इस बात को नहीं समझता। मानव की इस स्थिति का चित्रण निम्न दोहे में हुआ है ।

कस्तूरी कुंडलि बसे, मृग ढूंढै बन माहि ।
ऐसे घट-घट राम हैं, दुनिया देखे नाहि ।।

7. नारी विषयक के दृष्टिकोण

संत कवियों ने नारी के प्रति दो प्रकार की धारणा या दृष्टिकोण प्रकट किया है। पहला उन्होंने नारी को माया का प्रतीक माना है जिसमें उसे महा ठगनी और पापिनी कहते हुए उसे त्याज्य माना है क्योंकि माया के कारण है आत्मा-परमात्मा से दूर हो जाती है और माया ऐसी मोहिनी है, कनक-कामिनी है, जो सब को अपने बस में कर लेती है। ब्रह्मा-

विष्णु-महेश, धनी-निर्धन, भक्त, राजा-रंक सभी माया के बस में होते हैं और अपने लक्ष्य से भटक जाते हैं। कबीर कहते हैं –

माया महाठगनी हम जानी,
त्रिगुण फांस लिए कर डौले, बोले मधुर बानी ।।
केशव के कमला बैठी, शिव के भवन भवानी ।।

वहीं दूसरी और नारी के पतिव्रता, ममतामयी, आदरणीय सत सती रूप की, माँ के रूप में अराधना भी की गई है ।

हरि को जननी की संज्ञा देते हुए कबीर कहते हैं – "हरि जननी मैं बालक तेरा,
काहे न औगुन बकसहु मेरा ।
सुत अपराध करें दिन केते,
जननी के चित रहे न तेते।"

पतिव्रता की महिमा प्रतिपादित करते हुए कबीर कहते हैं –

पतिव्रता मैली भली कालि कुचित कुरूप ।
पतिव्रता के रूप सौ वारि कोटि सरूप ।।

8. भजन तथा नाम-स्मरण की महिमा

संत कवियों ने ईश्वर प्राप्ति के लिए, आवागमन के चक्र से मुक्ति पाने के लिए ईश भजन तथा नाम-स्मरण को आवश्यक माना है। भजन तथा नाम स्मरण को प्रदर्शन का विषय ना बनाकर संत कवियों ने प्रत्येक मनुष्य को तन-मन-वचन-कर्म से तथा पावन हृदय से हरि नाम स्मरण करने की प्रभु का भजन करने की प्रेरणा दी है क्योंकि मनुष्य का जन्म बार-बार नहीं मिलता और यदि उसने अपने इस मानव जन्म को ईश्वर की भक्ति में नहीं लगाया तो उसका जीवन व्यर्थ है । **कबीर कहते हैं –**

कबीर सुमिरन सार है और सकल जंजाल ।

कबीर निर्भय होकर राम नाम जपने की प्रेरणा देते हैं क्योंकि मृत्यु का कोई भरोसा नहीं है ।

कबीर निरभय राम जपि, जब दीव लागै बाति ।
तेल घटै बाति बुझै, तब सोवेगा दिन राति ।

नाम स्मरण में इतनी शक्ति है कि राम नाम जपते-जपते हम स्वयं राममय हो जाते हैं। इसलिए कबीर कहते हैं-

तूं तूं करता तूं भया, मुझ में रही ना हूँ ।
वारी तेरे नावं पर जाऊं जित देखूं तित तूं ।।

डॉ. त्रिलोकीनाथ दीक्षित कहते हैं – "निर्गुण भक्ति का मूल तत्व है, निर्गुण- सगुण से परे अनादि-अनंत-अज्ञात-ब्रह्म का नाम जप । संतों ने नाम जप को साधना का आधार माना है। नाम समस्त संशयों और बंधनों को विच्छिन्न कर देता है। नाम ही भक्ति और मुक्ति का दाता है ।"

9. विरहा भावना का महत्व

यद्यपि संत कवियों ने ईश्वर को निर्गुण निराकार माना है परंतु जहाँ तक प्रेमभाव का संबंध है उन्होंने ईश्वर को अपने प्रिय के रूप में और जीवात्मा को उसकी आराध्या पत्नी के रूप में प्रस्तुत किया है। कबीर कहते हैं –

बिनु बालम तरसै मोर जिया।
दिन नहिं चैन राति नहीं निंदिया, तरस-तरस की भोर किया॥

विरह की अग्नि में तपकर ही प्रेम रूपी स्वर्ण शुद्ध होता है, पवित्र होता है इसलिए कबीर कहते हैं कि विरह को बुरा नहीं कहना चाहिए

बिरहा बिरहा मत कहौ बिरहा है सुल्तान।
जिहिं घट बिरह संचरै सो घट सदा मसान॥

10. रहस्यवाद

ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियों ने रहस्यवाद को सुंदर एवं सरल भाषा में व्यक्त किया है। आत्मा-परमात्मा का कथन करके जब आत्मा का परमात्मा के प्रति अनुराग व्यक्त किया जाता है तो वह रहस्यवाद कहलाता है। इन संत कवियों का रहस्यवाद एक और शंकराचार्य के अद्वैतवाद से तो दूसरी और योग साधना से प्रभावित है। कबीर कहते हैं-

लाली तेरे लाल की जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गई तो मैं भी हो गई लाल॥

तो वहीं अन्य स्थल पर वे कहते हैं आत्मा परमात्मा में कोई भेद नहीं है

जल में कुंभ, कुंभ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल, जल ही समाना, यह तत्व कथ्यौ ग्यानी।

11. लोकमंगल की भावना

संतों की भक्ति साधना व्यक्तिगत होते हुए भी सामाजिक उत्थान एवं कल्याण की भावना से ओतप्रोत है। संतों ने अपने शुद्ध, सरल एवं सात्विक जीवन को लोगों के सामने आदर्श रूप में प्रस्तुत करके समाज सुधार की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है। डॉ. जयनारायण वर्मा कहते हैं कि "इस धारा के प्रतिनिधि कवि कबीर को अपने युग का गांधी कहना सर्वथा समीचीन है उन्होंने हिंदू -मुस्लिम के मनोंमालिन्य रूपी पंक को प्रेम रुपी जल से प्रक्षालित किया। पारस्परिक वैमनस्य को दूर कर ऐक्य की स्थापना की। समाज में फैली विसंगतियों पर, आडंबरों पर, धार्मिक कर्मकांड़ों पर इन संतों ने तीखे व्यंग्य कसे और मानवता के धर्म को प्रतिष्ठित करने के लिए प्रत्येक मनुष्य को सदाचार, सद्भाव रखने और सन्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया, ताकि एक स्वस्थ समाज की स्थापना हो सके। इसके लिए कबीर कहते हैं कि हमें दूसरों में बुराई खोजने के बजाय स्वयं की बुराइयों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए।

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो मन खोज्या आपना मुझ-सा बुरा न कोय।।

यूं ही धर्म के आडंबर पर प्रहार करते हुए कबीर कहते हैं –

माला फेरत जुग भया मिटा ना मनका फेर।
करका मनका डारि कै मनका मनका फेर ।।

12. लोक भाषा का काव्य

भाषा भावों और विचारों की अभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण माध्यम है। संतों ने लोक भाषा को अपने काव्य का विषय बनाया है। डॉ. ब्रजभूषण शर्मा कहते हैं – "संतों ने भाषा के विषय में किसी नियम की अपेक्षा, स्वानुभूति को प्रमुखता दी और उसने विशिष्टता, व्यापकता और भविष्यगामी प्रभावों को बनाए रखा।" संतों की भाषा में खड़ीबोली, राजस्थानी, ब्रज, अवधी, पंजाबी भोजपुरी के शब्दों का मेल पाया जाता है। भाषा में संगीतात्मकता, आंलकारिकता, चित्रात्मकता, भावात्मकता, मधुरता, प्रभावात्मकता का सौंदर्य विद्यमान है। आ० हजारी प्रसाद द्विवेदी संतकबीर को भाषा का अधिनायक, वाणी का डिक्टेटर मानते हुए कहते हैं कि "कबीर के सामने भाषा के करबद्ध दासी रूप में खड़ी हो गई थी।" भाषा जिन संतो की दासी हो उनकी काव्य -भाषा की उत्कृष्टता स्वीकार न करना हमारी मूर्खता ही होगी। वास्तव में संत काव्य सामान्य जनता और उनकी ही भाषा में रचा गया, एक अनुपम काव्य है। विद्वानों ने इनकी भाषा को पंचमेल खिचड़ी और सधूक्कड़ी भाषा कहकर भी पुकारा है।

13. मुक्तक शैली, छंद योजना और अंलकार

संत कवियों ने मुक्तक शैली को आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। मुक्तक में भी इन कवियों ने मुख्य रूप से गेय मुक्तक को ही अपनाया है जिसमें गीतिकाव्य के अधिकांश तत्व मिलते हैं। वास्तव में इनके रहस्यात्मक, नीतिपरक, आत्मानुभव को अभिव्यक्त करने में मुक्त काव्य शैली ही अधिक उपयुक्त थी। संत काव्य में छंद-योजना और अलंकारों का अत्यंत स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। संतों ने दोहा, चौपाई, उल्लाला हरिपद, गीता सार, छप्पय आदि छंदो का विशेष प्रयोग हुआ। इन कवियों ने अपने सबद, बानियाँ, साखियाँ रमैणी में दोहा छंद का सर्वाधिक प्रयोग किया है। कबीर के दोहे बहुत प्रसिद्ध हैं। जैसे –

"साधु ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय।
सार-सार को गहि रहै थोथा देई उड़ाय ।।"

जहाँ तक अलंकारों की बात है, अलंकार भी अनायास ही इनकी भाषा के सौंदर्यवर्धक बन गए हैं। विशेषकर अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, रूपक, दृष्टांत, पुनरुक्ति प्रकाश यमक, श्लेष स्वभावोक्ति, विरोधाभास अलंकार इत्यादि। उपमा और दृष्टांत का उदाहरण देखिए –

माया दीपक नर पतंग भ्रमि-भ्रमि मांहि पड़त ।
कहै कबीर गुरु ग्यान तै एक आध उबरत ।।

रूपक अंलकार माया रूपी दीपक और नर रूपी पतंग। ठीक है और भ्रमि भ्रमि में पुनरूक्ति प्रकाश अलंकार है। दृष्टांत दीपक और पतंगे की स्थिति के जरिए मानव और माया के प्रभाव समझाने का प्रयास किया गया है। नर माया के आकर्षण में फंस जाता है वैसे ही जैसे पतंगा दीपक की ओर आकर्षित होकर अपने प्राण गंवा देता है लेकिन गुरु के ज्ञान से नर इस मुसीबत से बच सकता है ।

14. उलटबासियाँ

संत कवियों ने प्रतीकों अत्यंत कलात्मक प्रयोग किया है उलट बासियों के रूप में। उलटबासियाँ को अर्थ विपर्यय भी कहा गया है। इसमें कभी आध्यात्मिक भावों को ऐसे ढंग से कहता हैं जो सुनने में तो उल्टे लगते हैं परंतु उसमें अर्थ बहुत गंभीर होते हैं। जैसे एक स्थान पर कबीर कहते हैं –

"एक अचंभा देखा रे भाई !
ठाढ़ा सिंह चरावै गाई।।"

यहाँ पर सिंह मन का प्रतीक है और गाय इंद्रियों का। किसी ने ऐसा आश्चर्यजनक दृश्य देखा है जहाँ शेर गायें चला रहा हो। लेकिन मानव जीवन में ऐसे उदाहरण देखने को मिल जाएंगे क्योंकि मनुष्य का सिंह रूपी मन गाय रूपी इंद्रियों के पीछे पीछे चलता हुआ दिखाई पड़ता है।

निष्कर्ष स्वरूप हम कह सकते हैं कि संतों की वाणी, उनकी वाणी का एक एक शब्द में निस्संदेह व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, नैतिकता, साहित्य, संस्कृति, मानवता और विश्व कल्याण के लिए अत्यंत उपयोगी एवं प्रासंगिक है। साधारण जनता को उनकी भाषा के माध्यम से ज्ञान-कर्म-भक्ति तथा प्रेम का अमर संदेश देकर मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा करने का सराहनीय कार्य संत काव्य ने किया। उनके इस उल्लेखनीय योगदान के लिए हिंदी जगत ही नहीं अपितु संपूर्ण मानव समाज इन संतों का और उनकी वाणी का सदा सर्वदा ऋणी रहेगा। कबीर संत काव्य धारा के शिरोमणि कवि हैं। "परंपरा पर संदेह, यथार्थ-बोध, व्यंग्य, काल-बोध की तीव्रता और गहरी मानवीय करुणा के कारण कबीर आधुनिक भाव बोध के बहुत निकट लगते हैं और आज भी उनका काव्य प्रासंगिक है।"

1.5. कबीर की भक्ति पद्धति

कबीर ने आचरण की शुद्धता के लिए कुसंग का त्याग करने एवं सत्संग करने **पर** बल दिया है। **कबीर** का मत है कि जब तक मन में काम क्रोध मद लोभ मोह ईर्ष्या द्वेष आदि विकार भरे हैं तब तक हृदय में भगवान की **भक्ति** नहीं आ सकती **भक्ति** मार्ग **पर** चलने वाले व्यक्ति को अहंकार एवं कपट का भी परित्याग करना पड़ता है।

कबीर की भक्ति भावना : कबीर पहले भक्त हैं फिर कवि है। उन्होंने जाति-पाती, काम-धाम, चमक-दमक, दिखावा,पहनावा, अंधविश्वास, **मूर्तिपूजा**, हिंसा, माया, छुआछूत, आदि पर विद्रोह भावना प्रकट की हैं। कबीर दास भक्ति काल के निर्गुण काव्यधारा के प्रमुख कवियों में से एक है उन्होंने राम को निर्गुण रूप में स्वीकार किया है तथा वह

निर्गुण की उपासना का संदेश देते हैं उनकी राम भावना ब्रह्म भावना से सर्वथा मिलती है। कबीर पहले भक्त हैं फिर कवि है। उन्होंने जाति-पाती, काम-धाम, चमक-दमक, दिखावा,पहनावा, अंधविश्वास, मूर्तिपूजा, हिंसा, माया, छुआछूत, आदि पर विद्रोह भावना प्रकट की हैं। इन सब से दूर होकर भक्ति की भावना में लीन होने के लिए कबीरदास जी कहते हैं कबीर की भक्ति भावना को हम निम्नलिखित रुप में देख सकते हैं-

1. निर्गुण ब्रह्म की उपासना पर बल
2. निष्काम भक्ति पर बल
3. अच्छी संगति का महत्
4. गुरु का महत्व
5. मोह-माया का विरोध
6. नवधा भक्ति पर बल

1.6 सारांश

भक्तिकाल के किसी भी कवि ने राजाश्रय की परवाह नहीं की । बल्कि उसको ठुकरा दिया । निर्गुण पंथ के कबीर और जायसी फक्कड़ और मस्त स्वभाव के थे । उन्होंने स्वांत: सुखाय काव्य की रचना की थी । लोक कल्याण उनके जीवन का आशय था । वे ज्ञान व प्रेम में तन्मय रहकर रचना कराते थे । उन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा भारत के धार्मिक एवं सांस्कृतिक समन्वय में सहयोग दिया । कबीर की भक्ति भावना में प्रेम को आकर्षक और प्रभावी महत्व दिया गया है उनका मानना है कि मानव प्रेम में भी ईश्वर की कृपा होती है कन कन में समाया राम ही मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रेरणाधार है कबीर के सच्चे भक्त थे विभक्ति की महिमा गाते नहीं अघाते।भक्ति ही जीवन को व्यर्थ बताते हैं ऐसा व्यक्ति बार-बार जन्म लेकर संसार में आता जाता रहता है। कबीर की भक्ति सहज है। वे ऐसे मंदिर के पुजारी है जिसकी फर्ष हरी हरी घास जिस की दीवारें दसों दिशाएं हैं जिसकी छत नीले आसमान की छतरी है या साधना स्थान सभी मनुष्य के लिए खुला है। कबीर की भक्ति में एकग्र मन, सतत साधना, मानसिक पूजा अर्चना, मानसिक जाप और सत्संगति को विशेष महत्व दिया गया है। इस प्रकार कबीर की भक्ति भावना बहुत ही अद्भुत है ।

ज्ञानमार्गी शाखा के कवियों में विचार की प्रधानता है तो सूफियों की रचनाओं में प्रेम का एकांतिक रूप व्यक्त हुआ है। सगुण धारा के कवियों ने विचारात्मक शुष्कता और प्रेम की एकांगिता दूरकर जीवन के सहज उल्लासमय और व्यापक रूप की प्रतिष्ठा की। कृष्णभक्तिशाखा के कवियों ने आनंदस्वरूप लीलापुरुषोत्तम कृष्ण के मधुर रूप की प्रतिष्ठा कर जीवन के प्रति गहन राग को स्फूर्त किया। इन कवियों में सूरसागर के रचयिता महाकवि सूरदास श्रेष्ठतम हैं जिन्होंने कृष्ण के मधुर व्यक्तित्व का अनेक मार्मिक रूपों में साक्षात्कार किया। ये प्रेम और सौंदर्य के निसर्गसिद्ध गायक हैं। कृष्ण के बालरूप की जैसी विमोहक, सजीव और बहुविध कल्पना इन्होंने की है वह अपना सानी नहीं रखती। कृष्ण और गोपियों के स्वच्छंद प्रेमप्रसंगों द्वारा सूर ने मानवीय राग का बड़ा ही निश्छल और सहज रूप उद्घाटित किया है।

यह प्रेम अपने सहज परिवेश में सहयोगी भाववृत्तियों से संपृक्त होकर विशेष अर्थवान् हो गया है। कृष्ण के प्रति उनका संबंध मुख्यत: सख्यभाव का है। आराध्य के प्रति उनका सहज समर्पण भावना की गहरी से गहरी भूमिकाओं को स्पर्श करनेवाला है। सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य थे। वल्लभ के पुत्र बिट्ठलनाथ ने कृष्णलीलागान के लिए अष्टछाप के नाम से आठ कवियों का निर्वाचन किया था। सूरदास इस मंडल के सर्वोत्कृष्ट कवि हैं। अन्य विशिष्ट कवि नंददास और परमानंददास हैं। नंददास की कलाचेतना अपेक्षाकृत विशेष मुखर है।

मध्ययुग में कृष्णभक्ति का व्यापक प्रचार हुआ और वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग के अतिरिक्त अन्य भी कई संप्रदाय स्थापित हुए, जिन्होंने कृष्णकाव्य को प्रभावित किया। हितहरिवंश (राधावल्लभी संप्र.), हरिदास (टट्टी संप्र.), गदाधर भट्ट और सूरदास मदनमोहन (गौड़ीय संप्र.) आदि अनेक कवियों ने विभिन्न मतों के अनुसार कृष्णप्रेम की मार्मिक कल्पनाएँ कीं। मीरा की भक्ति दांपत्यभाव की थी जो अपने स्वत:स्फूर्त कोमल और करुण प्रेमसंगीत से आंदोतिल करती हैं। नरोत्तमदास, रसखान, सेनापति आदि इस धारा के अन्य अनेक प्रतिभाशाली कवि हुए जिन्होंने हिंदी काव्य को समृद्ध किया। यह सारा कृष्णकाव्य मुक्तक या कथाश्रित मुक्तक है। संगीतात्मकता इसका एक विशिष्ट गुण है।

कृष्णकाव्य ने भगवान् के मधुर रूप का उद्घाटन किया पर उसमें जीवन की अनेकरूपता नहीं थी, जीवन की विविधता और विस्तार की मार्मिक योजना रामकाव्य में हुई। कृष्णभक्तिकाव्य में जीवन के माधुर्य पक्ष का स्फूर्तिप्रद संगीत था, रामकाव्य में जीवन का नीतिपक्ष और समाजबोध अधिक मुखरित हुआ। एक ने स्वच्छंद रागतत्व को महत्व दिया तो दूसरे ने मर्यादित लोकचेतना पर विशेष बल दिया। एक ने भगवान की लोकरंजनकारी सौंदर्यप्रतिमा का संगठन किया तो दूसरे ने उसके शक्ति, शील और सौंदर्यमय लोकमंगलकारी रूप को प्रकाशित किया। रामकाव्य का सर्वोत्कृष्ट वैभव "रामचरितमानस' के रचयिता तुलसीदास के काव्य में प्रकट हुआ जो विद्याविद् ग्रियर्सन की दृष्टि में बुद्धदेव के बाद के सबसे बड़े जननायक थे। पर काव्य की दृष्टि से तुलसी का महत्व भगवान् के एक ऐसे रूप की परिकल्पना में है जो मानवीय सामर्थ्य और औदात्य की उच्चतम भूमि पर अधिष्ठित है। तुलसी के काव्य की एक बड़ी विशेषता उनकी बहुमुखी समन्वयभावना है जो धर्म, समाज और साहित्य सभी क्षेत्रों में सक्रिय है। उनका काव्य लोकोन्मुख है। उसमें जीवन की विस्तीर्णता के साथ गहराई भी है। उनका महाकाव्य रामचरितमानस राम के संपूर्ण जीवन के माध्यम से व्यक्ति और लोकजीवन के विभिन्न पक्षों का उद्घाटन करता है। उसमें भगवान् राम के लोकमंगलकारी रूप की प्रतिष्ठा है। उनका साहित्य सामाजिक और वैयक्तिक कर्तव्य के उच्च आदर्शों में आस्था दृढ़ करनेवाला है। तुलसी की "विनयपत्रिका' में आराध्य के प्रति, जो कवि के आदर्शों का सजीव प्रतिरूप है, उनका निरंतर और निश्छल समर्पणभाव, काव्यात्मक आत्माभिव्यक्ति का उत्कृष्ट दृष्टांत है। काव्याभिव्यक्ति के विभिन्न रूपों पर उनका समान अधिकार है। अपने समय में प्रचलित सभी काव्यशैलियों का उन्होंने सफल प्रयोग किया। प्रबंध और मुक्तक की साहित्यिक शैलियों के अतिरिक्त लोकप्रचलित अवधी और ब्रजभाषा दोनों के व्यवहार में वे समान रूप से समर्थ हैं। तुलसी के अतिरिक्त रामकाव्य के अन्य रचयिताओं में अग्रदास, नाभादास, प्राणचंद चौहान और हृदयराम आदि

उल्लेख्य हैं। आज की दृष्टि से इस संपूर्ण भक्तिकाव्य का महत्व उसक धार्मिकता से अधिक लोकजीवनगत मानवीय अनुभूतियों और भावों के कारण है। इसी विचार से भक्तिकाल को हिंदी काव्य का **स्वर्ण युग** कहा जा सकता है।

1.7. बोध प्रश्न

1. हिन्दी साहित्य में स्वर्णयुग किसे कहते हैं ? स्पष्ट कीजिये।
2. निर्गुण भक्ति और कबीरदास के बारे में वर्णन कीजिये।
3. कबीर संत काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ क्या है ? भक्ति पद्धति क्या है ?

1.8. सहायक ग्रन्थ

1. कबीर मीमांसा – डॉ . रामचन्द्र तिवारी – लोक भारती प्रकाशन , इलाहाबाद।
2. कालजयी कबीर – संपादक – हर महेंद्र सिंह गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी , अमृतसर।
3. कबीर साहित्य की परख – परशुराम चतुर्वेदी , भारती भण्डार , इलाहाबाद।
4. कबीर – हजारी प्रसाद द्विवेदी राजकमल प्रकाशन , दिल्ली।
5. संतों की सांस्कृतिक संसुती – डॉ. राज रतन पाण्डेय , उपकार प्रकाशन , दिल्ली।

डॉ . अन्नदासु . सरला देवी

2. मध्यकालीन युगीन परिस्थितियाँ

भक्ति आंदोलन

2.0 उद्देश्य:

भारत के साहित्य के इतिहास में मध्यकाल यानी हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य के इतिहास में मध्यकाल को भक्तिकाल की संज्ञा दी गई है। लग-भग सभी प्राँतों में इस समय में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थितियाँ समान थी। उन परिस्थितियों के बारे में और थे परिस्थितियाँ किस प्रकार भक्ति आंदोलन की ओर अग्रसर किए और भक्तिकाल से संबंधित संत कवियों में प्रमुख कबीरदास के बारे में इस इकाई में पढ़ेंगे।

रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 मध्यकालीन युगीन परिस्थितियाँ

2.3 मध्यकालीन भारत में भक्ति आंदोलन

2.4 भक्ति आन्दोलन का उद्भव एवं स्वरूप

2.5 भक्ति आन्दोलन के उदय के कारण

2.6 भक्ति आन्दोलन का विकास

2.7 भक्ति आन्दोलन की प्रमुख विशेषताएँ

2.8 भक्ति आन्दोलन का महत्त्व तथा प्रभाव

2.9 सारांश

2.10 बोध प्रश्न

2.11 सहायक ग्रंथ

2.1 प्रस्तावना

मध्ययुगीन भारत, "प्राचीन भारत" और "आधुनिक भारत" के बीच भारतीय उपमहाद्वीप के इतिहास की लंबी अवधि को दर्शाता है। अवधि की परिभाषाओं में व्यापक रूप से भिन्नता है, और आंशिक रूप से इस कारण से, कई इतिहासकार अब इस शब्द को प्रयोग करने से बचते है। अधिकतर प्रयोग होने वाले पहली परिभाषा में यूरोपीय मध्य युग की तरह इस काल को छठी शताब्दी से लेकर सोलहवीं शताब्दी तक माना जाता है। इसे दो अवधियों में विभाजित किया जा सकता है: 'प्रारंभिक मध्ययुगीन काल' 6वीं से लेकर 13वीं शताब्दी तक और 'गत मध्यकालीन काल' जो 13वीं से 16वीं शताब्दी तक चली, और 1526 में मुगल साम्राज्य की शुरुआत के साथ समाप्त हो गई। 16वीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी तक चले मुगल काल को अक्सर "प्रारंभिक आधुनिक काल" के रूप में जाना जाता है, लेकिन कभी-कभी इसे "गत मध्ययुगीन" काल में भी शामिल कर लिया जाता है।

एक वैकल्पिक परिभाषा में, जिसे हाल के लेखकों के प्रयोग में देखा जा सकता है, मध्यकालीन काल की शुरुआत को आगे बढ़ा कर 10वीं या 12वीं सदी बताया जाता है। और इस काल के अंत को 18वीं शताब्दी तक धकेल दिया गया है, अत: इस अवधि को प्रभावी रूप से मुस्लिम वर्चस्व (उत्तर भारत) से ब्रिटिश भारत की शुरुआत के बीच का माना जा सकता है। अत: 8वीं शताब्दी से 11वीं शताब्दी के अवधि को "प्रारंभिक मध्ययुगीन काल" कहा जायेगा। मध्यकालीन भारत के सांस्कृतिक इतिहास में **भक्ति आन्दोलन** एक महत्वपूर्ण पड़ाव था। इस काल में सामाजिक-धार्मिक सुधारकों द्वारा समाज में विभिन्न तरह से भगवान की भक्ति का प्रचार-प्रसार किया गया। सिख धर्म के उद्भव में भक्ति आन्दोलन की महत्वपूर्ण भूमिका मानी जाती है।

पूर्व मध्यकाल में जिस भक्ति धारा ने अपने आन्दोलनात्मक सामर्थ्य से समूचे राष्ट्र की शिराओं में नया रक्त प्रवाहित किया, उसके उद्भव के कारणों के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है लेकिन एक बात पर सहमति है कि भक्ति की मूल धारा दक्षिण भारत में छठवीं-सातवीं शताब्दी में ही शुरू हो गई थी। १४वीं शताब्दी तक आते-आते इसने उत्तर भारत में अचानक आन्दोलन का रूप ग्रहण कर लिया। किन्तु यह धारा दक्षिण भारत से उत्तर भारत कैसे आई, उसके आन्दोलनात्मक रूप धारण करने के कौन से कारण रहे, इस पर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। अब बहुत से विद्वान भक्ति आन्दोलन से सम्बन्धित १९वीं-२०वीं शताब्दी के विचारों पर प्रश्न उठाने लगे हैं। अनेक विद्वान अब मध्य युग के भक्ति आन्दोलन को वैदिक परम्परा की मूल बातों का नए रूप में उदय के रूप में देखने लगे हैं।

2.2 मध्यकालीन युगीन परिस्थितियाँ

मध्ययुगीन मानसिकता में सामंती व्यवस्था की झलक दिखाई देती है। जाति आधारित- मध्यकालीन भारत के बोध पर जाति की महत्वपूर्ण छाप थी। समाज के विभिन्न व्यक्तियों का एक -दूसरे से संबंध जाति से नियंत्रित होता था। जाति प्रथा एंव अन्य अंतर्विरोधी तत्व मौजूद थें। मध्यकालीन भारत में इस्लाम का उदय हुआ था जिस के संस्थापक मोहम्मद साहब कुरैश जन जाति के थे

* इस काल में भारत में प्रवेश करने वाले मुस्लिम शासकों के बारे में जानकारी दी गई है इसी काल में विदेशों के द्वारा भारत पर हुए आक्रमण के बारे में बताया गया है
* इसी काल में भक्ति और सूफी आंदोलन का किस प्रकार प्रचार प्रसार हुआ और किस प्रकार इनको को बढ़ावा मिला इस की संपूर्ण जानकारी मध्य काल के इतिहास से प्राप्त होती है
* इसी काल में भारत के महान गुरुओं आचार्य का जन्म हुआ जिनके द्वारा हमारी भारतीय संस्कृति का प्रचार-प्रसार हुआ और हमें कहीं महापुरुष मिले

2.2.1 राजनीतिक परिदृश्य

1. सार्वभौमता अथवा विश्व व्यापक समाज

मध्ययुग के विचारकों, दार्शनिकों के मतानुसार समस्त जगत एक इकाई है। ईश्वर एक है। ईश्वर सर्वोत्कृष्ट है। ईश्वर संसार का मूल स्रोत है, वह सबसे ऊपर है। इसी विचार की आधारशिला पर ईसाई समाज में एकता स्थापित करने की चेष्टा की गई। उस समय पूर्व ईसाई जगत एक ईसाई राज्य माना जाता था, इस युग में राज्य नागरिकता और चर्च की नागरिकता काफी पृथक-पृथक मानी जाती थी। वर्तमान समय में चर्च की नागरिकता में काफी अन्तर होता है। उस युग

में चर्च सर्वोपरि था अतएव व्यक्ति चर्च की सदस्यता से पृथक हो जाने पर कानूनी और राजनीतिक अधिकार से वंचित हो जाता था। उस समय चर्च की सदस्यता के आधार पर वह सब प्रकार की सुख सुविधायें प्राप्त कर सकता था।

2. चर्च की सर्वोपरिता

मध्ययुग में चर्च ने इस बात प विशेष जोर दिया कि रोम का पोप ईसा और पीटर का उत्तराधिकारी होने न सिर्फ धार्मिक प्रकों में सर्वोच्च शक्तिशाली है वरन् राजनीतिक सांसारिक क्षेत्र में शासकों को दण्डित तथा पद हटाने का भी अधिकार रखता है। इस तरह मध्य युग में राज सत्ता चर्च में केन्द्रित हो गई थी तथा इसे धर्म तन्त्रात्मक राज्य भी कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। चर्च का स्थान दानिकों ने उस समय राज्य शक्ति से उच्च बताया जिसके दो आधार थे – प्रथम दो तलवारों का सेद्धान्त और दूसरा कान्सडेनटाइन का दान पत्र। पहले सिद्धान्त के अनुसार प्रभु ईसा के शान्ति दूत पीटर ने पोप को दो तलवारें प्रदान की। दो तलवारों में से एक तलवार आध्यात्मिक शक्ति ञ थी तथा दूसरी तलवार राजसत्ता की राजाओं को दी गई थी। राजाओं को दूसरी तलवार लौकिक कल्याण हेतु दी गई थी इस तरह चर्च ने राजनैतिक और धार्मिक दोनों क्षेत्र में अपना अधिकार जमा लिया।

3. राजतन्त्रात्मक सरकार

मध्ययुग के दार्शनिकों के विचारों, ग्रन्थों और दर्शन का गम्भीर अध्ययन करने पर पता चलता है कि इस युग के दार्शनिकों ने एकता की भावना पर विशेष ध्यान और महत्व दिया है। एकता की भावना से वशीभूत होकर दार्शनिकों ने उस युग में राजतन्त्र प्रणाली को ही श्रेष्ठ समझा है। गीर्के ने एक स्थान पर लिखा है कि, "मध्ययुगीन विचारक यह मानते थे कि सामाजिक संगठन का मूल तत्व एकता है और यह शासन करने वाले अंग में होनी चाहिये और यह उद्देश्य तभी अच्छी तरह पूरा हो सकता है, जब शासक अंग स्वयंमेव एक इकाई तथा परिणामतः एक व्यक्ति हो।" इसके साथ ही दार्शनिकों का मत था कि राजा ईश्वर का अंश है, प्रतिनिधि है अतएव उसका लौकिक जीवन में तथा राजनैतिक जीवन में सर्वोच्च स्थान है। वह एकता के सूत्र में बाँधने वाला है। अतएव राजतन्त्रात्मक सरकार ही सर्वश्रेष्ठ है।

4. प्रतिनिधि शासन प्रणाली का सिद्धान्त

मध्य युग के दार्शनिक और विचारक लोक सत्ता की कल्पना के साथ ही साथ तिनिधि शासन प्रणाली के मूल तत्वों से भली-भाँति परिचित थे। उस समय समाज में धर्म का काफी बोलबाला था। धर्म के क्षेत्र के साथ ही साथ पोप की सत्ता सर्वोच्च मानी गई थी। पोप का निर्वाचन समस्त चर्च के पादरियों द्वारा किया जाता था आवश्यकतानुसार पादरी, पोप को उसके पद से पदच्युत भी कर सकते थे। पोप के विरुद्ध समस्त पादरी पोप के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव रखकर भर्त्सना के साथ उसे अपदस्थ कर सकते थे। धार्मिक मामलों में पादरियों की संयुक्त परिषद् सर्वेसर्वा थी। इतना ही नहीं सम्राट का निर्वाचन भी जनसाधारण के प्रतिनिधि के समान होता था। इस तरह हम देखते हैं कि उस समय प्रतिनिधि शासन प्रणाली की झलक दिखाई पड़ती है।

5. सामूहिक अथवा सामुदायिक जीवन

मध्ययुग में वर्तमान समय के अनुसार व्यक्तिगत अधिकार नहीं थे। उस समय व्यक्ति की स्थिति अधिकारों के क्षेत्र में अत्यन्त दुर्बल और कमजोर थी। अतएव व्यक्ति की स्थिति अधिकारों का उपयोग करने हेतु अथवा प्राप्त करने

हेतु समाज का सदस्य बनना पड़ता था। उस समय व्यक्ति कई समूहों का सदस्य बन जाया करता था जैसे आर्थिक, राजनैतिक एवं सामाजिक

6. निगम विषयक सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अन्तर्गत मध्ययुग में कुछ विशिष्ट संस्थाओं को विशेष महत्व प्रदान किया गया। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए दार्शनिकों का कहना था कि जिन संस्थाओं का उद्देश्य व लक्ष्य आध्यात्मिक तथा लौकिक (सांसारिक) जीवन का विकास करना है उन्हें अपना कार्य सुचारू रूप से चलाने के लिये सत्ता सम्पन्न कर दिया जाना चाहिए ताकि उनके कार्य क्षेत्र में किसी बाहरी शक्ति को हस्तक्षेप करने का मौका न मिले। इस प्रकार की संस्थाओं उस समय में निगम के रूप में ईसाई संघ या चर्च की परिषद् विश्वविद्यालय, स्वतन्त्र नगर और कम्यून थे।

7. लोकशक्ति अथवा लोकसत्ता की कल्पना

मध्ययुग के विचारकों ने राजा के दैवी अधिकारों का समर्थन किया है। इस तरह वह राजतन्त्र के समर्थक भी माने जाते हैं। इतना होने पर भी इस युग के विचारकों ने राजा की शक्ति का स्रोत समाज बताया है। राजा की शक्ति का स्रोत समाज है अतएव राजा का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह सामाजिक मर्यादाओं, परम्पराओं का विशेष ध्यान रखे। ईसाई विचारकों का यह मत था कि सरकार का मनुष्य के पतन और पाप करने के कारण हुआ है। इस तरह राज्य का जन्म दैवी है किन्तु उसका विधान मनुष्य द्वारा बनाया गया है। मार्सेलियो का मत था कि, "प्रभुसत्ता जनता के हाथों में निहित है" अतः शासक को समाज द्वारा सदैव निर्देशित होना चाहिये।"

8. लोकप्रिय प्रभुसत्ता

मध्ययुग में यह माना जाता था कि जनता की इच्छा ही राजनीतिक सत्ता का मूल स्रोत एवं आधारशिला है। सम्प्रभुता जनता में ही है। मध्ययुग में राजा की शक्ति का स्रोत भी जनता बताया गया है। अतएव जनता कानून के ऊपर है। इस सिद्धान्त के प्रबल समर्थक मार्सेलियो तथा निकोलस थे। पहले का यह मत था कि कानून बनाने वाला प्रभुशक्ति सम्पन्न होता है और कानून बनाने का अधिकार जनता को है। निकोलस का यह कहना था कि जब समूची जनता स्वेच्छा पूर्वक अपने अधिकार शासक को सौंपती है, तभी सरकार का निर्माण होता है। कानून निर्माण की शक्ति सदैव जनता में रहती है और शासक इन कानूनों से बंधा हुआ होता है। वर्तमान युग में प्रभुसत्ता के विचारों के विकास में मध्ययुग के राजनीतिक चिन्तन का पर्याप्त प्रभाव है।

2.2.2 सामाजिक परिदृश्य

पूर्व मध्यकालीन समाज में एक विशिष्ट वर्ग का उदय हुआ जिसे 'सामन्त' कहा जाता है । यह समाज का सबसे शक्तिशाली वर्ग था । यद्यपि भारत में हमें सामन्तवाद का अंकुरण शक-कुषाण काल में ही दिखाई देने लगता है तथापि इसका पूर्ण विकास पूर्व मध्य काल में ही हुआ ।

इस काल की राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियों ने सामन्तवाद के विकास के लिये उपयुक्त आधार प्रदान किया । वाह्य आक्रमणों के कारण केन्द्रीय सत्ता निर्बल पड़ गयी तथा चारों ओर राजनीतिक अराजकता एवं अव्यवस्था फैल गयी । केन्द्रीय शक्ति की निर्वलता ने समाज में प्रभावशाली व्यक्तियों का एक ऐसा वर्ग तैयार किया जिनके ऊपर स्थानीय सुरक्षा का भार आ पड़ा । अरबों तथा तुर्की के आक्रमणों ने शक्तिशाली राजवंशों को

धराशायी कर दिया। फलस्वरूप उत्तर भारत में कई छोटे-छोटे राज्यों का उदय हो गया। इससे सामन्ती प्रवृत्ति को वढ़ावा मिला। सामन्तवाद के विकास में प्राचीन भारतीय धर्मविजय की अवधारणा का भी योगदान रहा। कालान्तर में शासकों की विजय का उद्देश्य अधिक से अधिक अधीन शासक तैयार कर उनसे करादि बटोरना हो गया।

इस प्रवृत्ति ने भी सामन्तवाद को प्रोत्साहित किया। सामन्तवाद को विकसित करने में आर्थिक कारक भी सहायक सिद्ध हुए। प्रो॰ यादव के शब्दों में शक-कुषाण युग में प्रथम बार हमें सामन्तवाद के न केवल राजनीतिक अपितु सामाजिक तथा आर्थिक कारक भी स्पष्टत: देखने को मिलते हैं। राजनीतिक अव्यवस्था में व्यापार-वाणिज्य का पतन हुआ जिससे अर्थव्यवस्था मुख्यत: भूमि और कृषि पर निर्भर हो गयी। बड़े-बड़े भूस्वामी आर्थिक स्रोतों के केन्द्र बन गये। समाज में भूसम्पन कुलीन वर्ग का आविर्भाव हुआ। समाज के बहुसंख्यक शूद्र तथा श्रमिक जीविका के लिये उनकी ओर उन्मुख हुए। भूमिपतियों को अपने खेतों पर काम करने के लिये बड़ी संख्या में श्रमिकों की आवश्यकता थी।

आर्थिक परिवर्तन की इस प्रक्रिया ने सामन्तवाद के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। ग्यारहवीं-बारहवीं शती में आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ। हमें सिक्कों के अधिकाधिक प्रचलन तथा व्यापार-वाणिज्य के पुनरुत्थान के प्रमाण मिलते है। किन्तु यादव ने स्पष्ट किया है कि- 'यह आर्थिक विकास भारत में सामन्तवाद की गति को नहीं रोक सका अपितु सामन्तवाद ने ही अपने आपको तत्कालीन आर्थिक परिवेश के अनुकूल बना लिया।'सामन्तवाद के विकास में तत्कालीन शासकों द्वारा प्रदत्त भूमि तथा ग्राम अनुदानों का भी प्रमुख योगदान रहा है। राजाओं द्वारा अपने कुल के व्यक्तियों तथा संवन्धियों को विभिन्न प्रान्तों में उपराजा अथवा राज्यपाल नियुक्त करने की प्रथा से भी सामन्तवाद की जड़ें मजबूत हुई। पूर्व-मध्ययुग में इन शासकों को उनकी सेवा के बदले जागीरें दी जाने लगीं।

राजकुमारों के साथ-साथ प्रशासन के मंत्रियों तथा अन्य उच्च पदाधिकारियों को भी जागीरें दी गयी। ये पदाधिकारी आनुवंशिक रूप से अपने पदों का उपभोग करते थे। इन्होंने पीढ़ियों तक अनुदान प्राप्त कर अपनी शक्ति को बढ़ा लिया तथा इनमें से कई के वंशज वाद में शक्तिशाली सामन्त बन बैठे। आर॰एस॰ शर्मा, जिन्होंने सामन्तवाद के उदय तथा विकास का गहन अध्ययन किया है, की मान्यता है कि भारत में सामन्तवाद का उदय राजाओं द्वारा ब्राह्मणों तथा प्रशासनिक और सैनिक अधिकारियों को भूमि तथा ग्राम दान में दिये जाने के कारण हुआ। पहले ये अनुदान केवल ब्राह्मणों को ही धार्मिक कार्यों के लिये दिये गये किन्तु हर्षकाल तथा उसके बाद से इन्हें प्रशासनिक तथा सैनिक अधिकारियों को उनकी सेवाओं के बदले में दिया खाने लगा। पूर्व-मध्यकाल में यह एक सर्वमान्य प्रथा हो गयी। राजपूत राज्यों की विभिन्न जागीरों के स्वामी सामन्त होते थे। उन्हें विशेष अधिकार और सुविधायें प्राप्त थीं।

सामन्तों की विभिन्न श्रेणियाँ थीं। कुछ बड़े सामन्त अपने अधीन कई छोटे सामन्त रखते थे। वे अपने-अपने अधिकार-क्षेत्रों में राजाओं जैसी सुख-सुविधाओं का ही उपभोग करते थे। जिन लोगों को भूमि अनुदान में मिली उससे सम्बन्धित समस्त अधिकार भी उन्हें प्राप्त हो गये। वे इसे अपनी पैतृक सम्पत्ति मान बैठे तथा राजा की अनुमति के बिना ही उन्होंने उसे अपने समर्थकों के बीच बाँट देने का अधिकार स्वयं अपने हाथों में ले लिया। वे भूमि पर बिना काम किये ही काफी आमदनी प्राप्त करने लगे। उत्तर भारत में भूमि के साथ ही साथ कृषकों तथा बटाईदारों को भी हस्तान्तरित कर दिया जाता था।

उन्हें स्पष्ट निर्देश था कि वे भूमि छोड़कर किसी अन्य स्थान में न जाये। इस प्रकार समाज में ऐसे लोगों की संख्या बढ़ती गयी जिन्हें भूमि से दूसरे के श्रम पर पर्याप्त आय प्राप्त होने लगी। राजपूत-काल में सामन्तों के छोट-छोटे

राज्य स्थापित हो गये जो अपनी शक्ति और प्रभाव बढ़ाने के लिये परस्पर संघर्ष में उलझ गये। इन्होंने व्यापार-वाणिज्य को हतोत्साहित किया तथा आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था को प्रोत्साहन दिया। सामन्त तथा उसके अधीनस्थों के अपने-अपने क्षेत्रों में ही व्यस्त और मस्त रहने के कारण प्रबल स्थानीयकरण की भावना का विकास हुआ तथा सामाजिक गतिशीलता अवरुद्ध हो गयी।

2.2.3 मध्यकालीन आर्थिक स्थिति

आठवीं शताब्दी से 14वीं शताब्दी तक राजस्थान के विभिन्न भू-भागों पर चौहानों का शासन रहा।चरमोत्कर्ष के इस काल में चौहानों का राज्य अजमेर और दिल्ली के अतिरिक्त आधुनिक पंजाब के अम्बाला जिले तक फैला हुआ था। लगभग आधा भू-भाग रेगिस्तान था जबकि शेष भूमि यमुना, चम्बल और बनास द्वारा सींची जाती थी। सरस्वती नदी को घाटी में भूमि उपजाऊ थी। परिणामस्वरूप जहां रेगिस्तानी भू-भाग कम आबादी वाला प्रदेश बना रहा, वहीं नदी की घाटी में घनी आबादी वाले कस्बे और नगर बस गए। आधुनिक अजमेर के अतिरिक्त नाडोल, रणथम्भौर, जालौर और सांभर चौहानों की राजधानी होने के साथ-साथ व्यापारिक नगर बने हुए थे।

भीनमाल, आबू आदि नगर धार्मिक स्थल होने के अलावा महत्वपूर्ण सैनिक केन्द्र भी बन गए थे। वर्तमान मारवाड़ और सपादलक्ष राज्य की सीमा पर नागौर एक व्यापारिक नगर था। इन व्यापारिक नगरों के संबंध में समकालीन काव्यों में अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन किया गया है जिसकी प्रामाणिकता को जांचने के लिए समकालीन विदेशी यात्रियों के संस्मरणों को खोजना पड़ता है। सातवीं शताब्दी में भारत की यात्रा करने वाला चीनी यात्री ह्वेनसांग अपने संस्मरण में लिखता है कि राजस्थान में सकड़ी और अविकसित पगडण्डियाँ थी जिनका उपयोग करते हुए निर्धन मछुए, कसाई और हरिजन अपनी जीविका कठिनाई से कमाते थे। एक तरफ यह मजदूर वर्ग शहर की चारदीवारी के बाहर पद-दलित जीवन व्यतीत करता था तो दूसरी और नगरों में बड़े-बड़े भव्य महल बने हुए थे। ऐसा प्रतीत होता है कि बहुसंख्यक प्रजा के सुख-दुख की राजपूत राजा अधिक परवाह नहीं करते थे।

अकबर महान् के शासन काल में आइने-अकबरी' लिखते समय अबुलफजल ने मालूम किया था कि प्राचीन काल में चौहान राज्य में ज्वार, बाजरा और गेहूं की फसल गर्मियों में होती थी कुरुक्षेत्र-दिल्ली के आस-पास के प्रदेश में गेहूं, गन्ना, चावल, राजमाँ उत्पन्न होता था। सपादलक्ष के चौहान राजाओं को साँभर झील के नमक के उत्पादन से काफी लाभ होता था। इसके अलावा तांबा, जस्ता और इमारती पत्थर राजस्थान की विशेष देन थी। मारवाड़ और बीकानेर के रेगिस्तानी भू-भाग में ऊन, घी, दूध और दूध से बने हुए पदार्थ उपलब्ध होते थे। स्पष्ट है कि पूर्वी राजस्थान में पशुपालन एक प्रमुख व्यवसाय था जिसके कारण चारागाहों को विशेष महत्व दिया जाता था।

शाकम्भरी के शासक विग्रहराज द्वितीय, नाडौल के शासक कल्हण, जालौर के शासक उदयसिंह और हस्तिकुण्ड के शासक माम-माता के शासनकाल में गेहूं, तेल, पान, नमक और घोड़े का व्यापार अति उन्नत था। इसका आयात अधिकांशत: उत्तरपथ से किया जाता था। गुजरात के साथ प्राचीन राजस्थान के निवासियों का दास व्यापार था। प्राचीन राजस्थान के शासक व्यापारियों को अधिक से अधिक सुविधाएं देते थे। ये व्यापारी आवश्यकता की वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते थे। लेकिन जब यहां के शासक निर्बल होने लगे तो इन व्यापारियों ने पैसा कमाने के लिए स्त्री-व्यापार को भी प्रारंभ कर दिया। सम्भवतः विदेशों के साथ सामुद्रिक मार्ग से सम्पर्क स्थापित करने के कारण हो इन लोगों ये यह व्यापार अपना लिया। राजस्थान के निवासी नौकरी पेशा भी थे। सैनिक, लेखक, पुरोहित, अध्यापक, ज्योतिषि, संगतराश, भाट, शिकारी और कसाई सभी नौकरी पेशा थे। 'कान्हड़दे प्रबन्ध' नामक

ग्रंथ के अनुसार अकेले जालौर शहर में 4 उच्च जातियों के लोग निवास करते थे जो 18 वर्णों के थे। लोगों के व्यवसायों के अनुसार श्रेणिया बनी हुई थी। समकालीन इतिहास में 18 प्रकार की श्रेणियों का वर्णन है जिनमें ढाकू, लूटेरे और चोरों की श्रेणियां बनी हुई थी। इन लोगों को साहसी श्रेणी का व्यक्ति कहा जाता था।

2.2.4 वर्ण व्यवस्था

आठवीं शती से समाज पर इस्लाम धर्म का प्रभाव परिलक्षित होने लगा । इसके सामाजिक समानता के सिद्धान्त ने परम्परागत चातुर्वर्ण व्यवस्था को गम्भीर चुनौती दी जिसके परिणामस्वरूप हिन्दू समाज में रूढ़िवादिता की वृद्धि हुई । इस काल के लेखकों तथा विचारकों ने इस स्थिति की तुलना कलियुग से की । समाज में शुद्धता बनाये रखने के उद्देश्य से विवाह, खान-पान तथा सूक्ष्मता के नियम अत्यन्त कड़े कर दिये गये । अन्तर्जातीय विवाहों का प्रचलन बन्द हो गया तथा सामाजिक सम्बन्ध पूर्णतया संकुचित हो गये । अन्तर्जातीय खान-पान पर भी प्रतिबन्ध लग गया । ब्राह्मणों के लिये अन्य वर्षा के यहाँ भोजन करना (आपात्-काल को छोड़कर) निषिद्ध कर दिया गया । इस प्रकार समाज में शौचाचार की भावना प्रबल हो गयी ।

क्षेमेन्द्र के विवरण से पता चलता है कि यह भावना प्राच्य, दक्षिणात्य तथा गौड़ लोगों में अधिक थी । ये लोग अपने सम्बन्धियों के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति का स्पर्श तक नहीं करते थे । अल्वरुनी लिखता है कि दो ब्राह्मण जब भोजन करने बैठते थे तो वे अपने बीच एक कपड़े का टुकड़ा रखते अथवा, लकीर खींच लेते थे । ब्राह्मणों के कुछ वर्ण इतने अधिक रुढ़िवादी थे कि जो ब्राह्मण, जैन आदि वैदिकेतर धर्मों को स्वीकार कर लेते थे उन्हें भी वे कुजात समझते थे । कलिवर्ज्य का सिद्धान्त प्रस्तुत किया गया जिसके अन्तर्गत विदेश यात्रा करने तथा विदेशियों से सम्पर्क स्थापित करने पर रोक लगा दी गयी । विभिन्न जातियों तथा उपजातियों की उत्पत्ति के कारण सामाजिक व्यवस्था अत्यन्त जटिल हो गयी । किन्तु इस समय भी समाज में ऐसे लोग थे जिन्होंने जाति-प्रथा की रूढियों को मान्यता देने से इन्कार कर दिया । ग्यारहवीं-वारहवीं शती के जेन आचार्यों, शाक्त-तान्त्रिक सम्प्रदायों तथा चार्वाकों ने जाति-प्रथा तथा उसके प्रतिवन्धों का विरोध करते हुए कर्म की महत्ता का प्रतिपादन किया ।

उन्होंने ब्राह्मणों की जातिगत श्रेष्ठता एवं अहमन्यता की भी खिल्ली उड़ाई । इस समय गुजरात तथा राजस्थान में जैन धर्म काफी लोकप्रिय था और यद्यपि इसमें भी कुछ रूढ़िवादिता आ गयी थी, तथापि जाति-सम्बन्धी इसके विचार हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक उदार थे । जैन आचार्य अमितगति (ग्यारहवीं शती) ने यह प्रतिपादित किया कि जाति का निर्धारण आचरण से होता है, जन्म या वश से नहीं । वौद्ध ग्रन्थ तटकमेलक में भी जाति-पाति एवं छुआछूत की निन्दा की गयी है । शाक्त-तान्त्रिक एवं सिद्ध सम्प्रदायों ने भी जाति-प्रथा का विरोध किया । इसी प्रकार का विरोध चार्वाकों द्वारा भी किया गया । दक्षिण में लिंगायत सम्प्रदाय के आचार्य बासव ने परम्परागत जाति-व्यवस्था का खण्डन करते हुए सभी मनुष्यों की समानता का उपदेश दिया । इस प्रकार पूर्व मध्यकालीन समाज में भी उदार विचारकों एवं सुधारकों का अभाव नहीं था ।

कृत्यकल्पतरु से पता चलता है कि इस समय भी सभी जातियों के लोग तीर्थयात्रा पर जाते थे तथा सम्मिलित रूप से एकत्रित होकर पुराण का श्रवण करते थे । बी॰एन॰एस॰ यादव का विचार है कि बारहवीं शताब्दी तक समाज में जाति प्रथा के विरोध की जो भावना प्रबल हुई उसके लिये निम्न वर्गों की आर्थिक स्थिति में सुधार होना भी एक प्रमुख कारण था ।

पूर्व मध्यकाल में कृषि, उद्योग-धन्धों, व्यापार तथा वाणिज्य आदि की उन्नति हुई जिसके फलस्वरूप निम्नवर्ग के लोग सामाजिक दृष्टि से हीन होने के बावजूद भी आर्थिक दृष्टि से समृद्ध हो गये। उन्होंने जाति प्रथा के कड़े नियमों एवं प्रतिवन्धों को मानने से इन्दनर कर दिया तथा पौराणिक हिन्दू धर्म को त्याग कर अधिकतर लोग नास्तिक धर्मों के अनुयायी हो गये। इससे समाज के उच्चवणों को काफी निराशा हुई। सामाजिक परिवेश में हुए परिवर्तन के कारण पूर्व मध्ययुग में परम्परागत वर्णों के कर्तव्यों को भी नये सिरे से निर्धारित किया गया। प्रथम बार पराशर स्मृति (ई०) में कृषि को ब्राह्मण वर्ण की वृत्ति बताया गया है। अभी तक के शास्त्रकारों ने केवल आपत्तिग्रस्त ब्राह्मण के लिये कृषि का विधान किया था।

इसके टीकाकार माधवाचार्य (1300-1380 ई०) ने बताया है कि कलियुग में आपद्धर्म ही सामान्य धर्म वन जाता है। इससे पता चलता है कि पूर्व मध्यकाल में अधिकांश ब्राह्मणों ने कृषि करना या कराना प्रारम्भ कर दिया था। भूमिदानग्राही कुलीन ब्राह्मण शूद्रों के द्वारा कृषि करवाते थे। क्षत्रिय वर्ण इस समय दो भागों में बँट गया। पहला शासक वर्ग तथा जागीरदार वर्ग था जबकि दूसरे में सामान्य क्षत्रिय थे। पराशर ने कृषि को सामान्य क्षत्रिय की भी वृत्ति बताया है। वृहद्धर्म पराण में ब्राह्मणों की पूजा को क्षत्रिय के प्रमुख कर्त्तव्यों में रखा गया है। जहां तक वैश्य तथा शूद्र वर्णों का प्रश्न है, इस काल में हम दोनों के कार्यों में समानता पाते है।

पराशर ने कृषि वाणिज्य तथा शिल्प को दोनों का व्यवसाय बताया है। यह उल्लेखनीय है कि कृषि को सभी वर्णों का सामान्य धर्म माना गया है। यह समाज के बढ़ते हुए कृषिमूलक स्वरूप का सूचक है जो सामन्तवाद के प्रतिष्ठित होने के कारण पूर्व मध्यकाल में अत्यधिक स्पष्ट हो गया था। भूमि अनुदानों की अधिकता के कारण हुए भूमि तथा शक्ति के असमान वितरण से समाज में नये वर्गों का उदय हुआ जिनके लिये परम्परागत वर्ण व्यवस्था में स्थान खोजने का प्रयास पूर्व मध्यकाल के व्यवस्थाकारों ने किया। सामन्त भी अपनी स्थिति के अनुसार कई वर्गों में विभक्त थे।

2.3 मध्यकालीन भारत में भक्ति आंदोलन

भारत में मुसलमानों के आगमन के बाद शताब्दियों तक इस्लाम और हिन्दू धर्म के पारस्परिक सम्पर्क के महत्त्वपूर्ण परिवर्तन निकले। इस्लाम धर्म के सिद्धान्तों ने हिन्दू धर्म सुधारकों को प्रभावित किया वहीं दूसरी तरफ मुस्लिम सन्त भी हिन्दुओं के आदर्शों से प्रभावित हुए फलस्वरूप उत्तर एवं दक्षिण भारत में एक प्रभावशाली धार्मिक आन्दोलन ने जन्म लिया जिसे भक्ति आन्दोलन के नाम से जाना जाता है।

2.4 भक्ति आन्दोलन का उद्भव एवं स्वरूप

भक्ति आन्दोलन के संबंध में विभिन्न प्रकार के मत प्राप्त होते हैं। **वेबर** तथा **ग्रियर्सन** की मान्यता है कि भक्ति और ईश्वर की एकता का विचार हिन्दुओं ने ईसाइयों से प्राप्त किया था। दूसरा मत यह भी व्यक्त किया जाता है कि भक्ति आन्दोलन का उद्भव इस्लाम के प्रभाव के कारण हुआ है। माना जाता है कि शंकराचार्य का अद्वैतवादी सिद्धान्त (एकेश्वरवादी) भी इस्लाम से प्रभावित हुआ था लेकिन यह तर्कसंगत नहीं है। शंकराचार्य का अद्वैतवाद भारतीय वेदान्त दर्शन पर आधारित था। कुछ विद्वानों का यह भी मानना है कि इस्लाम के मिल्लत (भाई-चारे) के सिद्धान्त ने भक्ति आन्दोलन के प्रचारकों को अधिक प्रभावित किया था। मूर्ति-पूजा का विरोध भी इस तथ्य का परिचायक है कि इस्लाम धर्म 'के सिद्धान्तों को सहज ही स्वीकार कर लिया गया था। लेकिन यह सभी तर्क सत्य की 'कसौटी पर खरे नहीं उतरते

हैं। केबल कुछ समानता के आधार पर यह मत प्रतिपादित करना न्याय-संगत प्रतीत नहीं होता है। बार्थ का मत है कि भक्ति आन्दोलन हिन्दू धर्म का ही एक अंग था। यदि भक्ति आन्दोलन के उद्भव में इस्लाम धर्म के योगदान को अंकित किया जाये तब इतना ही निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि मूर्तिपूजा विरोधी कट्टर मुल्ला वर्ग ने अपने हिन्दू विरोधी कार्यों से इसे गति अवश्य प्रदान की।

भक्ति आंदोलन के दो स्वरूप हैं प्रथम प्रबुद्ध विचारकों द्वारा प्रचलित रूप तथा दूसरा अशिक्षितों द्वारा स्थापित रूप। बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म सामाजिक अन्याय के विरुद्ध तीखा स्वर प्रकट कर सके लेकिन सभी वर्गों के लिए धर्म अथवा भक्ति का कोई समुचित स्वरूप न दे सके। भक्ति आन्दोलन ने समस्त देश को अधिक ठोस स्थायी आधार प्रदान किया। सिद्धों का उग्र रूप क्रान्ति की अराजकता तक ही सीमित रहा। उसमें सामाजिक नियमन का स्वरूप गायब रहा। यथा—सिद्धों की शून्य ब्रह्म की निराकार उपासना भक्ति साधना की चरम स्थिति में तो संभव हो सकती है लेकिन आरम्भिक स्थिति में संभव नहीं है। सिद्ध साधक लम्बी साधना के बाद चरम स्थिति में पहुँच सकता है किन्तु सामान्य व्यक्ति बिना किसी प्रत्यक्ष आधार के वहाँ तक पहुँचने में असमर्थ रहता है। इस कारण भक्ति काल में सगुण उपासना पर अधिक बल दिया गया तथा अवतारवाद की स्थापना करके ब्रह्म के साकार स्वरूप की उपासना को ही अधिक व्यावहारिक माना गया है।

2.5. भक्ति आन्दोलन के उदय के कारण

भक्ति आन्दोलन के उद्भव तथा विकास में निम्नलिखित कारणों का उल्लेखनीय योगदान रहा है-

(1) हिन्दू धर्म का जटिल रूप- भक्ति आन्दोलन के उदय का मुख्य कारण हिन्दू धर्म का जटिल रूप था। इसमें मुख्य रूप से कर्मकाण्ड, पूजा-पाठ, उपवास आदि पर विशेष जोर दिया गया था। जनसाधारण इन सबसे तंग आ चुका था अत: वह परिवर्तन चाहता था। इसके लिये वह मार्ग भक्ति का था जिससे आध्यात्मिक शान्ति मिल सके। प्रसिद्ध इतिहासकार **यूसुफ हुसैन** ने भक्ति आन्दोलन के उदय के कारणों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि "ब्राह्मणवाद मूल रूप से एक बौद्धिक सिद्धान्त बनकर रह गया था। यह हृदय से अधिकारों की उपेक्षा करता था। मौलिक सिद्धान्त जिनकी यह **'वाद'** शिक्षा देता था, अवैयक्तिक तथा काल्पनिक थे। ये उन लोगों की समझ में नहीं आते थे जो कि सदैव एक नैतिक और भावयुक्त सिद्धान्त एवं धर्म की खोज में थे, जिसके द्वारा हृदय की सन्तुष्टि और नैतिक शिक्षण संभव हो। इन्हीं परिस्थितियों में भक्ति-प्रेम मिश्रित ईश्वर-भजन के आन्दोलन ने एक अनुकूल वातावरण पाया।" वस्तुतः इस समय हिन्दू धर्म का स्वरूप अत्यन्त जटिल हो गया था तथा उपवास, कर्मकाण्ड एवं आडम्बर लगातार बढ़ रहे थे, अतः साधारण जनता उनका अनुसरण नहीं कर पा रही थी। परिणामस्वरूप भक्ति आन्दोलन के उदय का मार्ग प्रशस्त हुआ।

(2) सिद्धों का प्रभाव- भक्ति आन्दोलन के विकास में अनेक दार्शनिक विचारधाराओं का योगदान रहा है। **बौद्ध धर्म** के परवर्ती रूपों—वज्रयान, सहजयान तथा पाशुपत मत, योग परम्परा आदि ने भक्ति धारा को नवीनता प्रदान की। बौद्धों के वज्रयान में जब तंत्र- मंत्र का प्रभाव अधिक बढ़ा तो उसके फलस्वरूप भ्रष्टाचार का साम्राज्य बढ़ने लगा तो सिद्धों ने उन भ्रष्टाचारी सिद्धान्तों का खण्डन करके एक सहज मार्ग का नारा बुलन्द किया। ये सिद्ध जीवन की सहज

प्रवृत्तियों में विश्वास रखते थे। इसी कारण इनके सिद्धान्तों को सहज मार्ग कहा गया। ये लोग चित्त शुद्धि पर विशेष बल देते थे तथा जीवन में सदाचार, निर्मल चरित्र आदि को अधिक महत्त्व देते थे। कबीर, नानक आदि सन्त कवियों पर इस सहजयान का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा।

(3) अद्वैतवाद का प्रभाव- भक्तिकालीन सन्तों पर अद्वैतवाद का काफी प्रभाव पड़ा था। उनका ज्ञान तथा उपदेश अद्वैत पर आधारित है। सन्त, कवि माया की सत्ता और जीव ब्रह्म की एकता को स्वीकार करते हैं। इस एकता में माया बाधक है। ज्ञान से माया का नाश किया जा सकता है। ब्रह्म की प्राप्ति के लिए वे विशिष्टाद्वैतिय की भक्ति भावना को स्वीकार करते हैं। इस प्रकार अद्वैतवाद के प्रभाव के फलस्वरूप भक्ति-आन्दोलन के विकास में सहायता मिली।

4) इस्लाम धर्म का प्रभाव- मध्यकालीन भारत में हिन्दू संस्कृति अपनी पूर्णता तथा प्राचीन परम्परा को संजोये अपने अस्तित्व की रक्षा करने का प्रयत्न कर रही थी तो दूसरी तरफ नवीन धार्मिक उन्माद से ओत-प्रोत मुस्लिम संस्कृति उस पर हावी होना चाहती थी। इसके परिणामस्वरूप हिन्दू तथा मुसलमानों में आपसी घृणा का भाव पैदा हो रहा था। अपनी रक्षा की भावना से हिन्दुओं के सामाजिक बंधनों के दृढ़ तथा संकीर्णता के आवरण में धार्मिकता गौण हो गई थी। उस युग के प्रतिभाशाली सन्तों को यह संकीर्णता ठीक प्रतीत नहीं हुई। उन्होंने आध्यात्मिकता के आधार पर इसका विरोध किया। इस प्रकार **कबीर** ने इस विद्रोही भावना में आत्म-विश्वास की दृढ़ता का मंत्र फूंका। उसे संकीर्णताओं से मुक्त किया और समता के आधार पर एक नवीन संस्कृति की शुरूआत की जो कि सभी के लिए समान रूप से ग्राह्य थी तथा जो हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों के लिए स्वीकार्य तथा श्रेष्ठ थी। इसमें धार्मिक मत-मतान्तरों, वादों, विचारधाराओं को अपने भीतर समेटने की क्षमता थी।

(5) मन्दिर तथा मूर्तियों को नष्ट करना- मुस्लिम आक्रमणकारियों ने भारत आकर मनमाने तरीके से मूर्तियों को नष्ट किया तथा मन्दिरों का विनाश किया। उन्होंने हिन्दुओं के पवित्र स्थलों को अपवित्र किया। तत्कालीन समय में हिन्दू स्वेच्छापूर्वक अपने धर्म का पालन नहीं कर सकते थे, फलत: ईश्वरभक्त हिन्दुओं ने अपने इष्ट देवता की मूर्ति के अभाव में भक्ति मार्ग का अनुसरण किया, क्योंकि यही मार्ग उन्हें श्रेष्ठ तथा निरापद प्रतीत हुआ।

(6) ईसाई धर्म का प्रभाव- विदेशी इतिहासकारों ने भक्ति आन्दोलन के उदय का कारण ईसाई धर्म के प्रभाव को बतलाया है। **वेबर** के अनुसार, "भक्ति आध्यात्मिक चरम-मोक्ष के साधन और उसके लिए एक शर्त के रूप में विदेशी विचार था जो कि भारत में ईसाई धर्म के साथ आया और जिसने पुराणों और महाकाव्ययुगीन हिन्दू धर्म पर एक गहरा प्रभाव डाला।" इस कथन को पूर्ण रूप से सत्य नहीं माना जा सकता है। इसकी आलोचना करते **डॉ. यूसुफ हुसैन**, **वर्थ** तथा **सेनार्ट** आदि विद्वान् भारत में भक्ति को काफी प्राचीन मानते हैं। तत्कालीन समय में दक्षिण में कुछ संख्या में ईसाई अवश्य थे लेकिन भक्ति को उनकी देन मानना सर्वथा अनुचित है।

(7) जाति व्यवस्था की जटिलता- कट्टरपंथी हिन्दुओं ने विदेशी मुस्लिम आक्रमणकारियों के प्रभाव से हिन्दू धर्म को बचाने के लिए उसे जटिलता का रक्षा कवच पहना दिया तथा खान-पान, विवाह और वर्ण-व्यवस्था को पहले की तुलना में कठोर रूप प्रदान किया। उसमें किसी प्रकार के परिवर्तन का अधिकार किसी को भी नहीं मिला हुआ था, फलतः निम्न जातियों की स्थिति उत्तरोत्तर खराब होने लगी। वे एक तरफ उच्च वर्ग की घृणा की भावना से दुःखी थे तथा दूसरी तरफ मुस्लिम आक्रमणकारी उनका शोषण करते थे। हिन्दू धर्म में मोक्ष का मार्ग सभी वर्गों के लिए उन्मुख नहीं था लेकिन भक्ति- आन्दोलन के प्रवर्तकों ने अपनी उदारता के कारण मोक्ष का द्वार सभी के लिए खोलकर निम्न जाति के लोगों को इस तरफ आकर्षित किया।

(8) मुस्लिम आक्रमणकारियों के अत्याचार- भक्ति आन्दोलन के उदय का एक अन्य महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि जब मुसलमान हिन्दुओं पर अत्याचार करने लगे तो हिन्दू निराश होकर ईश्वर की तरफ उन्मुख हुये। मध्यकाल में अधिकतर मुस्लिम शासकों ने किसी न किसी रूप में हिन्दुओं पर भयंकर अत्याचार किये थे। अतः पीड़ित हिन्दू ईश्वर भक्ति की तरफ उन्मुख हुये। **सरदार के.एम. पन्निकर** का मत है कि "इस्लाम धर्म के अनुयायियों द्वारा किये गये अत्याचार भी भक्ति आन्दोलन के उद्भव के लिये उत्तरदायी थे।"

(9) हिन्दुओं की पलायनवादी प्रवृत्ति- मुस्लिम आक्रान्ताओं के लगातार उत्पीड़न के फलस्वरूप हिन्दुओं का शौर्य तथा पराक्रम कुण्ठाग्रस्त हो गया था। हिन्दू ईश्वर की भक्ति की ओर झुकने के लिए बाध्य हुए और उसके माध्यम से मुसलमानों से मुक्ति का मार्ग ढूंढ़ने का प्रयास किया। **डॉ. विद्याधर** महाजन के शब्दों में, "भक्ति आन्दोलन ने उस भावना का प्रतिनिधित्व किया जिसे पलायनवाद के नाम से जाना जाता है। इस समय में बहुत से हिन्दुओं ने सांसारिक जीवन में उन्नति के लिये कोई न कोई मार्ग पाया और इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि उन्होंने स्वयं भक्ति में अपना विश्वास रखकर अपने को भूल जाना चाहा।"

(10) तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ- भक्ति आन्दोलन के उदय में राजनीतिक परिस्थितियों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। छठी शताब्दी के बाद ही भारत पर विदेशी जातियों के आक्रमण होते रहे थे। राजनैतिक दृष्टि से राज्यों की सुरक्षा का भार क्षत्रियों के ऊपर था। इसलिए सामान्य जनता इन लगातार होने वाले आक्रमणों से तंग आ चुकी थी। राजपूत काल के आगमन तक तो यह स्थिति और भी चिन्ताजनक बन गई थी।

अतः राजनीतिक उदासीनता के कारण जनसाधारण की शासन में कोई रुचि नहीं रह गई थी। वह आन्तरिक शान्ति की खोज में थी जबकि इस्लाम धर्म के आगमन ने इसे और भी अनिवार्य बना दिया था। तत्कालीन समय में हिन्दुओं के मंदिरों को तोड़ा तथा मूर्तियों को अपवित्र किया गया। इससे हिन्दू जनता और भी अधिक भयभीत हो गई तथा वे मुसलमानों के इन धार्मिक अत्याचारों से अपने आपकों कैसे अलग रख सकते थे। इसका एकमात्र उपाय भक्ति आन्दोलन था। इसी के द्वारा हिन्दू जाति के लोग आध्यात्मिक जगत में विचरण करके मानसिक शान्ति प्राप्त कर सकते थे। परिणामस्वरूप सामाजिक तथा धार्मिक संगठन इस तरफ आगे बढ़े। इस प्रकार राजनैतिक परिस्थितियाँ भी भक्ति आंदोलन के उदय के लिए जिम्मेदार थीं।

(11) हिन्दू धर्म और जाति की सुरक्षा की भावना- विदेशों से आये मुसलमान जाति के लोग हिन्दू राज्य को मुस्लिम राज्य में परिवर्तित करना चाहते थे। अत: उनका हिन्दुओं के प्रति व्यवहार अत्यन्त कठोर तथा उग्र था। वे हिन्दुओं को अनेक प्रकार के प्रलोभन देते थे ताकि वे इस्लाम धर्म स्वीकार कर लें। इसलिए हिन्दुओं के हृदय में अपने धर्म और जाति की सुरक्षा का प्रश्न खड़ा होना अत्यन्त स्वाभाविक था। इसीलिए उन्होंने भक्ति आन्दोलन के सन्तों तथा समाज सुधारकों के माध्यम से अपने धर्म तथा जाति की सुरक्षा हेतु हर संभव प्रयास किया।

2.6 भक्ति आन्दोलन का विकास

भारतवर्ष में भक्ति की परम्परा बहुत ही प्राचीन रही है। कुछ विद्वान् इसे **आर्येत्तर** तत्त्व के रूप में मानते हैं। **सिन्धु घाटी** की खुदाई में मूर्तिपूजा के कुछ प्रतीक प्राप्त हुए हैं। **वैदिक परम्परा** में भी भक्ति की भावना पाई जाती है। **वेदों** में सूर्य-इन्द्र-वरुण आदि देवताओं की श्रद्धापूर्ण स्मृतियाँ मिलती हैं। **गीता** की रचना के समय तक तो भक्ति आर्य संस्कृति

का अंग बन चुकी थी। **ईसा** के पूर्व ही भागवत धर्म का उदय हो चुका था तथा उसके साथ ही व्यक्ति का रूप स्पष्ट हो चुका था।

भक्ति परम्परा का प्रारम्भिक विकास दक्षिण भारत में हुआ। छठी शताब्दी ईसा पूर्व से नवीं शताब्दी ईसा पूर्व के मध्य दक्षिण भारत में आलवार सन्तों ने भक्ति मार्ग का प्रचार किया। भागवत में भक्ति के मुख से कहलवाया गया है कि "मैं द्रविड़ देश में जन्मी, कर्नाटक में विकसित हुई, कुछ समय महाराष्ट्र में रही और गुजरात में पहुँचकर जीर्ण हो गई।" इस प्रकार दक्षिण भारत में विकसित हुई यह भक्ति परम्परा मध्य काल में आई तथा **सन्त रामानन्द** आदि धर्म प्रचारकों के द्वारा यहाँ उसका प्रचार किया गया। मध्य युग में मुस्लिम आक्रान्ताओं के अत्याचारों के कारण हिन्दुओं में निराशा एवं पलायनवादी भावना जागृत हो गई थी। उस समय साधु-सन्तों ने निराश हिन्दुओं के हृदय में भगवान के प्रति प्रेम व आस्था पुन: उत्पन्न करने के लिए भक्ति मार्ग जैसा सरल सिद्धान्त प्रस्तुत किया। इससे भक्ति आन्दोलन की धारा तीव्र गति से बहने लगी।

2.7 भक्ति आन्दोलन की प्रमुख विशेषताएँ

(1) ईश्वर की एकता पर जोर देना- भक्ति आन्दोलन के अधिकतर सन्तों ने ईश्वर की एकता पर बल दिया। एकेश्वरवाद इन सन्तों की शिक्षाओं का मूल मंत्र था। इस काल के सभी सन्त इस बात पर सहमत थे कि ईश्वर एक है जिसे लोग राम, कृष्ण, विष्णु तथा अल्लाह आदि विभिन्न नामों से जानते हैं। यह एक उल्लेखनीय बात थी कि ईश्वर के सगुण तथा निर्गुण रूपों के उपासक होने पर भी इन सन्तों में एक-दूसरे के प्रति धार्मिक सहिष्णुता की भावना विद्यमान थी।

(2) मूर्तिपूजा का खण्डन करना- भक्ति काल के सन्तों ने मुख्य रूप से भारतीय धर्म में चली आ रही मूर्तिपूजा जैसी बुराइयों का खण्डन किया। कबीर ने इस संबंध में कहा 'पाहन पूजे हरि मिले तो मैं पूजू पहार' अर्थात् पत्थर की पूजा करने पर यदि भगवान मिलते हैं तो वह पहाड़ पूजने के लिए तैयार है। अर्थात् मूर्तिपूजा व्यर्थ है। कुछ सन्तों की यह मान्यता थी कि यदि पत्थरों की पूजा में ही शक्ति होती तो वे स्वयं गिर जाने पर टूट क्यों जाते हैं। इस प्रकार भक्तिकाल में मूर्तिपूजा का घोर विरोध किया गया तथा शुद्ध भक्ति एवं चिन्तन पर बल दिया गया।

(3) पाखण्डों तथा आडम्बरों का खण्डन करना- भक्ति आन्दोलन के प्रायः सभी सन्तों ने पाखण्डों तथा आडम्बरों का खण्डन किया तथा शुद्ध आचरण तथा विचारों की पवित्रता पर विशेष बल दिया। इस काल के सभी सन्तों ने पाखण्डों तथा आडम्बरों को निरर्थक बतलाया तथा चरित्र एवं भावना की शुद्धता पर एक स्वर से बल दिया।

(4) सामाजिक समानता तथा भ्रातृत्व पर जोर देना- भक्ति काल के सभी सन्त सामाजिक समानता के समर्थक थे। उन्होंने जाति-प्रथा तथा ऊँच-नीच के भेदभावों का खण्डन करके सामाजिक समानता पर बल दिया। इन सन्तों ने निम्न वर्ग के लोगों को अपने सम्प्रदाय में दीक्षित किया तथा उन्हें भक्ति मार्ग का अधिकारी बतलाया। उन्होंने समस्त प्रकार के भेदभावों को भुलाकर प्राणीमात्र की एकता पर जोर दिया। उन्होंने यह सिद्ध किया था कि भगवान के दरबार में पहुँचने के लिए उच्च जाति का होना आवश्यक नहीं है अपितु भक्तिमय हृदय वाला कोई भी निम्न जाति का

व्यक्ति भगवान से साक्षात्कार कर सकता है। उन्होंने विश्व बन्धुत्व का पाठ पढ़ाया तथा समस्त मानव जाति के उत्थान पर बल दिया। **"जात-पांत पूछे न कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।"** यह भक्ति आन्दोलन का सर्वविदित लोकप्रिय नारा था।

(5) साम्प्रदायिकता का अभाव- भक्ति आन्दोलन के अधिकतर सन्त साम्प्रदायिकता की भावना से रहित थे। वे किसी भी सम्प्रदाय अथवा धर्म के कट्टर अनुयायी न थे। सभी सन्तों ने कट्टरता तथा अन्धविश्वासों के स्थान पर उदार दृष्टिकोण पर बल दिया। कबीर, नानक आदि सन्तों ने हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियों में आपसी सामंजस्य पर जोर दिया।

(6) नाम, महिमा, स्तुति तथा सत्संग का सहारा लेना- भक्ति भावना के विकास के लिए भगवान के नाम का स्मरण करना अत्यंत उपयोगी होता है। भगवान के नाम का स्मरण करने से मन में पवित्र भावों का जन्म होता है तथा पापों का विनाश होता है। भगवान के भक्तों को शुद्ध चित्त व मन से भगवान की स्तुति करनी चाहिए। यह स्तुति दास अथवा सखा भाव से की जा सकती है। भजन, कीर्तन आदि को भी स्तुति के अन्तर्गत शामिल किया जाता है। इसके अलावा आत्मा की शान्ति के लिए भक्ति भावना की उत्पत्ति तथा विकास के लिए सत्संग के महत्त्व पर जोर दिया गया है।

(7) शुभ कर्मों एवं सद्गुणों के विकास पर बल देना- भक्ति आन्दोलन के सन्तों की यह मान्यता थी कि निष्काम भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है। वह व्यक्ति जो कि सांसारिक लोभ, मोह, काम, क्रोध, अहंकार आदि का परित्याग करके पूर्ण तल्लीनता से अपने आराध्य देव का ध्यान करता है, वही भक्ति भावना का विकास करने में सफल होता है। अत: ईश्वर की प्राप्ति तथा मानव जीवन को सफल एवं सुखी बनाने के लिए कर्म, वचन तथा मन की पवित्रता अति आवश्यक है।

(8) मोक्ष का साधन भक्ति मानना- भक्ति आन्दोलन के सन्तों ने ईश्वर भक्ति को सर्वोच्च स्थान दिया। ये सन्त ईश्वर भक्ति को मोक्ष प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन मानते थे। उन्होंने स्वार्थरहित भक्ति तथा अनन्य श्रद्धा रखने पर बल दिया था।

(9) गुरु की महत्ता पर जोर देना- भक्ति काल के सभी सन्तों ने गुरु की महत्ता पर बल दिया। उनका मानना था कि ईश्वरीय ज्ञान की प्राप्ति के लिए गुरु की सहायता परम आवश्यक है। गुरु की सहायता के अभाव में साधक के मन की बुराइयों का दूर होना तथा भगवान की प्राप्ति असंभव है। गुरु ही मनुष्य की सुप्त आत्मा को जगाता है तथा सेवा, प्रेम एवं भक्ति के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है। कबीर ने तो गुरु का स्थान ईश्वर से भी अधिक पूज्यनीय माना है।

(10) हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल देना- भक्ति आन्दोलन के अनेक सन्तों ने हिन्दू तथा मुसलमानों की एकता पर बल दिया। कबीर, नानक आदि सन्तों ने हिन्दू तथा मुसलमानों के बीच की खाई को पाटने का प्रयत्न किया था। उन्होंने राम और रहीम तथा ईश्वर और अल्लाह में कोई अन्तर नहीं माना। उनके प्रयासों के फलस्वरूप हिन्दू तथा मुसलमानों के मध्य कटुता में कमी आई तथा इन दोनों संस्कृतियों में समन्वय स्थापित किये जाने के लिये अनुकूल वातावरण पैदा हुआ।

(11) धर्म-परिवर्तन पर रोक लगाना- भक्ति आन्दोलन के फलस्वरूप इस्लाम के आगमन पर जो धर्म-परिवर्तन की कार्यवाही चल रही थी। उस पर तत्काल प्रभाव से प्रभावशाली रोक लग गई थी। इस विचारधारा ने मुसलमान धर्म ग्रहण कर रहे निराश हिन्दुओं को अपने धर्म में ही रहने की सलाह दी। निम्न जाति के लोगों ने इस आन्दोलन के परिणामस्वरूप हिन्दू धर्म में ही रहकर अपने उद्देश्य की पूर्ति की थी।

(12) राज्याश्रय रहित आन्दोलन होना- भक्ति आन्दोलन की यह प्रमुख विशेषता थी कि यह राज्याश्रय रहित आन्दोलन था। इसके अधिकतर सन्त और प्रचारक समाज के निम्न वर्ग से सम्बन्धित थे। उन्हें राज दरबार से कोई लेना-देना नहीं था। उनकी ईश्वर भक्ति में असीम आस्था थी तथा वे भक्ति मार्ग के सन्देश को साधारण लोगों तक पहुँचाने के लिए दृढ़ संकल्प थे।

(13) जन-भाषाओं का प्रयोग करना- जैन तथा बौद्ध मतावलम्बियों के अनुसार ही भक्ति आन्दोलन के सन्तों ने भी अपनी शिक्षाओं का प्रचार व प्रसार जन भाषाओं में ही किया जिससे जन-साधारण उन्हें आसानीपूर्वक हृदयंगम कर सके। कबीर, नानक, मीरा, नामदेव आदि सन्तों ने स्थानीय भाषाओं को प्रोत्साहित किया था।

(14) प्रपत्ति- भक्ति आन्दोलन के सन्तों की यह मान्यता थी कि ईश्वर के सम्मुख पूर्ण रूप से आत्म-समर्पण किये बिना ईश्वरीय ज्ञान की प्राप्ति असंभव है। इसके लिए सभी सन्तों ने यह उपदेश दिया कि भगवान की शरण को ही एकमात्र आश्रय माना जाना चाहिए तथा भगवान की प्रत्येक इच्छा को नत-मस्तक होकर स्वीकार कर लेना चाहिये।

2.8 भक्ति आन्दोलन का महत्त्व तथा प्रभाव

मध्यकालीन भारत के इतिहास में भक्ति आन्दोलन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह तत्कालीन समय एक लोकप्रिय जन आन्दोलन था जिसने सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों को काफी प्रभावित किया। भक्ति आन्दोलन के महत्त्व एवं प्रभाव का विवेचन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया गया है-

(1) हिन्दू-मुस्लिम एकता को प्रोत्साहन देना- भक्ति आन्दोलन के प्रचारकों ने हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल दिया। इस आन्दोलन के फलस्वरूप हिन्दू तथा मुसलमानों में धार्मिक सहिष्णुता का उदय हुआ। अपनी धार्मिक कट्टरता का परित्याग करके हिन्दू व मुसलमान दोनों एक-दूसरे के निकट आकर प्रेमपूर्ण व्यवहार करने लगे थे। इसके परिणामस्वरूप हिन्दू तथा मुस्लिम संस्कृतियों में सामंजस्य एवं समन्वय के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा हो गई।

(2) हिन्दू धर्म में व्याप्त बुराइयों को दूर करना- भक्ति आन्दोलन के सन्तों ने हिन्दू धर्म में व्याप्त बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया तथा उसे इस प्रकार शुद्ध और पवित्र धर्म बनाया कि धार्मिक सन्तों के प्रचार के परिणामस्वरूप हिन्दू धर्म में ऊँच-नीच के भेदभाव कम होने लगे और सभी लोग मिलकर रहने लगे। बाह्य आडम्बर तथा व्यर्थ के रीति-रिवाज ढीले पड़ने लगे तथा जनसाधारण ने शुद्ध कर्मों की ओर ध्यान देना शुरू कर दिया। इस प्रकार भक्ति आन्दोलन के प्रचारकों ने हिन्दू धर्म को सुधारने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

(3) सामाजिक समानता और भ्रातृत्व का प्रचार करना- भक्ति आन्दोलन ने भारतीय समाज को भी पर्याप्त रूप से प्रभावित किया। इस आन्दोलन ने जाति-प्रथा, ऊँच-नीच, छुआछूत आदि कुरीतियों का विरोध किया। धार्मिक सन्तों ने निम्न वर्ग के लोगों के लिए भी मोक्ष के द्वार खोल दिये थे। इस आन्दोलन के द्वारा शूद्रों तथा निम्न जातियों के लोगों में आत्मसम्मान तथा विश्वास की भावनाएँ जागृत हुईं तथा उनको भी समाज का सम्माननीय अंग माना गया। परिणामस्वरूप दलित तथा पिछड़ी जातियों के लोगों को भी ऊपर उठ्ने का अवसर प्राप्त हुआ।

(4) निराश हिन्दू जनता में नवीन शक्ति का संचार करना- भक्ति आन्दोलन ने हिन्दू जनता में एक नवीन शक्ति का संचार किया। पीड़ित, शोषित तथा दुःखी हिन्दू समाज के लिये भक्ति आन्दोलन बड़ा ही उपयोगी सिद्ध हुआ। इस आन्दोलन के फलस्वरूप उन लोगों में अद्भुत सहनशक्ति पैदा हो गई थी। इन्हीं सन्तों के अथक प्रयासों के परिणामस्वरूप ही हिन्दू धर्म अपनी रक्षा करने में समर्थ हुआ।

(5) राजनीतिक क्षेत्र में प्रभाव- भक्ति आन्दोलन ने राजनीतिक क्षेत्र में हिन्दू जाति में आई उदासीनता को जागृत कर यह सिद्ध कर दिया कि भारतीय अपनी संस्कृति और धर्म के माध्यम से अपनी रक्षा करने में समर्थ हैं। उसमें भी राजनीतिक शक्ति है। पंजाब में सिक्ख राज्य तथा दक्षिण में मराठा राज्य की स्थापना भक्ति आन्दोलन के प्रमुख प्रचार का ही प्रभाव था। इन दोनों राज्यों में मुगलकाल तथा ब्रिटिश काल में भी हिन्दुत्व की रक्षा की तथा हिन्दू संस्कृति को पुनर्जीवित किया। इस प्रकार भक्ति आन्दोलन के फलस्वरूप ऐसे अनेक देशभक्तों का जन्म हुआ जो मुगल तथा अंग्रेजों से डटकर लोहा लेते रहे तथा भारतीय इतिहास में अपना अस्तित्व कायम रख सके।

(6) नवीन सम्प्रदायों का उदय- भक्ति आन्दोलन ने तत्कालीन समय में देश के लोगों के धार्मिक जीवन पर भी व्यापक प्रभाव डाला। भक्ति आन्दोलन के सन्तों द्वारा उनके नामों पर अनेक धार्मिक सम्प्रदायों की स्थापना हुई जो कि वर्तमान समय तक जीवित है। इन सम्प्रदायों के अन्तर्गत कबीरपंथ, दादूपंथ तथा सिक्ख सम्प्रदाय आदि उल्लेखनीय हैं!

(7) प्रान्तीय भाषाओं का विकास होना- मध्य काल में भारत की प्रान्तीय भाषाओं के विकास का श्रेय भक्ति आन्दोलन को ही दिया जाता है। इस आन्दोलन के प्रमुख सन्तों ने अपनी साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से हिन्दी साहित्य तथा अन्य प्रान्तीय भाषाओं को विकासोन्मुख किया।

रामानन्द, कबीर, सूरदास, जायसी, दादू, वल्लभाचार्य आदि सन्तों ने हिन्दी में अपनी रचनाएँ लिखीं । सूरदास ने ब्रज भाषा तथा तुलसीदास ने अवधी भाषा को पल्लवित किया । गुरुनानक के प्रयासों के फलस्वरूप गुरुमुखी तथा पंजाबी भाषा का विकास हुआ । नामदेव, ज्ञानेश्वर तथा सन्त तुकाराम ने मराठी भाषा का विकास किया । चैतन्य महाप्रभु तथा चण्डीदास ने बंगला भाषा के विकास में अतुलनीय योगदान दिया। नरसी मेहता की कविताओं ने गुजराती साहित्य को उन्नत किया । राजस्थानी भाषा को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से **मीराबाई** का नाम विशेष उल्लेखनीय है । इस काल में सबसे अधिक हिन्दी भाषा का विकास हुआ जो आगे

चलकर समस्त भारत की **राजभाषा** के रूप में परिणित हुई। इस प्रकार साहित्य के विकास के क्षेत्र में भक्ति आन्दोलन ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

2.10. सारांश

यूरोपीय इतिहस के सन्दर्भ में, 5वीं शताब्दी से लेकर 15वीं शताब्दी की कालावधि कि मध्य युग (मिडिल एज़) कहा जाता है। रोमन साम्राज्य के पतन के उपरान्त, पाश्चात्य सभ्यता एक हजार वर्षों के लिये उस युग में प्रविष्ट हुई, जो साधारणतया मध्ययुग (मिडिल एजेज) के नाम से विख्यात है। इस काल की विभिन्न प्रकार की रचनाओं में इतिहास की रचनाएं, शासकों की जीवनियां व आत्मकथाएं, प्रशासनिक फरमान(आदेश पत्र) संबंधी रचनाएं, साहित्यिक कृतियां, व विदेशी यात्रियों द्वारा लिखित भारत के संबंध में यात्रा विवरण आदि इस काल के इतिहास को जानने के महत्वपूर्ण स्रोत हैं।

प्राचीन एवं पूर्व मध्य कालीन भारतीय महिला कन्या ,पत्नी ,माता एवं विधवा के रूपमें भरणीय , पोषणीय एवं रक्षणीय थी किन्तु कोई न कोई पुरूष उसकी देख - रेख करता था और वह अभिभावक के नियंत्रण में रहने को बाध्य थी। वर्ण विभाजित पितृ प्रधान समाज में महिलाओं को सामाजिक , पारिवारिक , धार्मिक एवं आर्थिक दृष्टि से पराधीन करने के प्रयत्न किये गये तथा उनके अधिकारों को समान नहीं माना गया। सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र में उन्हें कुछ अधिकार दिये गये किन्तु कुछ ऐसी स्वतन्त्रतायें थी जिनसे स्त्रियां वंचित थीं। स्त्री और पुरूषों के निजी ओर सामाजिक आचरण की उच्छाई बुराई के मानदण्ड भिन्न थे। व्यक्तिगत एवं सा माजिक दोनोंस्तरों पर नारी पर प्रभुत्व और अधिकार स्थापित कर उसे अधीनस्थ करने का प्रयत्न किया गया जो साम न्ती मानसिकता का लक्षण है। पूर्वमध्यकालीन भारत में पारिवारिक महिलायें विवाह के चुनाव में स्वतन्त्र नहीं थी और जाति तथा कुल धर्म के सिद्धान्तों से बंधी हुई थीं जिन्हें राज्य से भी मान्यता प्राप्त थी। स्वयंवर प्रथा का प्रमाण राजपरिवारों तक सीमित था जिसमें कन्या स्वेच्छापूर्वक अपने पति का वरण करती थी।

जनजातीय समाज में अपेक्षाकृत अधिक स्वतन्त्रता के प्रमाण मिलते हैं। परवर्ती कालों में गांधर्व विवाह भी निचले वर्गों तक सीमित हो गया। मध्यकालीन बोध और आधुनिक बोध के अंतर को सार रूप में समझाते हुए डॉ . बच्चन सिंह लिखते हैं - ' मध्यकाल अपने अवरोध , जड़ता और रूढ़िवादिता के कारण स्थिर और एकरस हो चुका था , एक विशिष्ट ऐतिहासिक प्रक्रिया ने उसे पुनः गत्यात्मक बनाया। मध्यकालीन जड़ता और आधुनिक गतयात्मकता को साहित्य और कला के माध्यम से समझा जा सकता है। रीतिकाल में कला और साहित्य अपने - अपने कथ्य , अलंकृति और शैली में एकरूप हो गये थे। वे घोर शृंगारिकता के बंधे घाटों से बह रहे थे। न छंदों में वैविध्य था और न विन्यास में एक ही प्रकार के छंद एक ही प्रकार के ढंग। आधुनिक काल में बंधे हुए घाट टूट गये और जीवन धारा विविध स्रोतों से फूट निकली। साहित्य मनुष्य के बृहत्तर सुख - दुख के साथ पहली बार जुड़ा। ' एक अन्य महत्वपूर्ण अंतर की ओर संकेत करते हुए वे आगे लिखते हैं - ' मध्यकाल में पारलौकिक दृष्टि से मनुष्य इतना अधिक आच्छन्न था कि उसे अपने पाश की सुध ही नहीं थी , पर आधुनिक युग में वह अपने पर्यावरण के प्रति अधिक सतर्क हो गया। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि युगीन वातावरण तथा परिस्थितियाँ परिवर्तन का कारण बनती हैं। इसलिए आधुनिक बोध विविध संदर्भो में मध्यकालीन बोध से अलग है। मध्यकालीन बोध तथा आधुनिक बोध के स्वरूप का उद्घाटन करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने भी लिखा है - ' इस नये युग में व्यक्ति क्रमशः स्वतंत्र होता गया है तथा और भी स्वतंत्र होता जा रहा है। इससे पहले के युग में मनुष्य और मनुष्य का संबंध सीधा और

प्रत्यक्ष होता था। लेकिन नए युग का संबंध बाजार के माध्यम से होने लगा है। प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक , राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्र तो हो रहा है परंतु उसकी योग्यता और स्वाधीनता बाजार के मूल्यों द्वारा नियंत्रित होती है। '

2.10. बोध प्रश्न

1. मध्यकालीन युगीन परिस्थितियाँ और मध्यकालीन भारत में भक्ति आंदोलन के बारे में लिखिए।

2. भक्ति आन्दोलन का उद्भव, स्वरूप और उदय के कारण को बताए हुए भक्ति आन्दोलन का विकास के बारे में सविस्तार रूप में लिखिए।

3. भक्ति आन्दोलन की प्रमुख विशेषताएँ और भक्ति आन्दोलन का महत्त्व तथा प्रभाव के बारे में लिखिए।

डॉ .अन्नदासु. सरला देवी

3. संत काव्य परंपरा - कबीर

3.0. उद्देश्य

संत कवियों में एक भक्त, युग-चिंतक और एक प्रखर व्यक्ति के रूप में कबीर का स्थान अन्यतम है। इनके जन्म और मरण की तिथियों के संबंध में पर्याप्त मतभेद है। "1455 साल गए चंद्रवार एक ठाट ठए" के आधार पर उनका जन्म सवंत 1455 (सन 1398) को माना जाता है। कुछ लोग इसका अर्थ 1455 साल बीतने पर यानि 1456 लगाते हैं। इस काव्य में ज्ञान की महत्ता को प्रतिपादित किया गया है। यह ज्ञान वेद-पुराणों या कुरान से नहीं, बल्कि चित्त की निर्मलता एवं हृदय की पावनता से प्राप्त किया जाता है। संत काव्य में गुरु की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए उसे ईश्वर से भी बड़ा बताया गया है। इस काव्य में अद्वैतवादी दर्शन को स्थान मिला है। इस इकाई में हम संत काव्य परंपरा और उसमें कबीर के स्थान के बारे में विस्तृत चर्चा करेंगे।

रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 संत कबीर का काव्य, भक्ति, दर्शन और जीवन परिचय

3.3 संत काव्य परंपरा

3.4 संत काव्य परंपरा की प्रवृत्तियाँ/विशेषताएँ

3.5 संत काव्य परंपरा में कबीरदास

3.6 संत काव्य धारा के प्रमुख कवि और उनकी रचनाएँ

3.7 सारांश

3.8 बोध प्रश्न

3.9 सहायक ग्रन्थ

3.1. प्रस्तावना

'संत काव्य' का सामान्य अर्थ है संतों के द्वारा रचा गया, काव्य। लेकिन जब हिन्दी में 'संत काव्य' कहा जाता है तो उसका अर्थ होता है निर्गुणोपासक ज्ञानमार्गी कवियों के द्वारा रचा गया काव्य। भारत में संतमत का प्रारम्भ 1267 ई. में "संत नामदेव" के द्वारा किया हुआ माना जाता है। कबीर भारत की उज्ज्वल गौरवमयी संत परंपरा में सर्वाधिक समर्पित एवं विनम्र संत हैं। वे गुरुओं के गुरु थे, उनका फकडपन और पुरुषार्थ, विनय और विवेक, साधना और संतता, समन्वय और सहअस्तित्व की विलक्षण विशेषताएं युग-युगों तक मानवता को प्रेरित करती रहेगी। रोमन कैथोलिक चर्च द्वारा मान्यता प्राप्त 10,000 से अधिक संत हैं, हालांकि इनमें से कुछ पवित्र पुरुषों और महिलाओं के नाम और इतिहास इतिहास में खो गए हैं। चर्च के संत विविध और दिलचस्प कहानियों वाले लोगों का एक विविध समूह हैं।

3.2. संत कबीर का काव्य, भक्ति, दर्शन और जीवन परिचय

संत कबीर 14 वीं. शताब्दी के अंत से 16 वीं. शताब्दी के आरंभ तक की समयावधि में एक जुलाहा होने के साथ साथ एक प्रसिद्ध संत कवि थे। यह भारत में भक्ति आंदोलन का काल था। राजनैतिक दृष्टि से इस काल अवधि में इस्लामी शासक सम्पूर्ण भारत में अपना आधिपत्य स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे थे। वे हिंदुओं को नाना प्रकार से प्रताड़ित कर रहे थे। उस समय सभी हिन्दूओं ने भक्ति मार्ग का आसरा लिया । उन्होंने देवी-देवताओं की शरण ली, उनकी स्तुति गाने लगे तथा उनमें आसरा ढूंढने लगे। कबीर की रचनाओं के अनेक रूप मिलते हैं, जैसे साखी, शबद, रमैनी, उलटभाषी तथा वसंत। साखी का मूल शब्द है, साक्षी अर्थात देखा हुआ। कबीर की रचनाओं में कई दोहे हैं जिनके विषय में कहा जाता है कि उनकी रचना उन्होंने तब की जब उन्होंने ऐसा कुछ देखा जिसने उनके मन-मस्तिष्क में अनेक विचार उत्पन्न किये। उनके अधिकतर साखी हमारे समक्ष एक सम्पूर्ण दृश्य एक विचार लिए हुए ज्ञान के मोती का बोध कराते हैं और पढ़ें – देख कबीर रोया, भगवतीशरण मिश्र

कबीर की अधिकतर रचनाएं मौखिक रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित हुई हैं। यही कारण है कि इनके विभिन्न संस्करणों में हम शब्दों का हेर-फेर पाते हैं। उदाहर के लिए उनकी एक रचना है, 'पानी में मीन प्यासी'। इसकी दूसरी पंक्ति कुछ लोग 'मोहे सुन सुन आवे हासी' गाते हैं तो कुछ इसे 'मोहे देखत आवे हासी' गाते हैं। यद्यपि दो संस्करणों का अर्थ तथा ध्येय एक ही होता है, किन्तु शब्द कभी कभी परिवर्तित हो जाते हैं। कबीर अपनी रचनाओं में स्वयं को दास कबीर के नाम से संबोधित करते हैं। किन्तु वर्तमान में उनकी रचनाओं को गाते समय उन्हें कभी-कभी दास कबीर के स्थान पर संत कबीर कहकर भी संबोधित किया जाता है।

यदि आप मालवा अथवा राजस्थानी गायकों के मुख से कबीर के दोहे सुनेंगे तब आप पाएंगे कि वे कई आम शब्दों को स्थानीय भाषा में परिवर्तित कर देते हैं। उसी प्रकार आधुनिक गायक शब्दों को संस्कृत युक्त हिन्दी में परिवर्तित कर देते हैं और पढ़ें – कबीर बीजक- कबीर एक व्यक्तिमत्व ना होते हुए बहती नदी की धारा थे। उन्होंने एक विचारधारा आरंभ की थी। तत्पश्चात अनेक विचारधाराएं आकर उनसे जुड़ने लगीं। आज हम निश्चित रूप से यह नहीं बता सकते कि उन्होंने क्या रचा तथा कालांतर में उनकी रचना में क्या जुड़ा। यद्यपि उनकी रचनाएं गहन हैं तथापि वे पारंपरिक ना होते हुए लोकशैली में है।

बूंद जो पड़ी समुद्र में, सो जाने सब कोई, समुद्र समाना बूंद में, बूझै बिरला कोई।।

कबीर- एक फकीर

मेरे लिए कबीर सर्वप्रथम एक फकीर थे। बोलचाल की भाषा में फकीर का अर्थ भिखारी हो जाता है। किन्तु फकीर का सही अर्थ है, वह व्यक्ति जो सभी सांसारिक मोह व बंधनों से मुक्त है। फकीर वह है जो सभी सुख-संपत्ति प्राप्त करने में सक्षम है किन्तु स्वेच्छा से न्यूनतम सुविधाओं में जीवन यापन करता है। वह किसी भी प्रकार के सामाजिक दबाव से प्रभावित नहीं होता तथा इसी कारण वह विचारों से स्वच्छंद होता है।

चाह गई चिंता मिटी, मानुवा बे-परवाह,
जिनको कुछ ना चाहिए, वो शाहन के शाह।।
मन लाग्यो मेरो यार फकीरी में

कबीर निर्गुण भक्ति में विश्वास करते थे। उनकी यही विशेषता उन्हें अन्य समकालीन कवियों से भिन्न बनाती है। अन्य समकालीन कवि सगुण भक्ति में विश्वास रखते थे। सगुण भक्ति का अर्थ है भगवान को किसी ना किसी रूप में देखना। मीरा बाई तथा सूरदास भगवान को कृष्ण के रूप में कल्पना करते थे वहीं तुलसीदास के लिए भगवान का अर्थ श्री रामचन्द्र था। संभवतः कबीर इकलौते कवि थे जिनके लिए भगवान का कोई रूप नहीं था। उनकी पुकार उस भगवान के लिए थी जिनका कोई रूप नहीं है, अपितु जो प्रत्येक मनुष्य में सर्वविद्यमान है।

कबीर सदैव लोगों से स्वयं के भीतर झाँकने के लिए कहते थे। वे कहते थे कि ईश्वर को कहीं बाहर ना ढूँढे, अपितु वे नित्य लोगों का उनके भीतर विद्यमान ईश्वरीय तत्व से परिचय कराते थे। यह कुछ अन्य नहीं, अपितु अद्वैत दर्शन ही है जिसके अनुसार ब्रह्म आपके भीतर है तथा आप स्वयं ही ब्रह्म हैं। वे सदा लोगों को आगाह कराते थे कि परम सत्य की खोज में बाहर ना भटकें। उसे अपने भीतर ही खोजें।

और पढ़ें – हज़ारी प्रसाद द्विवेदी रचित कबीर

अपनी सम्पूर्ण रचनाओं में कबीर लोगों को सीधे संबोधित करते थे। वे अन्य कवियों के समान नहीं थे जो लोगों से भगवान के माध्यम से संबोधित होते थे। कबीर मनुष्यों से प्रत्यक्ष एवं अपरोक्ष रूप से संवाद करते थे। अपनी कविताओं में वे स्वयं को साधो अर्थात सद्पुरुष कहते थे। वहीं मानवी संबंधों के विषय में कहते समय वे उन्हे बंदे अर्थात मनुष्य, एक मित्र तथा भाई, इन शब्दों से संबोधित करते थे। उन्होंने लोगों को ना तो अपने से निम्न समझा ना ही उच्च। उन्होंने केवल अपने गुरु को ही उच्च स्थान दिया था। इसका अर्थ है कि वे सब को समान मानते थे। उनकी रचनाओं में सदैव समानता का संदेश निहित होता था। वे गौण वस्तुओं पर भी पूर्ण ध्यान केंद्रित करते थे। उनसे भी समानता का संबंध स्थापित करते थे। उदाहरणतः अपनी कविता, 'माटी कहे कुम्हार से' के द्वारा वे कहते हैं कि जीवन एक चक्र है। आज आप माटी को रौंदेंगे, कल माटी आपको रौंदेगी तथा जीवन चक्र यूं ही चलता रहेगा। कदाचित आज आप स्वयं को शक्तिशाली समझ रहे होंगे। सब समय का फेर है। कल हमारी स्थिति पूर्णतः विपरीत हो सकती है। वस्तुस्थिति परिवर्तित होने में समय नहीं लगता। ब्रह्मांड के सर्व जीवों एवं वस्तुओं में समतुल्यता कबीर की रचनाओं के अभिन्न अंग होते हैं। वे संबंधों के चक्रीय प्रवृत्ति पर विश्वास करते थे। जो कल था, वह आज ना हो तथा जो आज है वो कदाचित कल ना रहे। मानव सदैव इस चक्र से अनभिज्ञ रहता है तथा जीवन चक्र में उलझ कर रह जाता है।

माटी कहे कुम्हार से, तू क्या रौंदे मोहे;
इक दिन ऐसा आएगा, मैं रौंदूँगी तोहे।।
कबीर गर्व ना कीजिए, ऊंचा देख निवास;
काल परों भुईं लेटना, ऊपर जमेगी घास।।
तिनका कबहुँ ना निन्दिये, जो पाँवन तर होय;
कबहुँ उड़ी आँखिन पड़े, तो पीर घनेरी होय। ।

देव हमारे भीतर ही विराजमान हैं

उनकी रचनाओं द्वारा जो परम ज्ञान हमें प्राप्त होता है वह यह है कि देव हम सब के भीतर ही विद्यमान हैं तथा प्रत्येक समस्या का समाधान भी हमारे भीतर ही उपस्थित रहता है। वे सतत हमें हमारे भीतर झाँकने के लिए प्रेरित करते रहते हैं। भगवान तक पहुँचने के लिए आपके द्वारा किये गए सर्व प्रयत्नों का वे खंडन करते हैं। वे कहते हैं कि यदि आपको परमात्मा में विश्वास है तो वह आपके भीतर ही विद्यमान है।

जैसे तिल में तेल है, ज्यों चकमक में आग;
तेरा साईं तुझ में है, तू जाग सके तो जाग।
बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय;
जो मन खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय।
कस्तुरी कुंडल बसै, मृग ढूढ़ै वन माहि;
ऐसे घट घट राम हैं, दुनिया देखे नाहि।
मोको कहाँ ढूंढें रे बन्दे, मैं तो तेरे पास में।
पानी में मीन प्यासी…।

वे सदा कहते थे कि जिस प्रकार गंगा स्वयं को निर्मल करती है, उसी प्रकार हम मानवों को भी स्वयं को स्वच्छ करना चाहिए।

कबीरा मन निर्मल भया, जैसे गंगा नीर;
पाछे पाछे हर फिरे, कहत कबीर कबीर।

कबीर की रचनाएं उनके स्वयं के अनुभवों पर आधारित थीं। यद्यपि वे वेद एवं पुराण, इनका प्रयोग करते थे, तथापि वे अपने अनुभवों पर आधारित दृष्टांत ही देते थे। वे अपने समय के दैनंदिनी जीवन से ही दृष्टांत प्रस्तुत करते थे। उन्होंने सदैव एक सांसारिक पुरुष के रूप में जीवन व्यतीत किया, कर्म किया तथा परिवार के लिए जीविका उत्पन्न की। इन सब के साथ साथ वे एक साधक भी थे। उन्होंने कभी दूसरों द्वारा दी गई भिक्षा पर जीवन यापन नहीं किया। अतः उन्हे अपनी जीविका स्वयं अर्जित करने के आनंद एवं कष्टों का पूर्ण आभास था। यही उन्हे अपने मन के विचार स्वच्छंदता से व्यक्त करने की स्वतंत्रता भी प्रदान करती थी। वे सदा समाज में रहे ताकि वे उस समाज को भीतर से देख सकें तथा समझ सकें। साथ ही वे समाज से विरक्त भी थे ताकि वे एक प्रेक्षक बन सकें।

मैं कहता हूँ आखिन देखी,
तू कहता कागद की लेखी।
कबीरा खड़ा बजार में, मांगे सबकी खैर;
ना काहू से दोस्ती, ना काहू से बैर।
साई इतना दीजिए, जा में कुटुंब समाय;
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु ना भूखा जाय।
चलती चाकी देख कर, दिया कबीरा रोय;

दो पाटन के बीच में, साबुत बचा ना कोय।
कबीरा तेरी झोंपड़ी, गलकटियन के पास;
जो करेगा सो भरेगा, तू क्यों भया उदास।
कबीरा खड़ा बजार में, लिए लकुटिया हाथ;
जे घर फूँकिया आपनों, चले हमारे साथ।

गुरु पर आधारित कबीर की रचनाएं

अपनी अनेक साखियों एवं शब्दों द्वारा कबीर हमसे कहते हैं कि अपने स्वयं के अनुभवों के आधार पर अपनी राय निर्मित करें, दूसरों की कथनी को सजगता से जाँचें तथा सुने हुए तथ्यों पर आँख बंद कर विश्वास ना करें, भले ही गुरु ने कहा हो। यद्यपि वे कहते हैं कि गुरु ज्ञान प्राप्ति का एक आवश्यक साधन हैं।

गुरु गोविंद दोनों खड़े, काके लागूँ पाय;
बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दियो दिखाए।
सतगुरु मिला तो सब मिले, ना तो मिला न कोय;
मात पिता सूत बान्धवा, यह तो घर घर होय।
कबीरा ते नर अन्ध है, गुरु को कहते और;
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रुठै नहीं ठौर।
भेस देख ना पूजिये, पूछ लीजिए ज्ञान;
बिना कसौटी होत नाही, कंचन की पहचान।
जात ना पूछो साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान;
मोल करो तलवार का, पड़ी रहन दो म्यान।

स्वयं की सहज खोज

वे हमें सहजता से जीने की प्रेरणा देते हैं। चूंकि वे इस तथ्य पर विश्वास करते हैं कि सब हमारे भीतर ही है, प्रत्येक बल व प्रत्येक संभव ऊर्जा स्त्रोत को बाहर खोजने का कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं है। उनकी रचनाओं में सहजता, यह विषय बारंबार प्रकट होता है। इससे यह विदित होता है कि उनके काल में भी लोग इस प्रकार का अनावश्यक कष्ट उठाते थे। यह सिद्धांत आज भी उतना ही प्रासंगिक है। हम कष्ट उठाने में सदा मग्न रहते हैं किन्तु यह नहीं समझते कि वह कष्ट हम क्यों उठा रहे हैं। एक ही स्थान पर खड़े होने के लिए भी दौड़ते रहते हैं। हमें अपनी प्रवृत्ति में सहजता की आवश्यकता है। यह हमारे मन को स्वच्छ तथा जीवन को आसान बनाती है।

पोथी पढ़ी पढ़ी जग मुवा, पंडित भया ना कोय;
ढाई आखर प्रेम के, पढ़े सो पंडित होय।
माला कहे काठ की, तू क्यों फेरे मोहे;
मन का मनका फेर दे, तुरत मिला दूँ तोहे।

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं तो मैं नाहिं;
प्रेम गली अति साँकरी, तामें दो न समाहिं।

संयोजित धर्म को चुनौती

कबीर ने सदैव किसी भी प्रकार के संयोजित धर्म का त्याग किया था। वे इतने साहसी थे कि उन्होंने इस्लाम शासित क्षेत्रों में इस्लाम के विरुद्ध तथा हिंदुओं के अपने गढ़ वाराणसी में हिन्दू कुरीतियों के विरुद्ध अपने विचार व्यक्त किये तथा उनसे प्रश्न किये। कभी वे एक स्नेहमय पिता के समान आसान दृष्टांत द्वारा लोगों को समझाते थे तो कभी अपने प्रश्नों की मार द्वारा अंध-भक्तों को सही मार्ग पर लाने का प्रयत्न करते थे। उन्होंने सदैव पंडितों, मौलवियों तथा स्वघोषित ज्ञानियों की आलोचना की थी। उनकी रचनाओं में उनके स्वर सदा अक्खड़ होते थे मानो वे प्रेक्षकों को चुनौती दे रहे हों कि वे आयें एवं उनके विचारों को अनुचित सिद्ध करें।

काशी काबा एक हैं, एक हैं राम रहीम;
मैदा इक पकवान बहुत बैठ कबीरा जीम।
साधू भूखा भाव का, धन का भूखा नाहिं;
धन का जो भूखा फिरै, सो तो साधू नाहिं।
पनि पियावे क्या फिरो, घर घर में है व्यारी;
तृष्णावंत तो होयेगा, आएगा झक मारी।
पत्थर पूजे हरी मिले, तो मैं पूजूं पहाड़;
इससे तो चाकी भली, पीस खाये संसार।
कंकर पत्थर जोड़ि के, मस्जिद लयी बनाय;
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय।

कबीर बारंबार मानवी देह को घट अर्थात घड़ा कहकर संबोधित करते थे। इसकी हम अनेक स्तरों पर विवेचना कर सकते हैं। भौतिक रूप से यह माटी से निर्मित है तथा अंततः माटी में ही जाकर विलीन हो जाती है। लाक्षणिक रूप से यह एक रिक्त घट है तथा यह मनुष्य पर निर्भर है कि वह इस घट में क्या भरता है। मनुष्य क्या है यह इस तथ्य पर आधारित है कि हम इस घट रूपी देह में किसे समाते हैं। वे कहते हैं कि मानवी देह में ही सब कुछ समाया हुआ है, अच्छा, बुरा, कुरूप, यहाँ तक कि ईश्वर भी।

जोगी गोरख गोरख करें,
हिन्दू नाम उचारें;
मुसलमान कहें एक खुदाई,
कबीर को स्वामी घट घट बसई।
कबीर सोई पीर है, जो जाने पर पीड़;
जो पर पीड़ ना जाने, सो काफिर बेपीर।

चन्दा झलके यही घट माही..

कबीर एवं माया

कबीर सांसारिक माया को सभी बुराइयों की जड़ मानते हैं। उनके अनुसार माया वह डाकिनी है जो ऐसा मायाजाल बुनती है जिसमें मानव तो क्या, भगवान भी खो सकते हैं। वे कहते हैं कि यह संसार माया द्वारा निर्मित एक मायाजाल है तथा सत्य का अनुभव पाने के लिए हमें इसी मायाजाल की शिकंजे से मुक्त होना पड़ेगा। माया के साथ साथ वे यह भी कहते हैं, हमें यह भली-भांति समझना होगा कि हम में से प्रत्येक मनुष्य पूर्णतः अकेला है।

अवधू, माया तजी ना जाये..
उड़ जाएगा हंस अकेला..

मृत्यु और कबीर

अंत में, मृत्यु भी उनकी रचनाओं का एक अभिन्न अंग है। वे मृत्यु को अंत नहीं, अपितु मानव जीवन का एकमात्र सत्य मानते हैं। वस्तुतः, वाराणसी तो मृत्यु की नगरी मानी जाती है जहां मृत्यु का उत्सव मनाया जाता है। यही भाव कबीर की रचनाओं में भी प्रकट होता है। वे बारंबार मानवजीवन की क्षण-भंगुरता के विषय में कहते हैं जैसे उलटी मटकी पर जल। अतः मानव को अपने जीवन से मोह नहीं करना चाहिए। मृत्यु के परिप्रेक्ष्य में वे मानव प्रकृति के विषय में चर्चा करते हैं कि मनुष्य अनेक बार ऐसे निरर्थक कार्य करता है मानो वह अनंत काल तक जीवित रहने वाला हो। वे चाहते हैं कि हम यह स्मरण रखें, अंततः वह मृत्यु ही है जिसका हमें आलिंगन करना है, हमारी इच्छा हो या ना हो। मृत्यु को ध्यान में रखकर ही हमें जीवन यापन करना चाहिए।

माली आवत देख कर, कलियाँ कहे पुकार;
फुले फुले चुन लिए, काल हमारी बार।
साधो ये मुर्दों का गाँव..।

आईए मेरे साथ, कबीर को ढूंढें – यह विचार एक ओर जितना आसान है, दूसरी ओर यह उतना ही गहन भी है।

3.3 संत काव्य परंपरा

निर्गुण काव्यधारा की एक शाखा को संत काव्य धारा कहा जाता है । इस काव्य धारा को ज्ञानाश्रयी काव्याधरा भी कहा जाता है । अधिकांश विद्धन मानते हैं कि वह व्यक्ति जिसने 'सत' रूपी परमतत्व को प्राप्त कर लिया हो , वही संत है । संत काव्य- परंपरा के प्रमुख कवि हैं – नामदेव ,कबीरदास, रैदास, नानक, दादू दयाल, रज्जब दास, मलूक दास, सुन्दर दास, आदि – का श्रीगणेश महाराष्ट्र के महान संत श्री नामदेव जी (Namadev) ने किया । हिंदी साहित्य के भक्ति काल को अगर कालक्रम की दृष्टि से देखा जाए तो हिंदी सन्त काव्य का प्रारम्भ निर्गुण काव्य धारा से होता है | आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने नामदेव और कबीर द्वारा प्रवर्तित भक्ति धारा को 'निर्गुण ज्ञानाश्रयी धारा' की संज्ञा प्रदान की है | डा. रामकुमार वर्मा ने इसे 'सन्त काव्य परम्परा' जैसे विशेषण से अभिहित किया है | आचार्य हजारी प्रसाद व्दिवेदी ने इसे 'निर्गुण भक्ति साहित्य' का नाम दिया है | निर्गुण काव्य धारा में सन्त काव्य का विशेष महत्व है | संत काव्य धारा को ज्ञानश्रयी शाखा भी कहा जाता है |

'सन्त' शब्द की ब्युत्पत्ति –

सदाचार के लक्षणों से युक्त व्यक्ति को सन्त कहा जाता है | इस प्रकार का व्यक्ति आत्मोन्नति एवं लोक मंगल मे लगा रहता है | डा. पीताम्बर दत्त बडथ्वाल ने सन्त का सम्बंध शान्त से माना है और इसका अर्थ उन्होने किया है – निवृत्ति मार्गी या वैरागी |

डॉ. शिवकुमार शर्मा के अनुसार –

सन्त शब्द सत से बना है जिसका अर्थ है – ईश्वरोन्मुखी कोई भी सजग पुरूष |

कबीरदास जी संत काव्य-परंपरा के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। उनका जन्म 1398 ई. में काशी में हुआ तथा मृत्यु 1518 ईस्वी में मगहर में हुई। ऐसा माना जाता है कि उनका जन्म एक विधवा ब्राह्मण से हुआ था। लोक-लाज के भाय से उसने शिशु को बनारस के लहरतारा तालाब की सीढियों पर छोड़ दिया। नीरू और नीमा नामक जुलाह दंपत्ति ने उनको पाल पोस कर बड़ा किया। रमानंद जी उनके कुछ पद 'गुरु ग्रंथ साहिब' में संकलित हैं। उनकी केवल एक प्रमाणित रचना है – 'बीजक' जिसके तीन भाग हैं – साखी , सबद , रमैनी।

रैदास जी भी रमानन्द के शिष्य थे। इनके पद भी 'गुरु ग्रंथ साहब' में संकलित हैं। गुरुनानक देव जी संत काव्य-परंपरा के एक अन्य प्रमुख कवि हैं। उनकी रचनाएँ गुरु ग्रंथ साहब में 'महला' प्रकरण में संकलित हैं। जपुजी , आसा दी वार , सोहेला इयानकी प्रमुख रचनाएँ हैं। दादू दयाल की प्रमुख रचना 'हरड़े वाणी'है। रज्जब दास जी भी संत काव्य धारा / संत काव्य-परंपरा के कवि हैं। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं – राम अवतार लीला , ब्रज लीला , ध्रुव चरित। सुन्दर दास की प्रमुख रचना 'सुन्दर विलास' है।

3.4 संत काव्य परंपरा एवं प्रवृत्तियाँ/विशेषताएँ

भक्ति कालीन साहित्य में निर्गुण संत कवियों का योगदान अप्रतिम है। इन्होंने निर्गुण ईश्वर की भक्ति पर बल दिया। इन कवियों ने सामान्य जन को सर्वाधिक प्रभावित किया। संत काव्य धारा की प्रमुख विशेषताएँ निम्न लिखित हैं :

1. **निर्गुण निराकार ईश्वर की भक्ति पर बल :**

   सभी संत कवियों ने निर्गुण-निराकार ईश्वर की भक्ति पर बल दिया है। यह कवि प्रायः अवतरवाद व बहुदेववाद का विरोध करते हैं। वे निर्गुण ब्रह्मा की उपासना पर बल देते हैं। वह दशरथ पुत्र राम को ईश्वर स्वीकार नहीं करते। उनके राम निर्गुण ब्रह्मा है। कबीरदास जी लिखते हैं – "दशरथ सुत तिहुं लोक बखाना राम नाम का मरम है आना"। स्पष्ट है कि उनका ईश्वर पौराणिक देवी देवताओं से भिन्न है। उसका न रंग है , न रूप है। वह प्रत्येक प्राणी में विद्यमान है।

2. **गुरु की महिमा पर बल :**

   सभी संत कवि गुरु के महत्व को स्वीकार कराते हैं। संत कवि गुरु को ईश्वर से भी ऊंचा स्थान देते हैं। उनका मानना कि गुरु ही ईश्वर-प्राप्ति का रास्ता दिखाता है। गुरु ही हमें सच्चा ज्ञान देता है और हमारे भ्रम को दूर करता है। कबीरदास जी ने तो गुरु को ब्रह्मा से भू ऊंचा स्थान दिया है ; वह कहते हैं :- "गुरु गोविंद दोऊ खड़े काके लागू पाय।

   बलिहारी गुरु आपने जिन गोविंद दियो मिलाय" ॥

इसी प्रकार अन्य संत कवियों ने भी गुरु कि महिमा का वर्णन किया है। उनके अनुसार गुरु ही सच्चा ज्ञान देता है , दुविधा दूर करता है व मन के विकारों को दूर करता है।

3. रूढ़ियों व आडंबरों का विरोध :

संत कवियों ने धर्म व समाज के क्षेत्र में फैली रूढ़ियों , आडंबरों व पाखंडों का विरोध किया है। संत कवियों ने तत्कालीन समाज में व्याप्त कुरीतियों, रूढ़ियों तथा धार्मिक आडंबरों का कड़ा विरोध किया। उन्होंने हिंदू-मुस्लिम दोनों के धर्म में निहित बाह्य आडंबरों की निंदा की। वृ रोजा, मूर्ति-पूजा, नमाज, तीर्थयात्रा, बलि -प्रथा आदि की कड़ी आलोचना की। कबीर जहाँ हिंदुओं की मूर्ति पूजा का विरोध करते हुए कहते हैं –

"पाहन पूजे हरि मिले तो मैं पूजूँ पहार।"
तातें तो चाकी भली पीस खाए संसार॥

इसी प्रकार मुसलमानों की धर्म रूढ़ि का वर्णन कराते हुए कबीरदास जी लिखते हैं -

"कांकर पाथर जोरि के मस्जिद लई बनाय
ता चढ़ी मुल्ला बांग दे क्या बहरा हुआ खुदाय।।''
"दिनभर रोजा रखत है राति हनत है गाय।
यह तो खून वह बंदगी कैसे कैसी खुसी खुदाय ।।"

ईश्वर मंदिर-मस्जिद में नहीं बल्कि जग के कण-कण में व्याप्त है। वह घट-घट के वासी हैं परंतु नादान और अज्ञानी मनुष्य इस बात को नहीं समझता। मानव की इस स्थिति का चित्रण निम्न दोहे में हुआ है।

"कस्तूरी कुंडलि बसे, मृग ढूंढै बन माहि।
ऐसे घट-घट राम हैं, दुनिया देखे नाहि ।।"

4. जाति-पांति तथा वर्ण-व्यवस्था का विरोध : संत काव्य के सभी संतों का एक नारा था, सूत्र था जिसके आधार पर उन्होंने जाति-पाति का विरोध किया। वह है -

""जाति पाति पूछे न कोई ,हरि को भजे सो हरि का होई।""

मानव धर्म की प्रतिष्ठा कर इन संत कवियों ने ईश्वर भक्ति का अधिकारी सभी को बताया। उनकी दृष्टि में सभी मनुष्य समान हैं। चाहे वह ब्राह्मण हो, वैश्य हो, क्षत्रिय हो या फिर शुद्र। कबीर, रैदास आदि कवि निम्न जाति के थे परंतु इसमें इन्हें कोई आपत्ति ना थी।

कबीर कहते हैं – "जाति न पूछो साधु की पूछ लीजिए ज्ञान
मोल करो तलवार का पड़ी रहन दो म्यान ।।"

5. रहस्यवाद

ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियों ने रहस्यवाद को सुंदर एवं सरल भाषा में व्यक्त किया है। आत्मा-परमात्मा का कथन करके जब आत्मा का परमात्मा के प्रति अनुराग व्यक्त किया जाता है तो वह रहस्यवाद कहलाता है। इन संत कवियों का रहस्यवाद एक और शंकराचार्य के अद्वैतवाद से तो दूसरी और योग साधना से प्रभावित है। कबीर कहते हैं –

"लाली तेरे लाल की जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गई तो मैं भी हो गई लाल।।"

तो वहीं अन्य स्थल पर वे कहते हैं आत्मा परमात्मा में कोई भेद नहीं है

" नैनन अंतर आव तू त्योंहि लेऊं झपेऊं।
ना मैं देखूंऔर कूं ना तुझे देखण देऊं॥ "

इस प्रकार संत कवियों ने आत्मा को विरहिणी नायिका के चित्रित किया है जो परमात्मा से मिलने केलिए तड़प रही है। इनके रहस्यवाद में शंकराचार्य के अद्वैतवाद का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

6. माया के प्रति सचेतना :

सभी संत कवियों ने माया से सावधान कराया है। इनका मानना कि माया ईश्वर भक्ति के मार्ग से सबसे बड़ी बधा है। संत कवियों के अनुसार काम , क्रोध , मद , लोभ , मोह पंच-विकार माया के रूप हैं। मनुष्य इनके जाल में फंसकर पथभ्रष्ट हो जाता है। संत कवियों का यह भी मानना है की ज्ञान की प्राप्ति करके मनुष्य इस माया के चंगुल से मुक्ता हो सकता है ; यथा-

"संत भाई आई ज्ञान की आंधी
भ्रम की टाटी सबै उदनी माया रही न बांधी"।

7. नारी के प्रति दुष्टिकोण :

संत कवियों ने नारी को माया के प्रति दो प्रकार की धारणा या दृष्टिकोण प्रकट किया है। पहला उन्होंने नारी को माया का प्रतीक माना है जिसमें उसे महा ठगनी और पापिनी कहते हुए उसे त्याज्य माना है क्योंकि माया के कारण है आत्मा-परमात्मा से दूर हो जाती है और माया ऐसी मोहिनी है, कनक-कामिनी है, जो सब को अपने बस में कर लेती है। ब्रह्मा-विष्णु-महेश, धनी-निर्धन, भक्त, राजा-रंक सभी माया के बस में होते हैं और अपने लक्ष्य से भटक जाते हैं। कबीर कहते हैं –

"माया महाठगनी हम जानी,
त्रिगुण फांस लिए कर डौले, बोले मधुर बानी।।
केशव के कमला बैठी, शिव के भवन भवानी।।"

वहीं दूसरी और नारी के पतिव्रता, ममतामयी, आदरणीय सत सती रूप की, माँ के रूप में अराधना भी की गई है। हरि को जननी की संज्ञा देते हुए कबीर कहते हैं – "हरि जननी मैं बालक तेरा,
काहे न औगुन बकसहु मेरा।
सुत अपराध करें दिन केते,
जननी के चित रहे न तेते।"

पतिव्रता की महिमा प्रतिपादित करते हुए कबीर कहते हैं –

"पतिव्रता मैली भली कालि कुचित कुरूप।
पतिव्रता के रूप सौ वारि कोटि सरूप।।"

3.5 संत काव्य परंपरा में कबीरदास

शुचिता, आत्मसंयम तथा इन्द्रिय निग्रह आदि से सम्बन्धित उक्रियाँ | **संतकाव्य** परम्परा में सर्वोपरि स्थान **कबीर** का है। केवल गिर यह खून वह बंदगी कैसे खुशी सोदाय । उपर्युक्त पं किमो मे आत्मा और परमात्मा के अभिन्न एवं एकात्म सम्बन्धका दिन करा गया है। तात्पर्य में विमान जेल मेरे तु से की एकात्म यात्री होती है। कबीरदास या **कबीर** 15वीं सदी के भारतीय रहस्यवादी कवि और संत थे। वे हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन युग में परमेश्वर की भक्ति के लिए एक महान प्रवर्तक के रूप में उभरे। इनकी रचनाओं ने हिन्दी प्रदेश के भक्ति आंदोलन को गहरे स्तर तक प्रभावित किया। उनका लेखन सिक्खों के आदि ग्रंथ में भी देखने को मिलता है।

कबीरदास या **कबीर** 15वीं सदी के भारतीय रहस्यवादी कवि और संत थे। वे हिन्दी हित्य के भक्तिकाल के निर्गुण शाखा के ज्ञानमर्गी उपशाखा के महानतम कवि हैं। इनकी रचनाओं ने हिन्दी प्रदेश के भक्ति आंदोलन को गहरे स्तर तक प्रभावित किया। उनकी रचनाएँ सिक्खों के आदि ग्रंथ में सम्मिलित की गयी हैं। वे हिन्दू धर्म व इस्लाम को मानते हुए धर्म एक सर्वोच्च ईश्वर में विश्वास रखते थे। उन्होंने सामाज में फैली कुरीतियों, कर्मकांड, अंधविश्वास की निंदा की और सामाजिक बुराइयों की कड़ी आलोचना भी। उनके जीवनकाल के दौरान हिन्दू और मुसलमान दोनों ने उन्हें बहुत सहयोग किया। कबीर पंथ नामक सम्प्रदाय इनकी शिक्षाओं के अनुयायी हैं । हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इन्हें **मस्तमौला** कहा।

संत काव्य धारा के प्रथम कवि और उसके प्रस्तोता

रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है, "निर्गुण मार्ग' के निर्दिष्ट प्रवर्तक **कबीरदास** ही थे।" वहीं गणपति गुप्त और रामकुमार वर्मा 'नामदेव को **संत काव्य धारा** का प्रथम कवि मानते हैं।

जीवन परिचय

कबीर साहब का जन्म कब हुआ, यह ठीक-ठीक ज्ञात नहीं है। मोटे तौर पर उनका जन्म 14वीं-15वीं शताब्दी में काशी (वर्तमान समय का वाराणसी) में हुआ था। एक मान्यता के अनुसार उनका जन्म सन 1398 (संवत 1455), में ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा को ब्रह्ममूहर्त के समय हुआ था।[5] उनकी इस लीला को उनके अनुयायी कबीर साहेब प्रकट दिवस के रूप में मनाते हैं।[5] वे जुलाहे का कम करते थे।

भाषा

कबीर की भाषा सधुक्कड़ी एवं पंचमेल खिचड़ी है। इनकी भाषा में हिंदी भाषा की सभी बोलियों के शब्द सम्मिलित हैं। राजस्थानी, हरयाणवी, पंजाबी, खड़ी बोली, अवधी, ब्रजभाषा के शब्दों की बहुलता है। ऐसा माना जाता है की रमैनी और सबद में ब्रजभाषा की अधिकता है तो साखी में राजस्थानी व पंजाबी मिली खड़ी बोली की।

कृतियाँ :

क्षितिमोहन सेन ने कबीर साहेब जी द्वारा लिखित मुख्य रूप से छह ग्रंथ हैं:

- **कबीर साखी**: इस ग्रंथ में कबीर साहेब जी साखियों के माध्यम से सुरता (आत्मा) को आत्म और परमात्म ज्ञान समझाया करते थे।

- **कबीर बीजक**: कबीर की वाणी का संग्रह उनके शिष्य धर्मदास ने बीजक नाम से सन् 1464 में किया। इस ग्रंथ में मुख्य रूप से पद्य भाग है। बीजक के तीन भाग किए गए हैं —

रचना	अर्थ	प्रयुक्त छंद	भाषा
रमैनी	रामायण	चौपाई और दोहा	ब्रजभाषा और पूर्वी बोली
सबद	शब्द	गेय पद	ब्रजभाषा और पूर्वी बोली
साखी	साक्षी	दोहा	राजस्थानी पंजाबी मिली खड़ी बोली

- **कबीर शब्दावली:** इस ग्रंथ में मुख्य रूप से कबीर साहेब जी ने आत्मा को अपने अनमोल शब्दों के माध्यम से परमात्मा कि जानकारी बताई है।

- **कबीर दोहवाली:** इस ग्रंथ में मुख्य तौर पर कबीर साहेब जी के दोहे सम्मलित हैं।

- **कबीर ग्रंथावली**: इस ग्रंथ में कबीर साहेब जी के पद व दोहे सम्मलित किये गये हैं।

- **कबीर सागर:** यह सूक्ष्म वेद है जिसमें परमात्मा कि विस्तृत जानकारी है।

कबीर पढ़े लिखे नहीं थे, इसलिए उनके दोहों को उनके शिष्यों द्वारा ही लिखा या संग्रीहित किया गया था। उनके दो शिष्यों, भागोदास और धर्मदास ने उनकी साहित्यिक विरासत को संजोया। कबीर के छंदों को सिख धर्म के ग्रंथ "श्री गुरुग्रन्थ साहिब" में भी शामिल किया गया है। श्री गुरु ग्रंथ साहिब में संत कबीर के 226 दोहे शामिल हैं और श्री गुरु ग्रंथ साहिब में शामिल सभी भक्तों और संतों में संत कबीर के ही सबसे अधिक दोहे दर्ज किए गए हैं। क्षितिमोहन सेन ने कबीर के दोहों को काशी सहित देश के अन्य भागों के सन्तों से एकत्र किया था। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इनका अंग्रेजी अनुवाद करके कबीर की वाणी को विश्वपटल पर लाये। हिन्दी में बाबू श्यामसुन्दर दास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी सहित अनेक विद्वानों ने कबीर और उनकी साहित्यिक साधना पर ग्रन्थ लिखे हैं।

3.6 प्रमुख सन्त कवि और उनकी रचनाएँ

ज्ञानाश्रयी शाखा या सन्त काव्य धारा के प्रमुख कवियों में नामदेव,कबीर दास, रैदास, नानक, दादू दयाल, मलूक दास, रज्जब दास, सुंदर दास आदि संत काव्य के प्रमुख कवि माने गए हैं। कबीर संत काव्य परंपरा के प्रतिनिधि कवि माने गए हैं। इन सभी कवियों का संक्षिप्त परिचय एवं उनकी रचनाओ का विवरण इस प्रकार है –

1.संत रामानन्द –

स्वामी रामानंद को मध्यकालीन भक्ति आंदोलन का महान संत माना जाता है। उन्होंने रामभक्ति की धारा को समाज के निचले तबके तक पहुंचाया। वे पहले ऐसे आचार्य हुए जिन्होंने उत्तर भारत में भक्ति का प्रचार किया। उनके बारे में प्रचलित कहावत है कि – ***द्रविड़ भक्ति उपजौ-लायो रामानंद।*** उन्होंने तत्कालीन समाज में व्याप्त कुरीतियों जैसे छुआछूत, ऊंच-नीच और जात-पात का विरोध किया। किन्तु आपने कभी वर्णसंकरता की अनुमति प्रदान नहीं की, केवल आपने सभी जातियों के लिए भक्ति मार्ग का द्वार खोला। उनके जन्म दिन को लेकर कई तरह की भ्रंतियां

प्रचलित है। स्वामी रामानंद का जन्म प्रयाग(इलाहाबाद) में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनकी माता का नाम सुशीला देवी और पिता का नाम पुण्य सदन था। आरंभिक काल में हीं उन्होंने कई तरह के अलौकिक चमत्कार दिखाने शुरू किये। धार्मिक विचारों वाले उनके माता-पिता ने बालक रामानंद को शिक्षा पाने के लिए काशी के स्वामी राधवानंद के पास श्रीमठ भेज दिया। श्रीमठ में रहते हुए उन्होंने वेद, पुराणों और दूसरे धर्मग्रंथों का अध्ययन किया और प्रकांड विद्वान बन गये। पंचगंगा घाट स्थित श्रीमठ में रहते हुए उन्होंने कठोर साधना की। उन्होंने अनंतानंद, भावानंद, पीपा, सेन [नाई], धन्ना, नाभादास, नरहर्यानंद, सुखानंद, कबीर, रैदास, सुरसरी, पदमावती जैसे बारह लोगों को अपना प्रमुख शिष्य बनाया, जिन्हे द्वादश महाभागवत के नाम से जाना जाता है। इन्हें अपने अपने जाति समाज मे, और इनके क्षेत्र में भक्ति का प्रचार करने का दायित्व सौपा, इनमें कबीर दास और रैदास आगे चलकर काफी ख्याति अर्जित की।उनके द्वारा स्थापित रामानंद सम्प्रदाय या रामावत संप्रदाय आज वैष्णव संन्यासी/ साधुओं का सबसे बड़ा धार्मिक जमात है।

2.संत कवि नामदेव –

संत काव्य परंपरा का श्रीगणेश महाराष्ट्र के महान संत श्री नामदेव जी ने किया। संत शिरोमणि श्री नामदेवजी का जन्म "पंढरपुर", मराठवाड़ा, महाराष्ट्र (भारत) में "26 अक्टूबर, 1270, कार्तिक शुक्ल एकादशी संवत् 1327, रविवार को सूर्योदय के समय हुआ था। महाराष्ट्र के सातारा जिले में कृष्णा नदी के किनारे बसा "नरसी बामणी गाँव, जिला परभणी उनका पैतृक गांव है। संत शिरोमणि श्री नामदेव जी का जन्म "शिम्पी" (मराठी), जिसे राजस्थान में "छीपा" भी कहते है, परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम दामाशेठ और माता का नाम गोणाई (गोणा बाई) था। इनका परिवार भगवान विट्ठल का परम भक्त था।नामदेव का विवाह राधाबाई के साथ हुआ था और इनके पुत्र का नाम नारायण था। संत नामदेव ने विसोबा खेचर को गुरु के रूप में स्वीकार किया था। ये संत ज्ञानेश्वर के समकालीन थे और उम्र में उनसे 5 साल बड़े थे। संत नामदेव, संत ज्ञानेश्वर के साथ पूरे महाराष्ट्र का भ्रमण किए, भक्ति-गीत रचे और जनता जनार्दन को समता और प्रभु-भक्ति का पाठ पढ़ाया। संत ज्ञानेश्वर के परलोकगमन के बाद इन्होंने पूरे भारत का भ्रमण किया। इन्होंने मराठी के साथ ही साथ हिन्दी में भी रचनाएँ लिखीं। इन्होंने अठारह वर्षो तक पंजाब में भगवन्नाम का प्रचार किया। अभी भी इनकी कुछ रचनाएँ सिक्खों की धार्मिक पुस्तकों में मिलती हैं। इनके समय में नाथ और महानुभाव पंथों का महाराष्ट्र में प्रचार था। नाथ पंथ "अलख निरंजन" की योगपरक साधना का समर्थक तथा बाह्याडंबरों का विरोधी था और महानुभाव पंथ वैदिक कर्मकांड तथा बहुदेवोपासना का विरोधी होते हुए भी मूर्तिपूजा को सर्वथा निषिद्ध नहीं मानता था। इनके अतिरिक्त महाराष्ट्र में पंढरपुर के "विठोबा" की उपासना भी प्रचलित थी। सामान्य जनता प्रति वर्ष आषाढ़ी और कार्तिकी एकादशी को उनके दर्शनों के लिए पंढरपुर की "वारी" (यात्रा) किया करती थी (यह प्रथा आज भी प्रचलित है) इस प्रकार की वारी (यात्रा) करनेवाले "वारकरी" कहलाते हैं। विट्ठलोपासना का यह "पंथ" "वारकरी" संप्रदाय कहलाता है। नामदेव इसी संप्रदाय के प्रमुख संत माने जाते हैं। 'मुखबानी' नामक पुस्तक में इनकी रचनाएँ संग्रहित हैं। आज भी इनके रचित गीत पूरे महाराष्ट्र में भक्ति और प्रेम के साथ गाए जाते हैं। ये संवत 1407 में समाधि में लीन हो गए। कबीर के पदों में यततत्र नामदेव की भावछाया दृष्टिगोचर होती है। कबीर के पूर्व नामदेव ने उत्तर भारत में निर्गुण भक्ति का प्रचार किया, जो निर्विवाद है।

3.कबीरदास -

कबीरदास संत काव्यधारा के प्रतिनिधि एवं सर्वश्रेष्ठ कवि माने गए हैं। कबीरदास हिंदी साहित्य के क्रांतिकारी एवं समाज सुधारक कवि हैं जिन्होंने समाज को रूढिग्रस्त मान्यताओं एवं परंपराओं से मुक्त करवा एक स्वस्थ समाज बनाने की सफल कोशिश की है। महात्मा कबीर का **जन्म *काशी में 1398 ई. (संवत् 1455)* को हुआ।** जनश्रुति के अनुसार कबीर का जन्म विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से हुआ जिसने लोक लाज के भय से काशी के *लहरतारा नामक सरोवर* में शिशु कबीर को छोड़ दिया। *नीरू और नीमा नामक जुलाहा दंपति* ने कबीर का पालन पोषण किया। उनके जन्म के बारे में निम्नलिखित मत प्रसिद्ध है-

चौदह सौ पचपन साल गए, चंद्र बार एक ठाठ ठए
जेठ सुदी बरसाएत को, पूर्णमासी प्रगट भए।
घर गरजे दामिनी दमके, बूंदे बरसे झर लाग गए,
लहर तालाब में कमल खिले, तहं कबीर भानु प्रगट भए।

कबीर ने अपना पारिवारिक व्यवसाय अर्थात कपड़ा बुनने का काम चुना तथा आजीवन राम नाम लेते हुए साधु संतों की संगति की। कबीर गृहस्थी थे। उनकी *पत्नी का नाम माई लोई* था। उनके एक पुत्र *और पुत्री थे जिनके नाम कमाल और कमाली* थे।*कबीर के गुरु स्वामी रामानंद* थे। कबीर निरक्षर थे, वे स्वयं कहते हैं-

"मसि कागद छुयो नांहि, कलम गहि नहीं हाथ"।

निरक्षर होते हुए भी वे सर्वाधिक ज्ञानी और बहुश्रुत थे। उनके शिष्यों ने ही कबीर वाणी का संकलन किया जिनमें धर्मदास का नाम सर्व प्रसिद्ध है। *धर्मदास ने कबीर की वाणी को **बीजक नामक संग्रह में संकलित किया जिसके तीन भाग हैं- साखी, सबद और रमैणी।*** बचपन से ही कबीर निर्भीक, विद्रोही और क्रांतिकारी तथा समाज सुधारक थे। हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, " वैसे से पैर तक मस्त मौला, स्वभाव से अक्खड़, आदत से फक्कड़, भक्तों के समान निरीह, भेषधारी के आगे प्रचंड, दिल से साफ, दिमाग से दुरुस्त, भीतर से कोमल बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृश्य और कर्म से वंदनीय थे।" हिंदू और मुस्लिम दोनों उन्हें अपना मानते थे। *120 वर्ष की आयु में सन्* 1518 ई. (संवत् 1575*)* में काशी के मगहर नामक स्थान पर कबीर का देहांत हुआ।

4.दादूदयाल

दादूदयाल का जन्म 1544 ई0 मे अहमदाबाद मे हुआ था। तथा इनकी मृत्यु 1603 ई0 मे मानी जाती है। दादू पन्थ के लोग कहते है कि ये किसी ब्राम्हण को साबरमती मे बहते हुए पानी मे मिले थे। एक अन्य जनश्रुति के अनुसार इन्हे मुसलमान (धुनिया) का पुत्र माना जाता है। इनका मूल नाम दाऊद बताया गया है। ये अन्य स्रोत मे इनका पहला नाम महाबली बताया गया है। दयालुता के कारण इन्हे दादूदयाल कहा जाने लगा। इनकी वाणी से पता चलता है की वे कबीर को अपना गुरु मानते थे। दादू की वाणी एक प्रकार से कबीर की वाणी की ही ब्याख्या है। कहा जाता है कि दादू के 52 शिष्य थे। इनके प्रमुख शिष्यो मे रज्जब , सुन्दरदास , जगन्नाथ दास , प्रागदास , जनगोपाल आदि। इनके पंथ को 'परम ब्रम्ह सम्प्रदाय' भी कहा जाता है।

दादूदयाल के दो शिष्य सुन्दरदासऔर जगन्नाथ दास ने 'हरडेवाणी' शीर्षक से इनकी रचनाओ का संकलन किया | 'अंग वधू' इनका प्रसिद्ध काव्य संग्रह है , जिसका संकलन उनके शिष्य रज्जब ने किया।

5.रैदास या रविदास –

रविदास कबीर के समसामयिक कहे जाते हैं। मध्ययुगीन संतों में रैदास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। गुरु रविदास (रैदास) का जन्म काशी में माघ पूर्णिमा दिन रविवार को संवत 1433 को हुआ था। उनके जन्म के बारे में एक दोहा प्रचलित है-

चौदह सौ तैंतीस कि माघ सुदी पन्दरास।
दुखियों के कल्याण हित प्रगटे श्री रविदास।

रैदास ने साधु-सन्तों की संगति से पर्याप्त व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया था। जूते बनाने का काम उनका पैतृक व्यवसाय था और उन्होंने इसे सहर्ष अपनाया। वह अपना काम पूरी लगन तथा परिश्रम से करते थे और समय से काम को पूरा करने पर बहुत ध्यान देते थे। उनकी समयानुपालन की प्रवृत्ति तथा मधुर व्यवहार के कारण उनके सम्पर्क में आने वाले लोग भी बहुत प्रसन्न रहते थे।उनके जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं से समय तथा वचन के पालन सम्बन्धी उनके गुणों का ज्ञान मिलता है। एक बार एक पर्व के अवसर पर पड़ोस के लोग गंगा-स्नान के लिए जा रहे थे। रैदास के शिष्यों में से एक ने उनसे भी चलने का आग्रह किया तो वे बोले, 'गंगा-स्नान के लिए मैं अवश्य चलता किन्तु एक व्यक्ति को आज ही जूते बनाकर देने का मैंने वचन दे रखा है। यदि आज मैं जूते नहीं दे सका तो वचन भंग होगा। गंगा स्नान के लिए जाने पर मन यहाँ लगा रहेगा तो पुण्य कैसे प्राप्त होगा? मन जो काम करने के लिए अन्त:करण से तैयार हो वही काम करना उचित है। मन सही है तो इस कठौती के जल में ही गंगास्नान का पुण्य प्राप्त हो सकता है।' कहा जाता है कि इस प्रकार के व्यवहार के बाद से ही कहावत प्रचलित हो गयी कि – ***'मन चंगा तो कठौती में गंगा।'*** रैदास अनपढ़ कहे जाते हैं। संत-मत के विभिन्न संग्रहों में उनकी रचनाएँ संकलित मिलती हैं। राजस्थान में हस्तलिखित ग्रंथों में रूप में भी उनकी रचनाएँ मिलती हैं। रैदास की रचनाओं का एक संग्रह 'बेलवेडियर प्रेस', प्रयाग से प्रकाशित हो चुका है। इसके अतिरिक्त इनके बहुत से पद 'गुरु ग्रंथ साहिब' में भी संकलित मिलते हैं। संत रैदास ने एक पंथ भी चलाया, जो **रैदासी पंथ** के नाम से प्रसिद्ध है। इस मत के अनुयायी पंजाब, गुजरात, उत्तर प्रदेश आदि में पाये जाते हैंरैदास ने ऊँच-नीच की भावना तथा ईश्वर-भक्ति के नाम पर किये जाने वाले विवाद को सारहीन तथा निरर्थक बताया और सबको परस्पर मिल जुल कर प्रेमपूर्वक रहने का उपदेश दिया। वे स्वयं मधुर तथा भक्तिपूर्ण भजनों की रचना करते थे और उन्हें भाव-विभोर होकर सुनाते थे। उनका विश्वास था कि राम, कृष्ण, करीम, राघव आदि सब एक ही परमेश्वर के विविध नाम हैं। वेद, क़ुरान, पुराण आदि ग्रन्थों में एक ही परमेश्वर का गुणगान किया गया है।

'कृस्न, करीम, राम, हरि, राघव, जब लग एक न पेखा।
वेद कतेब क़ुरान, पुरानन, सहज एक नहिं देखा।।'

उनका विश्वास था कि ईश्वर की भक्ति के लिए सदाचार, परहित – भावना तथा सदव्यवहार का पालन करना अत्यावश्यक है। अभिमान त्याग कर दूसरों के साथ व्यवहार करने और विनम्रता तथा शिष्टता के गुणों का पालन करने पर ही ईश्वर को पाया जा सकता है-

'कह रैदास तेरी भगति दूरि है, भाग बड़े सो पावै।
तजि अभिमान मेटि आपा पर, पिपिलक हवै चुनि खावै।'

रविदास की एक कविता का उदाहरण प्रस्तुत है –

अब कैसे छूटे राम, नाम रट लागी।
प्रभु जी तुम चन्दन हम पानी, जाकी अंग – अंग वास समानी।

प्रभु जी तुम धन बन हम मोरा, जैसे चितवन चन्द्र चकोरा।
प्रभु जी तुम दीपक हम बाती, जाकी जोति बरै दिन राती।
प्रभुजी तुम मोती हम धागा, जैसे सोने मिलत सुहागा।
प्रभु जी तुम स्वामी हम दासा, ऐसी भक्ति करे रैदासा॥

6.गुरु नानक देव

सिख सम्प्रदाय के गुरुनानक देव इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति है | गुरुनानक जी का जन्म 1469 ई॰ मे तलवण्डी मे हुआ था | जो अब ननकाना साहब के नाम से जाना जाता है | नानक के पद गुरु ग्रंथ साहब मे संकलितहै | इनकी मृत्यु 1538 ई॰ मे हुई थी | इनके पिता का नाम कालूचन्द्र और माता का नाम तृप्ता था | इनके दो पुत्र भी हुए है , जिनके नाम है – लक्ष्मीचन्द्र और श्रीचन्द्र।

इनकी रचनाएँ निम्न है –

(i)जपुजी
(ii)असा दीवार
(iii)रहिरास
(iv)सोहिला

7.हरिदास निरंजनी

इन्होने निरंजनी सम्प्रदाय की स्थापना किया था | इस सम्प्रदाय को नाथ पंथ एवं संत काव्य के बीच की कडी माना जा सकता है | इनके मत का सर्वप्रथम प्रचार उडीसा मे हुआ था | इनकी रचनाओ का विवरण निम्नलिखित है –

(i) ब्रह्मस्तुति
(ii)अष्टपदी
(iii)जोगग्रंथ
(iv)हंसप्रबोध ग्रंथ
(v)निरपखमूल
(vi)पूजायोग ग्रंथ
(vii)समाधिजोग ग्रंथ

8. संत कवि मलूकदास –

संत कवि मलूकदासजन्म, सं.1631 को, कड़ा, जिला इलाहाबाद के कक्कड़ खत्री सुंदरदास के घर हुआ था। इनका पिता का सुंदरलाल खत्री था | इनका जन्म अकबर के समय मे तथा इनकी मृत्यु औरंगजेब के राज्य काल मे हुआ |इनका पूर्वनाम 'मल्लु' था और इनके तीन भाइयों के नाम क्रमश: हरिश्चंद्र, शृंगार तथा रामचंद्र थे। इनकी 'परिचई' के लेखक तथा इनके भांजे एवं शिष्य मथुरादास के अनुसार इनके पितामह जहरमल थे और इनके प्रपितामह का नाम वेणीराम था। उनका कहना है कि मल्लू अपने बचपन से ही अत्यंत उदार एवं कोमल हृदय के थे तथा इनमें भक्तों के लक्षण पाए जाने लगे थे।संत मलूकदास की रचनाओं की संख्या 21 तक बतलाई जाती है और उनमें से 'अलखबानी', 'गुरुप्रताप', 'ज्ञानबोध', 'पुरुषविलास', 'भक्त बच्छावली', 'भगत विरुदावली', 'रतनखान',

'रामावतार लीला', 'साखी, 'सुखसागर' तथा 'दसरत्न' विशेष रूप में उल्लेखनीय हैं।उन्होंने जो भी शिक्षा प्राप्त की, वह स्वाध्याय, सत्संग व भ्रमण के द्वारा प्राप्त की। इनका प्रसिद्ध दोहा है-

अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।
दास मलूका कह गए, सबके दाता राम॥'

अपनी आध्यात्मिक वृत्ति एवं हृदय की विशालता के कारण, ये क्रमश: बहुत विख्यात हो चले और इनके उपदेशों का प्रचार उत्तर प्रदेश के प्रयाग, लखनऊ आदि से लेकर पश्चिम की ओर जयपुर, गुजरात, काबुल आदि तक तथा पूरब और उत्तर की ओर पटना एवं नेपाल तक होता गया और प्रसिद्धि है कि इनकी कोई गद्दी श्रीकाकुलम् (आंध्र प्रदेश) तक में पाई जाती है। परंतु इनके अनुयायियों का सर्वप्रमुख केंद्र कड़ा ही समझा जाता है। इनकी मृत्यु सन 1682 ई0 मे हुई | मलूकदास ने अवधी और ब्रज भाषा मे रचना की है |

9. संत सुन्दरदास –

सुंदरदास का जन्म 1596 ई. को जयपुर राज्य की प्राचीन राजधानी द्यौसा (दौसा) नगर से एक खण्डेलवाल वैश्य परिवार में हुआ था। ये प्रसिद्ध संत दादूदयाल के शिष्य थे। निर्गुण संत कवियों में ये सर्वाधिक व्युत्पन्न व्यक्ति थे। दादूदयाल ने ही इनके रूप से प्रभावित होकर इनका नाम 'सुंदर' रखा था। दादू के एक अन्य शिष्य का नाम भी सुंदर था, इसलिए इन्हें छोटे सुंदरदास कहा जाने लगा। कहते हैं कि 6 वर्ष की अवस्था में ही इन्होंने शिष्यत्व ग्रहण कर लिया था। 11 वर्ष की अवस्था में ये अध्ययन के लिये काशी आये और 18 वर्ष तक वेदान्त, साहित्य और व्याकरण का अध्ययन करते रहे। अध्ययन के उपरांत फतेहपुर (शेखावटी) लौटकर इन्होंने 12 वर्ष तक निरन्तर योगाभ्यास किया। यहीं इन्होंने 40 ग्रंथों की रचना की थी, जिनमें प्रेम, भक्ति, योग, वेदांत और नीति का सम्मिश्रण है । निर्गुण-पंथी संतों में 'कवि सच्चे अर्थों में सुंदरदास ही हैं । भाषा, भाव, छंद, अलंकार सभी दृष्टि से इनकी कविता खरी उतरती है । 'सुंदर ग्रंथवाली नाम से दो खंडों में इनकी समस्त रचना प्रकाशित हुई है। इन्हें शांत रस का कवि कहा जाता है ।

निर्गुण संत कवियों मे सुन्दरदास सर्वाधिक प्रतिभाशाली एवं शिक्षक थे । इन्हे लिखे ग्रंथ निम्न है –

(i)ज्ञानसमुंद्र

(ii)सुंदरविलाश

सुंदरदास ने श्रृंगार रस का खुल कर विरोध किया ।

10. धर्मदास –

ये बांधोगढ के निवासी थे । कबीर से इनका गहरा वाद विवाद हुआ था । अन्ततोगत्वा , ये कबीर से प्रभावित होकर निर्गुण ब्रह्म के उपासक बन गये । धर्मदास ने ही 'बीजक' मे कबीर की रचनाएँ संकलित की ।

धर्मदास के प्रमुख रचना 'सुखनिधान' है ।

11. गुरु अमरदास (1479 ई0 – 1574 ई0) –

ये पहले वैष्णव थे, बाद मे गुरु नानक का एक पद सुनकर इनकी ओर आकृष्ट हुए |

15. गुरु अर्जुन देव – (1563 ई0 – 1606 ई0) – इनका सर्वप्रमुख कार्य आदि ग्रंथका सम्पादन व संकलन है | ये एक अच्छे कवि थे |

गुरु ग्रंथ साहिब मे उनके 6000 पद संकलितहै | इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ निम्नलिखित है |

(i)सुखमनी

(ii)बावनअखरी

(iii)बारहमसा

12. गुरु तेज बहादुर (1622 ई0 -1675 ई0) –

साहित्यिक दृष्टि से उल्लेखनीय संत थे |

13.गुरु गोविंद सिंह (1674 ई0 – 1708 ई0) –

इन्होने दुर्गा सप्तशती का अनुवाद 'चण्डीशतक'के नाम से किया। उनका महत्वपूर्ण ग्रंथ है – 'विचित्रनाटक'।

14.रज्जब –

रज्जब पठान से इनके पिता आमेरनरेश राजा मान सिंह की फौज मे सैनिक थे। इनके सम्बंध मे एक कहानी प्रचलित है कि – जब रज्जब शादी के लिये बारातियों के साथ जा रहे थे तो दूल्हे के वेश मे ही ये दादू महराज के पास पहुँच गये , और दादू जी के दर्शन हुए। दादू जी के मुख से ये शब्द निकला –

रज्जब तैं गज्जब किया, सिर बाधाँ मौर।

आया था हरिभजन को, करा नरक को ठौर॥

इसी बात पर रज्जब बैरागी हो गये। उन्होने अपने भाई से कहा –

भैया मैं शादी नही करुंगा , आजीवन ब्रह्मचारी रहुगाँ। इनके निम्न प्रमुख ग्रंथ हैं –

(i)छप्पय

(ii)सब्बंगी

15. धरणीदास –

ये भोजपुरी भाषा मे अपना संदेश देते थे। इनके प्रमुख ग्रंथ हैं –

(i)प्रेमप्रकाश

(ii)सत्यप्रकाश

16.सुधरादास –

ये मकूकदास के शिष्य थे। इन्होने मलूकदास की जीवनी 'मलूक परिचय' नाम से लिखी।

17.बावरी साहिबा (1542 ई0 – 1605 ई0) –

बावरी 'साहिबा' एक ऊचे घराने की महिला और अकबर को समकालीन थी | इन्होने 'बावरी पंथ' की स्थापना की |

18.लालदास (1540 ई0 – 1648 ई0) –

ये अलवर के निवासी थे। इन्होने 'लालपंथ'की स्थापना की।

19.बाबा लाल दास (1590 ई0 – 1655 ई0) –

ये क्षत्रिय थे। इन्होने 'बाबालाली सम्प्रदाय' की स्थापना की | बडौदा मे उनका एक मठ है जिसे 'बाबालाल का शैल' कहते है। इस सम्प्रदाय का प्रधान स्थान गुरुदासपुर का श्रीध्यानपुर गांव है . सम्प्रदाय के अनुयायियों के अनुसार

उनका जन्म स्थान पंजाब प्रांत का कुसूर या कुसपुर नामक गांव था। प्रसिद्ध है कि आठ वर्ष की अवस्था मे ही उन्होने प्रमुख ग्रंथो का अध्ययन कर लिया था।

20.संतपीपा – संत पीपा पंद्रहवीं शताब्दी के पूर्वांद्ध मे विद्यमान थे। ये खींची वंश के राजपूत गृहस्थ थे। इन्होनो स्वामी रामानंद से दीक्षा ली थी।

21.संत सेन –

प्रो0 रानाडे ने इनका समय सन् 1450 ई0 के लगभग निर्धारित किया |ये जाति के नाई थे, और रामानंद के शिष्य थे | आदि ग्रंथ मे इनका केवल एक पद संकलित है।

22.संत धन्ना-

इनका जन्म 1415 ई0 निर्धारित किया गया है। ये जाति के 'जाट' थे।इन्होने आत्मानन्द से दीक्षा ली थी। आदि ग्रंथ मे इनके चार पद संकलित है।

23.संत सदना –

ये चौदहवीं शताब्दी के मध्य मे विद्यमान थे | इनकी पदावली काल प्रवाह मे लुप्त हो चुकी है | 'आदि ग्रंथ' मे संकलित इनके एक पद के आधार पर केवल इतना ही कहा जा सकता है कि साध्यके प्रति इनके मन मे अनन्य समर्पण भावना थी।

24.संत बेनी –

संत बेनी का जीवन विवरण प्राप्त नही है | अनुमान लगाया जा सकता है कि ये पन्द्रहवीं शताब्दी मे विद्यमान रहे होंगे | 'आदि ग्रंथ' मे इनके केवल तीन पद संकलित हैं | मूर्ति पूजा और आडम्बरो की इन्होने कटु आलोचना की है |

25.जम्भनाथ – जोधपुर राज्य मे राजपूत परिवार में 1451 ई0 मे इनका जन्म हुआ था | जम्भनाथ ने 'विश्नोई सम्प्रदाय' की स्थापना की।

3.7. सारांश

कबीर, रैदास, रज्जद, दादू आदि संतो ने भी नामदेव का नाम का बड़ी श्रद्धा से लेते हुए उनकी गणना उच्च कोटि के संतों के रूप में की है। नामदेव की हिन्दी में रचित पदावली बड़ी संख्या में मिलती है। इन सभी तथ्यों से स्पष्ट है हिन्दी सन्त-काव्य परम्परा के प्रवर्तन का श्रेय कबीर की अपेक्षा नामदेव को अधिक है। इस काव्य में ज्ञान की महत्ता को प्रतिपादित किया गया है। यह ज्ञान वेद-पुराणों या कुरान से नहीं, बल्कि चित्त की निर्मलता एवं हृदय की पावनता से प्राप्त किया जाता है। संत काव्य में गुरु की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए उसे ईश्वर से भी बड़ा बताया गया है। इस काव्य में अद्वैतवादी दर्शन को स्थान मिला है।

ऐसा माना जाता है की सन् 1398 ई में कबीर दास जी का जन्म काशी के लहरतारा नामक क्षेत्र में हुआ था। कबीर दास जी हमारे भारतीय इतिहास के एक महान कवि थे, जिन्होंने भक्ति काल में जन्म लिया और ऐसी अद्भुत रचनाएँ की, कि वे अमर हो गए। इन्होंने हिन्दू माता के गर्भ से जन्म लिया और एक मुस्लिम अभिभावकों द्वारा इनका पालन-पोषण किया गया। संत परंपरा को मुख्यत: दो समूहों में बांटा जा सकता है: पंजाब, (राजस्थान और उत्तर प्रदेश)

क्षेत्र के संतों का उत्तरी समूह जिसने अपनी अभिव्यक्ति मुख्यत: बोलचाल वाली हिंदी में की और दक्षिणी समूह जिसकी भाषा पुरातन मराठी है और जिसका प्रतिनिधित्व नामदेव और महाराष्ट्र के अन्य संत करते हैं। कबीर ने सच्चा संत उसे कहा है जो हिंदू-मुसलमान के पक्ष-विपक्ष में न पड़कर इनसे दूर रहता है और दोनों को समान दृष्टि से देखता है, वही सच्चा संत है। उसकी पहचान यह है कि किसी धर्म/संप्रदाय के प्रति कट्टर नहीं होता है और प्रभुभक्ति में लीन रहता है।

संत कवियों में एक भक्त, युग-चिंतक और एक प्रखर व्यक्ति के रूप में कबीर का स्थान अन्यतम है। इनके जन्म और मरण की तिथियों के संबंध में पर्याप्त मतभेद है। "1455 साल गए चंद्रवार एक ठाट ठए" के आधार पर उनका जन्म सवंत 1455 (सन 1398) को माना जाता है। कुछ लोग इसका अर्थ 1455 साल बीतने पर यानि 1456 लगाते है। कबीर दास निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे. वे एक ही ईश्वर को मानते थे. वे अंधविश्वास, धर्म व पूजा के नाम पर होने वाले आडंबरों के विरोधी थे. उन्होंने ब्रह्म के लिए राम, हरि आदि शब्दों का प्रयोग किया है। कबीर समाज सुधारक पहले तथा कवि बाद में है। उन्होने समाज में व्याप्त रूढ़ियों तथा अन्धविश्वासों पर करारा व्यंग्य किया है। उन्होने धर्म का सम्बन्ध सत्य से जोड़कर समाज में व्याप्त रूढ़िवादी परम्परा का खण्डन किया है। कबीर ने मानव जाति को सर्वश्रैष्ठ बताया है तथा कहा है कि इसमें से कोई भी ऊंचा या नीचा नहीं है।

3.8. बोध प्रश्न

1. संत साहित्य की प्रमुख विशेषताएं क्या है ?
2. हिंदी संत काव्य परंपरा के प्रवर्तन का श्रेय कबीर की अपेक्षा किसे है ?
3. संत कवियों के काव्य का लक्ष्य क्या है ?
4. संत काव्य परंपरा में कबीर के योगदान को स्पष्ट कीजिए।

3.9 सहायक ग्रन्थ

1. संतों की सांस्कृतिक संसुती – डॉ. राज रतन पाण्डेय , उपकार प्रकाशन , दिल्ली।

2. कबीर मीमांसा – डॉ . रामचन्द्र तिवारी – लोक भारती प्रकाशन , इलाहाबाद।

3. कालजयी कबीर – संपादक – हर महेंद्र सिंह गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी , अमृतसर।

4. कबीर साहित्य की परख – परशुराम चतुर्वेदी , भारती भण्डार , इलाहाबाद।

5. कबीर – हजारी प्रसाद द्विवेदी राजकमल प्रकाशन , दिल्ली।

6. हिन्दी काव्य में निर्गुण संप्रदाय – पीताम्बर दत्त बडथ्वाल अवध पब्लिशिंग हाउस , लखनऊ।

डॉ . एम . मंजुला

4. कबीर जीवनी – व्यक्तित्व

4.0. उद्देश्य

भारतीय संत काव्य परंपरा में विभिन्न संत कवियों के बारे में उनके द्वारा रची गयी रचनाओं के बारे में जान पायेंगे। प्राचीन संत कवियों में कबीर के स्थान विशिष्ट और विशेष रूप में लेते हैं। कबीर ज्ञानात्मक शाखा के प्रमुख कवि है। हम पिछले अध्यायों में के संत परंपरा, भक्ति मार्ग, भक्ति मार्ग में संत कवियों की विशेषता आदि विषयों के बारे में जान चुके हैं। अब इस इकाई में संत परंपरा के प्रमुख संत कवि कबीर के जीवनी और व्यक्तित्व के बारे में पढ़ेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप कबीर के जन्म, जीवन, व्यक्तित्व, लेखन कला, तत्कालीन पारिवारिक परिस्थितियों के बारे में जान पायेंगे।

रूपरेखा

4.1. प्रस्तावना

4.2. जीवन एवं जीवन वृत्त

4.3. गुरु विचार

4.4. व्यक्तित्व

4.5. स्वभाव व चारित्रिक विशेषताएँ

4.6. कबीर के राम

4.7. समाज सुधारक के रूप में कबीर

4.8. सारांश

4.9. बोध प्रश्न

4.10. सहायक ग्रंथ

4.1. प्रस्तावना

भारतीय इतिहास के मध्य युग में उपासना और भक्ति जीवन का अंग समझी जाती थी। लोक मानस तक इससे प्रभावित थे और उपासना का एक न एक रूप में सभी ने अपने जीवन में अपनाया था। उपासना में निर्गुण और सगुण शम्बन्धी मत- बैषम्य पुराना है पर एक समय ऐसा आया जब कि सगुण रूप कुछ अधिक संकीर्णता से घिर गया और निर्गुण अपने व्याप्त होता गया। सगुण का अवतारी और मूर्तिपूजा का रुप धीरे-धीरे इतना रूढ़ हो गया कि जनता जड़ प्रतिमा की आराधना और पूजा करते-करते स्वयं जड़ हो गयी। प्रतिमा में स्थित भगवान के दर्शन, दर्शन-लोभी, स्वच्छ- हृदय, परिष्कृत जीवन वालों की भी अस्पृश्य वर्ग में होने कारण अलभ्य हो गया। मनुष्य के जन्मतः वर्ग-विभाग के कारण आराधना, दर्शन, पूजा और प्रसाद सभी से वंचित कर दिए गए। किन्तु उन वंचित करने वालों को अजामिल व्याध, गणिका के उद्धार की बातें समझ में न आई और न यह समझ में आया कि भगवान की मूर्ति मन्दिर में

कैद रह सकती है। अतः इसी प्रवृत्ति के कारण निर्गुण और सगुण विषयक मतभेद और भी अधिक गहन हुआ। निर्गुण और सगुण शब्दों के यथार्थ और प्रयुक्त अर्थ क्या है। हिन्दी काव्य में उनका किन अर्थों से प्रयोग हुआ है। निर्गुण का अर्थ हुआ है जिससे गुण निकल गए हो। अतः ईश्वर के इस विशेषण का अर्थ हुआ, गुणों से रहित, गुणों से परे। पर उसका यह अर्थ नहीं कि निर्गुण वह वस्तु है जिसमें कोई गुण ही न हो, बेकाम हो। ईश्वर गुणों से रहित नहीं गुणों से परे है। उसमें गुण है, असंख्य गुण हैं, अलौकिक गुण है। अतः ईश्वर सगुण और निर्गुण भी है। कबीर इस निर्गुण, सगुण ईश्वर का गुण गाया है। कबीर करते हैं कि सेवा करने के लिए सगुण अच्छा है और ज्ञान के लिए निर्गुण पर यथार्थ में हमारा ध्यान, निर्गुण सगुण के भ्रम से परे होकर परमात्मा होने चाहिए। कबीरदास के जीवन - व्यक्तित्व को पढ़ने के बाद ईश्वर के निर्गुण - सगुण होने की बात और कबीर की दृष्टि में ईश्वर के गुण आदि को समझ पायेंगे। इस इकाई में हम कबीर के जीवन- व्यक्तित्व के बारे में विचार विमर्श करेंगे।

4.2. जीवन एवं जीवन वृत्त

कबीरदास ऐसे महत्तम संत है जो केवल भारतीय परंपरा ही नहीं, अपितु विश्व मानवता के मूल उत्स को पकड़ते हैं और सबको वही ले जाना चाहते हैं, जहाँ पहुँचकर वर्ण, वर्ग एवं मत-पंथगत सारे भेदभाव निस्सार हो जाते हैं और जहाँ से प्रेम निर्मल, स्निग्ध और शीतल धारा प्रवाहित होकर सबको सराबोर कर देती है। पूरी मानवता को आत्मसात करने वाली प्रेम की निर्मल धारा में निमज्जित होकर सत्यनिष्ठ कबीरदेव ऐसे चौराहे पर खड़े है, जहाँ सारे रास्ते आकर मिलते हैं। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि कबीर में पूरी मानवता का सार समाया हुआ है। कबीर भारतीय होते हुए भी, विश्व-स्तर के एक महत्तम संत हैं। उनके विचार निस्सीम मानवता एवं सत्य के पोषक है। कबीर की विचारधारा विश्व में व्याप्त होती जा रही है। उनकी विचारधारा सामाजिक धार्मिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। कबीर नाम सत्य का एक ज्वलंत प्रतीक है। हमारी भारतीय - परम्परा के महापुरुषों ने अपने व्यक्तिगत जीवन के विषय में न स्वयं लिखा और न किसी अन्य से लिखवाया। दूसरे लोगों ने भी प्रायः महापुरुषों के जीवन-चरित नहीं लिखे। इसका फल यह हुआ कि भारतीय मनीषियों, ऋषियों एवं संतों के जीवन वृत्त के विषय में हम अनभिज्ञ है। कबीर के बारे में भी ऐसा ही हुआ। परंतु कबीर अपने जीवनकाल में इतने प्रसिद्ध पुरुष हो गये थे कि उनकी महिमा को अन्य संतों ने यत्र-तत्र लिखा।

- **काल**

सद्गुरु कबीर का विक्रम संवत् 1456 की जेष्ठ शुक्ल पूर्णिमा को काशी में जन्म तथा विक्रम संवत् 1575 की माघ शुक्ल एकादशी को मगहर में निधन हुआ है। यह अधिकतम भारतीय विद्वानों-द्वारा मान्य है। इस प्रकार कबीर की पूरी आयु लग-भग एक सौ बीस वर्ष की होती है।

- **जन्म**

कबीरदास के जन्म के संबंध में अनेक किंवदन्तियाँ हैं। कबीर प्रान्तियों की मान्यता है कि कबीर का जन्म काशी में लहरतारा तालाब में उत्पन्न कमल के मनोहर पुष्प के ऊपर बालक के रूप में हुआ। काशीवासी मुसलिम जोलाहा नवयुवक नीरू अपनी पत्नी नीमा के साथ लहरतारा तालाब होकर अपने घर आ रहे थे। नीमा को प्यास लगी। वह सरोवर पर पानी पीने गयी। कहा जाता है उसने एक खिले हुए कमल - फूल पर सुन्दर बालक को किलकारी मारते हुए देखा। अर्थ है कि एक टोकरी में फूल -पत्तों की शय्या पर एक नवजात शिशु पड़ा हुआ मिला। बहुत सोच

विचार के बाद नीरू-नीमा जुलाहा दंपती उस शिशु को उठाकर घर ले आये और उसे पाल-पोस कर बड़ा किया। वही बच्चा कबीर के नाम से प्रख्यात हुआ। इस प्रकार कबीर का जन्मस्थान काशी है। कुछ लोगों का कहना है कि वे जन्म से मुसलमान थे और युवावस्था में स्वामी रामानंद के प्रभाव से उन्हें हिन्दू धर्म की बातें मालूम हुई। कबीर पंथियों में इनके जन्म के विषय में यह पद्य प्रसिद्ध है-

चौदह सौ पंचपन साल गए, चन्द्रवार एक ठाठ ठंडा।

जेठ सुदी बरसायत को पुरनमासी तिथि प्रगट भए॥

धन गरजै दामिनि दमके बूँद बरषें झर लाग गए।

लहर तालाब में कमल खिले तहँ कबीर भानु प्रगट भए॥

- **जन्मस्थान**

कबीर के 20 जन्मस्थान के संबंध में तीन मत हैं- मगहर, काशी और आजमगढ़ में बेलहरा गाँव। मगहर के पक्ष में यह तर्क दिया जाता है कि कबीर ने अपनी रचना में वहाँ का उल्लेख किया है। "पहिले दरसन मगहर पायों पुनि कासी बसे आई" अर्थात काशी में रहने से पहले उन्होंने मगहर देखा। मगहर वाराणसी के निकट ही है और वहाँ कबीर का मकबरा भी हैं। कबीर का अधिकांश जीवन काशी में व्यतीत हुआ। वे काशी के जुलाहे के रूप में ही जाने जाते हैं। कई बार कबीर पंथियों का भी यही विश्वास है कि कबीर का जन्म काशी में हुआ। किंतु किसी प्रमाण के अभाव में निश्चयात्मक अवश्य भंग होती। बहुत से लोग आजमगड़ जिले के बेलहरा गाँव को कबीर साहब का जन्मस्थान मानते हैं। वे कहते हैं कि 'बेलहरा' ही बदलते - बदलते लहरतारा हो गया। फिर भी पता लगाने पर न तो बेलहरा गाँव का ठीक पता चला पाता है और न यही मालूम हो पाता है कि लहरतारा कैसे बन गया और वह आजमगढ़ जिले से काशी के पास कैसे आ गया? वैसे आजमगढ़ जिले में कबीर, उनके पंथ या अनुयायियों का कोई स्मारक नहीं है।

- **माता-पिता**

कबीर के मातापिता के विषय में भी एक राय निश्चित नहीं है। यह अनुपम ज्योति पैदा हुई थी या लहर तालाब के समीप विधवा रूप में आकर यह पतित पावन हुए थे, ठीक उसी तरह से कहा नहीं जा सकता है। कई मत यह है कि नीमा और नीरू ने केवल इनका पालन-पोषण ही किया था। एक किवंदती के अनुसार कबीर को एक विधवा ब्राह्मणी का पुत्र बताया जाता है, जिसको भूल से रामानंद जी ने पुत्रवती होने का आशीर्वाद दे दिया था। एक जगह कबीर ने कहा है-

"जाति जुलाहा नाम कबीरा

बनि बनि फिरो उदासी।"

कबीर के एक पद से प्रतीत होता है कि वे अपनी माता की मृत् से बहुत दुःखी हुए थे। उनके पिता ने उनको बहुत सुख दिया था। वह एक जगह कहते हैं कि उसके पिता बहुत गुसाई थे। उनकी भक्ति एवं संत-संस्कार के कारण उनकी माता को कष्ट हुआ था।

- **नामकरण**

कबीर कसौटी ग्रन्थ में बाबू लहनासिंह ने लिखा है कि नीरू ने मौलवियों को बुलाया तो बच्चे का नाम कबीर रख दिया। कबीर का अर्थ है महान मौलवी लोग एक गरीब जुलाहे के पोषित बच्चे का नाम कबीर नहीं रखना चाहते थे जिसका अर्थ ही महान है। परन्तु जब शिशु ने ही बता दिया कि मैं महान परमात्मा हूँ तब मुल्ला लोगों को हार-थककर कबीर नाम रखना पड़ा। ब्रह्मलीन मुनि ने 'सद्गुरू कबीर चरितम्' में कबीर नाम का भी संस्कृत करण कर डाला है। ब्रह्मलीन मुनि संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे। उन्होंने कबीर न लिखकर कबीर लिखा है। उन्होंने लिखा है जो शरीर में रमने वाला है, जो ईश्वर को प्राप्त कराता है, जिसकी कृपा से आत्मसाक्षात्कार हो तथा जो अपनी अद्भुत कवित्व शक्ति से क्रांतिदर्शी कवियों के हृदय को मुग्ध करे वह कबीर है।

- **बचपन**

कबीरदास का लालन-पालन जुलाहा परिवार में हुआ था, इसलिए उनके मत का महत्वपूर्ण अंश यदि इस जाति के परंपरागत विश्वासों से प्रभावित रहा हो तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। यद्यपि 'जुलाहा' शब्द फ़ारसी भाषा का है, तथापि इस जाति की उत्पत्ति के विषय में संस्कृत पुराणों में कुछ-न-कुछ चर्चा मिलती है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के ब्रह्म खंड के दस वे अध्याय में बताया गया है कि म्लेच्छ से कुविदंकन्या में 'जोला' या जुलांहा जाति की उत्पत्ति हुई है। अर्थात म्लेच्छ पिता और कुविंद माता से जो संतति हुई वही जुलाहा कहलाई। जुलाहा मुसलमान है, पर इनसे अन्य मुसलमानों का मौलिक भेद है। उन दिनों में मुसलमानों के तीन जातियाँ सैयद, पठान और जुलाहे प्रमुख रूप में दिखते थे। उनमें जुलाहे पंजाब, उत्तर-प्रदेश, बिहार और बंगाल में ही पाए जाते हैं। जिन दिनों कबीरदास इस जुलाहा जाति को अलंकृत कर रहे थे उन दिनों, ऐसा जान पड़ता है कि इस जाति ने अभी एकाध पुश्त से ही मुसलमानी धर्म ग्रहण किया था। कबीरदास ने अपने को जुलाहा तो कई बार कहा है, पर मुसलमान एक बार भी नहीं कहा। वे बराबर अपने को 'ना- मुसलमान कहते रहे। कबीरदास ने अपने पद में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि हिंदू और हैं, मुसलमान और हैं और योगी और हैं, क्योंकि योगी या जोगी 'गोरख-गोरख' करता है, हिंदू 'राम-राम' उच्चारता है और मुसलमान 'ख़ुदा-ख़ुदा' कहा करता है।

- **शिक्षा**

कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे - अपनी अवस्था के बालकों से एकदम भिन्न रहते थे। कबीरदास का खेल में कोई रुचि नहीं थी। मदरसे भेजने लायक साधन पिता-माता के पास नहीं थे। जिसे हर दिन भोजन के लिए ही चिंता रहती हो, उस पिता के मन में कबीर को पढ़ाने का विचार भी न उठा होगा। यही कारण है कि वे किताबी विद्या प्राप्त न कर सके।

'मसि कागद छूवो नहीं, कलम गही नहिं हाथ।'

उन्होंने स्वयं ग्रंथ नहीं लिखे, मुंह से बोले और उनके शिष्यों ने उसे लिख लिया।

- **वैवाहिक जीवन**

कबीर का विवाह वनखेड़ी बैरागी की पालिता कन्या 'लोई' के साथ हुआ था। कबीर को कमाल और कमाली नाम की दो संतान भी थी। ग्रंथ साहब के एक श्लोक से विदित होता है कि कबीर का पुत्र कमाल मत का विरोधी था। जब कि कबीर को कबीर पंथ में, बाल- ब्रह्मचारी और विराणी माना जाता है। इस पंथ के अनुसार

कामात्य उसका शिष्य था और कमाली तथा लोई उनकी शिष्या। लोई शब्द का प्रयोग कबीर ने एक जगह कंबल के रूप में भी किया है। वस्तुतः कबीर की पत्नी और संतान दोनों थे। एक जगह लोई को पुकार कर कबीर कहते हैं-

'कहत कबीर सुनहु रे लोई।

हरि बिन राखन हार न कोई'।।

यह हो सकता हो कि पहले लोई पत्नी होगी, बाद में कबीर ने इसे शिष्य बना लिया हो। उन्होंने स्पष्ट कहा है-

नारी तो हम भी करी, पाया नहीं विचार।

जब जानी तब परिहरि, नारी महा विकार।।

4.3. गुरु परिवार- विचार

कबीर जिस परिवार में पाले गये थे वह परिवार मुसलमान परिवार था। वे हिन्दू से मुसलमान बन गए थे। इसलिए कबीर पर इन दोनों संस्कारों का प्रभाव पड़ा होगा। समय-सामयिक नाथ पंतियों के फैले हुए विचारों का भी प्रभाव पड़ा होगा और उपलब्ध साहित्य, संत तथा महापुरुषों से भी सारग्रहण करना सहज मानव का स्वभाव है। उनकी विशाल प्रतिभा एवं आध्यात्मिकता को देखकर उन्हें कोई प्रह्लाद का अवतार, कोई ध्रुव का अवतार, कोई शुकदेव का अवतार तथा कोई ब्रह्म का अवतार ही घोषित कर दिया। उनकी बुद्धि ध्रुवातार के समान तेज थी। इसी प्रकार उनका हृदय भी अत्यंत विशाल था, जिसमें पूरी मानवता को स्थान तो था ही, जीव मात्र के लिए करुणा थी। कबीर तीव्र संस्कारी तथा अत्यंत संवेदनशील पुरुष थे, अतएव सृष्टि, साहित्य, सत्संग आदि से उनका ज्ञान भंडार बचपन से ही उत्तरोत्तर, बढ़ता जा रहा था। समसामयिक संतों एवं गुरुजनों से उनको बहुत बड़ी प्रेरणा मिली होगी। उन्होंने लोगों की अच्छाइयों से ही नहीं गलतियों से भी शिक्षा ली होगी। बात यह आती है कि उन्होंने अपना गुरु किस को चुना था। इसके उत्तर में प्रायः स्वामी रामानंद का नाम लिया जाता है। उस समय काशी में रामानंद नाम के संत बड़े उच्च कोटि के महापुरुष माने जाते थे। कबीर जी ने उनके आश्रम के मुख्य द्वार पर आकर बिनती की कि 'मुझे गुरु जी के दर्शन कराओ।' उस समय जात-पात का बड़ा आग्रह रहता था और फिर काशी। वहाँ पंडितों और पाण्डे लोगों का अधिक प्रभाव था। कबीर जी ने देखा कि हर रोज सुबह तीन- चार बजे स्वामी रामानन्द खडाऊँ पहनकर 'टप -टप' आवाज करते गंगा में स्नान करने जाते हैं। कबीर जी ने गंगा के घाट पर उनके जाने के रास्ते में और सब जगह बाड कर दी। एक ही मार्ग रखा और उस मार्ग में सुबह के अन्धेरे में कबीर जी सो गये। गुरु महाराज आये तो अन्धेरे के कारण कबीर जी पर पैर पड़ गया। उनके मुख से उदगार निकल पड़े: "राम - - राम ... राम।" कबीर जी का तो काम बन गया। गुरु जी के दर्शन भी हो गये, उनकी पादुकाओं का स्पर्श भी मिल गया और गुरु मुख से राम नाम का मंत्र भी मिल गया। बाद में रामानन्द ने कबीर को दीक्षा देकर उन्हें शिष्य रूप में स्वीकार।

"रामानन्द को सिष है, कबीरा ताको सन्त।

भगति दृढ़ावन औतर्यो, गावै दास अनन्त।"

कबीर ने माया-मोह छोड़कर दृढ़ भक्ति की। उन्होंने सन्तों की सेवा खूब की। कबीरदान के किसी विद्यालय शिक्षा विद्यालय में शिक्षा नहीं पाई थी, वरन साधु-संगत और अनुभव जन्य ज्ञान प्राप्त किया था। नियमित रूप से

शिक्षा न मिलने पर भी उन्होंने सत्सँग से ज्ञानार्जन किया था। गुरु रामानन्द की कृपा से सब ज्ञान उनके लिए सुलभ हो गया था।

4.4. व्यक्तित्व

किसी भी व्यक्ति का आंतरिक व बाह्य स्वरूप को व्यक्तित्व कहते हैं। व्यक्ति अपनी व्यक्तित्व के अनुरूप ही अपने कार्यों को करते हैं और अपने स्वभाव को डालते हैं। किसी भी व्यक्ति को उनके स्वभाव के साथ ही व्यक्तित्व का निर्णय कर पाते हैं। कबीरदास का स्वभाव से, उनके पदों के जरिए, समाज के प्रति उनके विचारों के जरिए उनकी व्यक्तित्व को जान पाते हैं।

कबीर का बाह्य शकल को देखे तो वह मंझले कद के व्यक्ति जान पड़ते हैं। उनकी मुखाकृति बहुत लम्बी नहीं है और इनके वस्त्र आदि को देखने से यह मालूम होता है कि वे पश्चिम में रहने वाले है। कुछ अन्य चित्रों में प्रतीत होता है कि इनका शरीर लम्बा था, इनका चेहरा काफी लम्बा था और इनके पहनावे में धोती आदि को देखने से समझ पड़ता है कि ये किसी पूर्वी प्रांत के निवासी रहे होंगे। कबीरदास के कई अन्य चित्र भी मिलते हैं, जैसे कई में तो उन्हें सूफियों की तरह रंग-बिरंग कपड़ों से सिया हुआ पहना हुआ चोगा पहना हुआ दिखाया गया है जिसमें उन्होंने तिलक व तुलसीमाला नहीं पहनी अपितु सिर पर उन्हीं की तरह नुकीली टोपी पहनी हुई दर्शायी गई है। डॉ: सरनाम सिंह शर्मा के अनुसार- उनके रहन-सहन के बारे में प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। हाँ, कुछ चित्र जिनका प्रामाणिक होने में संदेह है, ही मिलते हैं।

कबीर के अन्तः साक्ष्य के रूप में हम कुछ उक्तियाँ देख सकते हैं।

"कारनि कौन संवारे देहा, पहुं तन जारि वरिहुवे हैं बेहा।

चोवा चन्दन चनचल अंगा, सो तन जरत काठ के संगा।

बहुत जतन करि देह मुच्या हे, अगिनि देहै के जबुक साई।

जा सिरि, रचि रचि बांधन पाया, ता सिरि चंच संवारत कागा।

कहि कबीर तन झूठा भाई, केवल रास रह्यो ल्यौ लाई ।।"

यह पद वैराग्य भावना के बारे में बताता है। इससे कबीर के मूलभूत स्वभाव पर प्रकाश पड़ रहा है।

एक और पद में उन्होंने अपने केशों के बारे में बात की है-

"हमारे कौन सहे सिरि भारा।

सिर की शोभा सिरजन हारा।

टेढ़ी पाग बड़ जूरा, जारि भए भस्म की कुरा।

कहे कबीर राम राया, हरि कै रंगै मूंड मुड़ाया ।।"

इससे ऐसा लगता है कि कबीर सिर पर कोई भार पसंद नहीं करते थे। सिर की शोभा वे ईश्वर को मानते थे। टेढ़ी पगड़ी या केश रखना भी उन्हें पसन्द नहीं था। इस पद से यह अनुमान किया जा सकता है कि वे सिर मुंडाये रहते हो।

4.5. स्वभाव व चारित्रिक विशेषताएँ

कबीरदास की वाणी वह लता है जो योग के क्षेत्र में भक्ति का बीज पड़ने से अंकुरित हुई थी। उन दिनों उत्तर के हठयोगियों और दक्षिण के भक्तों में मौलिक अंतर था। एक टूट जाता था पर झुकता न था, दूसरा झुक जाता था पर टूटता न था। साधारण जनता में इन दोनों से दो प्रकार की प्रतिक्रिया हुई। एक ने श्रद्धालु गृहस्थ के चित्त में शंका का भाव पैदा कर दिया। वह सोचने लगा कि माया विकराल है, इससे छुटकारा पाना कठिन है योग- क्रिया-हीन व्यक्ति की न जाने कौन-सी दुर्गति होगी। दूसरे ने उसे लापरवाह बना दिया। गलती से भी एक बार हरि नाम जिसने ले लिया उसे कुछ और करने की जरूरत नहीं। कबीरदास ऐसी परिस्थितियों में संसार में भटकते हुए जीवों को देखकर करुणा के अश्रु से वे कतार नहीं हो आते थे बल्कि और भी कठोर होकर उसे फटकार बताते थे। कबीरदास जब अवधूत या योगी को संबोधित करते है तो उनकी अवखडता पूरे चढ़ाव पर होती है। परंतु वह स्वभाव थे, फक्कड थे। अच्छा हो या बुरा, खरा हो या खोटा, जिससे एक बार चिपट गए उससे जिंदगीभर चिपटे हो, यह सिद्धांत उन्हें मान्य नहीं था। निर्भीकता और सत्यवादिता कबीर के चरित्र के मूल तत्व कहे जा सकते हैं। कबीर की साखियों को पढ़ने से यह बात सिद्ध और होती कि वह आरम्भ से अन्त तक क्रांतिकारी रहे। क्रमिक सुधार और क्रमिक परिवर्तन का मार्ग उन्हें प्रिय न था। कुरीतियों और कुसंस्कारों के प्रति लेशमात्र भी पक्ष बात उन्हें असहय था। सत्य के इस जिज्ञासु मोह और ममता अपने पथ से विचलित नहीं कर पायी। सत्य की इस खोज में अपना सब कुछ जलाकर निकल पड़े थे और ऐसा ही साथी चाहते थे जिसे 'स्व' की चिंता न हो

'हम घर जाए आपना, लिया मुराडा हाव।

अब घर जारों तासका, जो चले हमारे साथ ।।"

कबीर दास में अखंड आत्मनिष्ठा, दृढ़ता और लापरवाही मिलती है। उन्होंने साधना को एक रणस्थली के समान कठिन और विकट माना है। इसी कारण भक्ति की उपमा उन्होंने पतिव्रता और शूर से दी है। महत्ब्रह्म की साधना में आत्म त्याग की आवश्यकता होती है। अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देने की प्रवृत्ति इस क्षेत्र में प्रवेश की पहली शर्त है। कबीर की दृष्टि में साधना एवं भक्ति के लिए प्रेम आवश्यक हैं किंतु प्रेम का मार्ग अत्यन्त कठिन है।

"कबीर यह घर प्रेम का, खाला का घर नाहि।

सीस उतार भुइं धरै सो पैठै घर माहिं ।।"

कबीर एक युग-प्रवर्तक सन्त थे। उनकी कथनी और करनी-वाणी और कर्म से साम्य था। वे जो कुछ कहते थे, उनके मूल में उनका अनुभव और आत्म विश्वास था। उनमें अपने सिद्धांतों और सत्य के प्रति पूरी ईमानदारी थी। इसी कारण उनकी उक्तियाँ इतनी चुभने वाली है। मानव मात्र को समान समझने वाले कबीरदास -ऊँच- नीच के भेद, बाह्याचार तथा झूठे दिखावे को सह नहीं सके। ऐसे पाखंडियों का खण्डन उन्होंने कटु व्यंग्य के साथ किया है। पण्डित और मुल्ला, शेख और साधु किसी के साथ उन्होंने पक्षपात नहीं किया।

4.6. कबीर के राम

'राम' का परम्परागत रूप, राजा, महापुरुष और ईश्वर के अनेक अवतारों में से एक अवतार है । कबीर ने परम्परागत रूप का बहिष्कार करके कहा है-

"दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना ।

राम नाम का मरम है आना ।"

कबीर केवल 'राम' नाम के मर्म पर ही अपनी उपासना केंद्रित करते हैं । दशरथ- सुत से उनके राम का कोई सम्बन्ध नहीं है । उनके विचार से दशरथ सुत का नाम 'राम' इसी प्रकार से है जैसे कि कोई राजा अपने लड़के का नाम 'परमेश्वर' रख दे, परन्तु इस नाम से वह परमेश्वर नहीं हो जाता । परन्तु ईश्वर अवतार लेता है, भक्तों का दुःख दूर करता है, सगुण और साकार रूप में उन्हें दर्शन देता है और दशरथ के पुत्र राम या देवकीनन्दन कृष्ण वही परब्रह्म थे, कबीर नहीं मानते । वे इन बातों को झूठा विश्वास कहते हैं । उनका विचार है कि ईश्वर बहुत बड़ी शक्ति है यदि कोई राजा पृथ्वी पर शासक हो सके, पर सब पर प्रभाव डाल सके तब भी ईश्वर नहीं हो सकता । वह तो मनुष्य ही होगा । वह अधिक शक्तिवान, सौन्दर्यवान्, शीलवान हो सकता है पर ईश्वर तो इन सब से परे है । जन्म लेना और मरना उसका काम नहीं । उसे अवतरित हो कर लीला करने की आवश्यकता नहीं । यह निर्गुण या निराकार ईश्वर जिसे कबीर कहते हैं ज्ञान का आधार ही हो सकता है, भाव का आधार नहीं । पर कबीर ने अपने निर्गुण राम को भी भावगम्य बनाने का प्रयत्न किया है । इसी निर्गुण राम की उपासना या भक्ति से कबीर के उद्गार ही रहस्यवादी उद्गार है ।

कबीर के राम तत्व इंद्रिय गोचर नहीं है, उसका कोई रूप नहीं, वह अत्यन्त सूक्ष्म है । उसका वर्णन करना कठिन है । उसके विषय में कथन और विश्वास बड़ी सावधानी से ग्रहण करने चाहिए । वह विरोधी गुणों वाला है । जिनका वर्णन करना ही कठिन ही है उसका अनुभव करना तो और भी कठिन है पर कबीर का विचार है कि साधन नित्य प्रति सत्य नियमों का पालन करते रहने पर उसका अनुभव कर सकता है । इस प्रकार का अनुभव साधक का है । उसकी दशा राम के वियोग में विरहिणी की सी है । कबीर ने कहा है कि इस दशा में साधक प्रेमिका है और ईश्वर उसका पति है । उस पति के दर्शन वह आत्मा करना चाहती है । वह जानती है कि उसके समान रूपवान और गुणवान संसार में कोई नहीं है । विकलता के अधिक बढ़ जाने पर दर्शन की प्रार्थना और उसी के नाम रहने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रह जाता । कबीर अविनाशी निराकार 'राम' के दशा का वर्णन करते हैं । वह बड़ा ही लुभावना है । उसका देश बड़ा सुन्दर है पर उस तक पहुँचना बड़ा कठिन है । कबीर दुःख और उमंग के साथ उस देश का वर्णन करते हैं । अतः वह देश वर्णनातीत है, कल्पनातीत है, जिस रूप में संसार में अनेक व्यक्ति है, जिस रूप में हम अपने को एक दूसरे से भिन्न समझते है, वह रूप उस देश में नहीं है । वह लोक पुराणों में वर्णित स्वर्ग, ब्रह्म लोक, इन्द्रपुरी के समान भी नहीं है । यह बड़ा ही सूक्ष्म लोक है और दूर नहीं है, इसी देह के भीतर है । उस देश के महल में रहने वाले प्रिय राम के दर्शन हो सकते है यदि गुरु की कृपा हो जाय । ऐसे विचित्र देश राम का है । यथार्थ देश वही है । इस दुनिया को तो मनुष्य भ्रम से अपना समझता है । स्वच्छ आत्म उसी देश को जाती है । करोड़ों सूर्य का - सा प्रकाश है वही देश राम का है । कबीर के निर्गुण राम परमतत्व है । उन्हें किसी मूर्ति में सीमित नहीं कर सकते, उन्हें एक अवतार से भी सीमित नहीं कर सकते । वे विश्वव्यापी है । वे घट-घट में, जड़ चेतन में, लोक- लोक में व्याप्त हैं और उनसे किसी भी आत्मा का यथार्थ मिलन तभी हो सकता है जब वह मनुष्य जीवन में परम शुद्धि प्राप्त करें ।

4.7. समाज सुधारक के रूप में कबीर

महात्मा कबीर का समाज भक्ति आन्दोलन से, आलोकित था। भक्ति का जो रूप उस समय कबीर के सामने आया और जिस समाज से उनका सम्बन्ध और सम्पर्क रहा वे युगान्तकारी थे। धर्म के भीतर संकीर्णता आ गई थी और समाज में भेद-भाव, छूआ-छूत और ऊँच-नीच की भावना व्याप्त हो गयी थी। ऐसा धर्म और समाज मानव-जीवन के लिए घातक है। इन दोनों की आलोचना के द्वारा उन्होंने वह क्रिया जो बड़े महत्वपूर्ण आन्दोलनों और क्रान्ति द्वारा सम्भव हुआ करता है। अतः समाज- धर्म के आलोचक के रूप में कबीर का महत्वपूर्ण स्थान है।

कबीर की धर्म विषयक आलोचना का अवलम्ब साम्य भावना और लक्ष्य ईश्वर प्रेम के द्वारा मानव प्रेम का विकास था। कबीर के समय में भारत में हिन्दू, मुसलमान हो मुख्य धर्म थे। दोनों ही धर्म उस समय बाह्याडम्बर प्रधान थे और धर्म की उदारता लुप्त सी थी। कबीर ने देखा कि हिन्दू और मुसलमानों के बीच भेद- भाव और विद्वेष को बढ़ाने वाली बातों की निन्दा आवश्यक है क्योंकि इन बाहरी आडम्बरों को लेकर चलने वाले दोनों धर्मों के लोग गुमराह हैं। इन बातों को दूर करके ही ऐसे वास्तविक धर्म का विकास किया जा सकता है और ईश्वर की सत्ता का आभास और पारस्परिक भ्रातृत्व की भावना की स्थापना हो सकती है। कबीर की दृष्टि में केवल मन्दिर में मूर्ति के भीतर ईश्वर को मानना और मस्जिद में ख़ुदा को स्वीकारना, ईश्वर और ख़ुदा दोनों ही की अवमानना है अतः वे कहते हैं कि -

जो खोदाय मस्जिद में बसत है,

और मुलुक के हि केश।

तीरथ मूरति रात निवासी,

बाहर करै को हेरा।

उनके विचार से तो ईश्वर या ख़ुदा, घट-घट व्यापी है। उन्होंने मुसलमानों का मस्जिद में बाँग देना, रोजा रखकर फिर ख़ुरबानी देना, हज् करना, सुन्नति आदि कृतियों की निंदा की, क्यों कि वे धर्म के बाह्य आडम्बर है। इस प्रकार धर्म की बहुत बातें जो केवल साधन रूप होती है जब साध्य बन बैठती है तब धर्म का वास्तविक रूप नहीं रह आता है। मूर्ति पूजा, माला जप, तीर्थ आदि प्रारंभिक साधन है, इनके द्वारा मानसिक पवित्रता और संयम प्राप्त करना चाहिए। परंतु जहाँ यही साध्य बन बैठे, वहाँ धर्म के स्थान पर मात्र आडम्बर बन गये। इन रूढ़ियों से सावधान रहने के लिए कबीर ने इन ब्रह्माचारों की निन्दा की है। उनका कथन है-

पापी पूजा बैस करि भषै माँस मद दोइ

तिनकी देव्या मुकति नहीं कोहि नरक फल होई।

कबीर के धर्म में सहज प्रेम - स्वरूप आदर्श के लिए हिन्दू, मुस्लिम का भेद नहीं था। ईश्वर और ख़ुदा, राम और रहीम में कोई अन्तर नहीं। उनकी धारणा वही है कि बाहरी नाम का अन्तर कोई महत्व नहीं रखता है और यदि उस आराध्य की एकता समझ ली जाय तो साधन- भेद का कोई अर्थ नहीं। क्योंकि वह हमें सत्यानुभूति की ओर ले ही जाएगा। कबीर के धर्म का मुख्य उद्देश्य भेद-भावहीन, स्वच्छ, पवित्र, स्नेहपूर्ण जीवन है। समाज और धर्म- यद्यपि समान है, तथापि धर्म की कुछ बातें एकान्तिक साधना में आती है और कुछ समाज-धर्म के अन्तर्गत। कबीर ने समाज धर्म को प्रभावित और विकृत करने वाली रूढ़ियों और कुरीतियों की आलोचना की है, कबीर की दृष्टि से किसी भी

धर्म के मार्ग में प्रतिबन्ध डालने वाली बातें रूढ़ हैं और जो किसी व्यक्ति के ऐसे दोष है जो उसके आचरण में साम्प्रदायिक भाव लाते है या उसके विवेक को कुण्ठित करते हैं, वे सब कुरीतियाँ है। कबीर की चेतना और सूक्ष्म दृष्टि, समकालीन समाज में व्याप्त रूढ़ियों और कुरीतियों तथा अन्धविश्वासों को देखकर व्याकुल थी। उन दिन वर्ण-व्यवस्था का रूप अपने मूल उद्देश्य के ही विपरीत हो गया। इसी वर्ण व्यवस्था का और भी कटु एवं विकृत रूप छुआ-छूत है जो हिन्दू समाज में और भी तीव्र भेद भाव को जागृत करने लगी। कबीर ने समाज में व्यक्ति दूसरी रूढ़ि मूर्ति पूजा की आलोचना की। वे कहते हैं वह पूजा और भांग जिसमें आन्तरिक भक्ति-भाव नहीं है, व्यर्थ है, कबीर ने समग्र सामाजिक कुरीतियों और दुर्गुणों का खण्डन किया है। सामाजिक जीवन में अहिंसा, सत्संग, सच्चाई, लोभ हीनता आदि गुणों की प्रशंसा की और इनमें बाधा डालने वाले अवगुणों को कबीर ने निन्दा की है। कबीर की समाज और धर्म की आलोचना कटु होते हुए भी यथार्थ है।

4.8. सारांश

कबीरदास 15 वीं सदी के भारतीय रहस्यवाद कवि और संत थे। वे हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन युग में परमेश्वर की भक्ति के लिए एक महान प्रवर्तक के रूप में उभरे। इनकी रचनाओं में हिन्दी प्रदेश के भक्ति आंदोलन को गहरे स्तर तक प्रभावित किया। उनका लेखन सिक्खों के आदि ग्रंथ में भी देखने को मिलता है। कबीर पन्द्रहवीं शताब्दी में उत्पन्न हुए थे। यह काल भारतीय इतिहास में मध्य काल कहलाता है। कबीरदास हिन्दी साहित्य की अनमोल विभूति है। वे मध्यकालीन उन सन्तों में अग्र-गण्य है जिन्होंने अपनी प्रतिभाशाली दार्शनिक विचारधारा से सारे भारत को प्रभावित किया था, विशेषकर 'सत्य' की खोज के क्षेत्र में। कबीर एक धर्मोपदेशक, समाज-सुधारक, योगी, कवि के साथ-साथ एक महान भक्त भी थे। कबीर का व्यक्तित्व समाज सुधारक के रूप में हमारे सामने आते हैं। उन्होंने अपनी पदों के द्वारा समाज की कुरीतियों की खण्डन की। कबीर मध्यकालीन युग पुरुष होते हुए भी आधुनिक कहना उचित होगा। कबीर का व्यक्तित्व ही इतना निराला है कि उन्हें आधुनिक कहने से संदेह नहीं करते हैं। वे सत्य रूपी राम, को मानते है। जगत में जो कुछ भी सत्य है, रमणीय और आकर्षक है, वह राम है। समाज सुधारक के रूप में कबीर को बाह्याडंबरों का खण्डन करते हुए देख सकते हैं। साखी, सबद, रमैनी आदि में कबीर के व्यक्तित्व का झलक - दिखाई देता है।

कबीर की रचनाएँ उनके स्वयं के अनुभवों पर आधारित थी। यद्यपि वे वेद एवं पुराण, इनका प्रयोग करते थे, तथापि वे अपने अनुभवों पर आधारित दृष्टांत ही देते थे। वे अपने समय के दैनंदिनी जीवन से ही दृष्टांत प्रस्तुत करते थे। उन्होंने सदैव एक सांसारिक पुरुष के रूप में जीवन व्यतीत क्रिया, कर्म किया तथा परिवार के लिए जीविका उत्पन्न की। कबीर की प्रसिद्ध एक समाज सुधारक सन्त कवि के रूप में रही है। उन्होंने अपने समय में व्याप्त सामाजिक रूढ़ियों, अन्धविश्वासों का खण्डन किया तथा हिन्दु-मुस्लिम एकता का प्रश्न प्रशंसनीय प्रयास किया। वस्तुतः वे पहले भक्त थे और बाद में कवि, समाज सुधारक बनें। उनकी कविता का उद्देश्य जनता को उपदेश देना और उसे सही रास्ता दिखाना था।

4.9. बोध प्रश्न

1. कबीर जीवन परिचय ,कबीरदास की रचनाएँ और जीवन परिचय क्या है ?
2. कबीर की भाषा और शैली पर निबंध लिखिये।

3. कबीरदास की व्यक्तित्व और कृतियां क्या है ?
4. कबीरदास की साहित्यिक परिचय दीजिए।
5. कबीर का व्यक्तित्व और जीवन उद्देश्य लिखिये।
6. कबीर की जीवनी एवं व्यक्तित्व का सारांश लिखिये।

4.10. सहायक ग्रन्थ

1. कबीर – हजारी प्रसाद द्विवेदी राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
2. हिन्दी काव्य में निर्गुण संप्रदाय – पीताम्बर दत्त बडथ्वाल अवध पब्लिशिंग हाउस , लखनऊ।
3. कबीर : व्यक्तित्व , कृतित्व एवं सिद्धांत – सरनाम सिंह शर्मा , भारतीय शोध संस्थान , गुलावपुरा।
4. संतों रह दुओ हम दीठा – संपादक – भगवानदेव पाण्डेय , विश्वविद्यालय प्रकाशन , वाराणासी।
5. कबीर दर्शन : रामजी लाल सहायक , लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।
6. आधुनिक कबीर – डॉ . राजदेव सिंह , लोक भारती, इलाहाबाद।

डॉ. एम. मंजुला

5. निर्गुण भक्ति एवं – कबीर

5.0. उद्देश्य

कबीर की भक्ति में एकाग्रता, साधना, मानसिक पूजा अर्चना, मानसिक जाप और सत्संगति का विशेष महत्व दिया गया है। कबीर की भक्ति में सभी मनुष्य के लिए समानता की भावना है। यह भक्ति ईश्वर के दरबार में सबकी समानता और एकता की पक्षधर है। इस प्रकार कबीर की भक्ति भावना बहुत ही अद्भुत है । कबीर की भक्ति शास्त्रानुमोदित भक्ति नहीं है, वह व्यावहारिक जीवन की साधुता और सहजता से समन्वित है वह "भाव भगति" है । वह जाति-पाति, काम–धाम, चमक–दमक दिखावा - पहनावा आदि बाह्याचारों से बहुत ऊपर की वस्तु है । कबीर पहले भक्त हैं, फिर कवि । उनके द्वारा रचित साखी, सबद और रमैनी में कवित्व की शक्ति समाहित है। कबीर ने आचरण की शुद्धता के लिए कुसंग का त्याग करने एवं सत्संग करने पर बल दिया है। कबीर का मत है कि जब तक मन में काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष आदि विकार भरे हैं तब तक हृदय में भगवान की भक्ति नहीं आ सकती भक्ति मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति को अहंकार एवं कपट का भी परित्याग करना पड़ता है । इस इकाई में हम कबीर की भक्ति भावना रहस्यवाद, भाषा और समाज सुधारक के रूप कबीर के बारे में विस्तृत अध्ययन करेंगे ।

रूपरेखा

5.1. प्रस्तावना

5.2. कबीर की भक्ति भावना

5.3. कबीर की भाषा

5.4. कबीर के रहस्यवाद

5.5. कबीर दास की विद्रोही भावना

5.6. कबीर की समाज सुधार की भावना

5.7. कबीर में योग और भक्ति का सफल समन्वय

5.8. सारांश

5.1. प्रस्तावना

कबीर दास भक्ति काल के निर्गुण काव्यधारा के प्रमुख कवियों में से एक है उन्होंने राम को निर्गुण रूप में स्वीकार किया है तथा वह निर्गुण की उपासना का संदेश देते हैं उनकी राम भावना ब्रह्म भावना से सर्वथा मिलती है। कबीर पहले भक्त हैं फिर कवि है। उन्होंने जाति-पाती, काम-धाम, चमक-दमक, दिखावा,पहनावा, अंधविश्वास, मूर्तिपूजा, हिंसा, माया, छुआछूत, आदि पर विद्रोह भावना प्रकट की हैं। इन सब से दूर होकर भक्ति की भावना में लीन होने के लिए कबीरदास जी कहते हैं कबीर की भक्ति भावना को हम निम्नलिखित रुप में देख सकते हैं-

5.2. कबीर की भक्ति भावना

1.कबीर की निर्गुण उपासना

उन्होंने राम को निर्गुण रूप में स्वीकार किया है तथा वह निर्गुण राम की उपासना का संदेश देते हैं-

"निर्गुण राम जपहुं रे भाई"

उनके अनुसार राम फूलों की सुगंध से भी पतला अजन्मा और निर्विकार है वह विश्वा के कण-कण में स्थित है। उसे कहीं बाहर ढूंढने की आवश्यकता नहीं है उन्होंने उदाहरण देते हुए कहा है की मिल की नाभि में कस्तूरी छिपी रहते हैं और मेरे उस सुगंध का स्रोत बाहर ही ढूंढता फिरता है जबकि व उसके भीतर ही विद्यमान होता है।

"कस्तूरी कुंडली बसै, मृग ढूंढे वन माहिं।
ऐसे घट-घट राम हैं दुनिया देखे नाहिं।"

कबीर के अनुसार ईश्वर हर जगह मौजूद है वे कहते है कि ईश्वर कण-कण में समाया है हर इंसान के शरीर में, हर मन में, हर आंखों में ईश्वर का निवास है इसलिए उसे हमें ढूंढने की आवश्यकता नहीं है बल्कि उसे एकाग्र मन से स्मरण करने की आवश्यकता है।

''प्रियतम को पतिया लिखूं, को कहीं होय विदेस।
तन में, मन में, नैन में, ताकौं कहा सन्देश।''

2.कबीर एकेश्वरवाद

कबीर ने बहुदेववाद तथा अवतारवाद का विरोध किया और एकेश्वरवाद का संदेश सुनाया ब्राह्म नहीं ब्राह्म, विष्णु, महेश आदि को बनाया है। इसलिए उन्होंने निराकार ब्रह्म कोही महत्वपूर्ण स्थान दिया और अवतार को जन्म-मरण के बंधन से ग्रसित बताया।

"अक्षय पुरुष इक पेड है, निरंजन बाकी बार।
त्रिदेवा शाखा भयें पात भया संसार।"

3.कबीर की अलौकिक प्रणयानूभूति

कबीर के काव्य में परमात्मा के प्रति अलौकिक प्रणयानूभूति की अभिव्यक्ति की गई हैकबीर वैसे तो खंडन मंडन की राह पर चलते रहे हैं और हिंदू मुसलमानों को खरी-खोटी सुनाते रहे पर अपनी रहस्यवादी रचनाओं में से वे अत्यंत मष्दुल और कोमल दिखाई देते हैं कबीर के रहस्यवाद शंकर के अद्वैतवाद का प्रभाव है-

"जल में कुंभ कुंभ में जल है भीतर बाहर पानी।
फूटा कुंभ जल जलाहें समाना, यह तत का हो गयानी।"

4.कबीर की अद्वैतवाद

ब्रह्मा, जीव, जगत माया आदि तत्वों का निरूपण उन्होंने भारतीय अद्वैतवाद के अनुसार किया है उनके अनुसार जगत में जो कुछ भी है वह ब्रह्म ही है। अंत में सब ब्रह्म में ही विलीन हो जाता है।

"पाणी ही ते भाया, हिम है गया बिलाय।

जो कुछ था सोई भाया अब कुछ कहा ना जाए।"

संसार की मिथ्या व माया के भ्रम का आख्यान भी कबीर ने अद्वैतवादी विचारधारा के अनुरूप किया है।

"कबीर माया पापणी हरि सूं करै हराम।

मुखि कड़ियाली कुमति की कहण न देई राम।"

5.राम नाम की महिमा

कबीर ने विभिन्न नामों में राम नाम को पूरी गंभीरता से और बार-बार लिया है। उन्होंने अपने आराध्य के लिए विभिन्न नामों का प्रयोग किया है - राम, साईं, हरि, रहीम, खुदा, अल्लाह आदि प्रमुख है। यह सर्वविदित तथ्य है कि कभी निर्गुण राम के उपासक हैं। वह बार-बार नाम स्मरण की प्रेरणा देते हुए कहते हैं।

"कबीर निर्भय राम जपु, जब लागे दीवा बाति।

तेल धटा बाती मुझे, तब सोवो दिन राति।"

6.कबीर की वात्सल्य की भावना

कबीर के काव्य में यत्र तत्र वात्सल्य का मनभावन रूप सामने आता है कभी स्वर को बालक और ईश्वर को जननी के रूप में मान्यता देते हुए कहते हैं।

"हरि जननी मैं बालक तोरा

काहे ना अवगुन बकसहु मेरा।"

7.कबीर की कांता भाव

ईश्वर की कांता भाव से स्मरण करते हुए स्वयं को उनकी जननी के रूप में प्रस्तुत किया है अपने पति ईश्वर को याद करते हुए कवि की आत्मा आवाज देती है।

"दुलहिन गावहु मंगलचार

हम घर आयहु राजा राम भरतार।"

8.कबीर की माधुर्य भाव की भक्ति

माधुरी भाव की भक्ति को मधुराभक्ति या प्रेम लक्ष्णा भक्ति कहा जाता है भक्त स्वय को जीवात्मा एवं भगवान को परमात्मा मन मान कर दांपत्य प्रेम की अभिव्यक्ति जहां करता है वहां मधुरा भक्ति मानी जाती है माधुर्य भाव की भक्ति कबीर दास के दोहे में बखूबी देखने को मिलता है।माधुरी भाव कबीर किस पंक्ति में देखने को मिलता है-

"आंखड़ियां झांई पड़ी पंथ निहारि निहारि।

जीभड़ियां छाला पड़्या राम पुकारि पुकारि।।"

आत्मा का जीव आत्मा के प्रति विरह भाव कबीर ने बड़े मनोयोग से व्यक्त किया है। प्रियतम परमात्मा की बाट जोहते-जोहते आंखों में झांई पड़ गई , राम को पुकारते हुए जीभ में छाला पड़ गया है।

9.कबीर की दास्य भाव की भक्ति

कबीर भले ही निर्गुण मार्गी भक्त कवि हो किंतु उनमें दस्य भाव की भक्ति दिखाई देती है।तुलसी की भक्ति जिस प्रकार दास्य भाव की है उसी प्रकार कबीर की भक्ति भावना में भी दस्य भाव दिखाई पड़ता है। वह प्रभु को स्वामी एवं स्वयं को दास सेवक या गुलाम कहते हैं

मैं गुलाम मोही बेची गोसाई।

10. कबीर की वैराग्य भावना

कबीर के अनुसार वैराग्य का तात्पर्य संसार को छोड़कर जंगल में निवास करना नहीं है। संसार में रहते हुए भी मन में संतोष वृत्ति लाना, विषय भोगों के प्रति अनासत्त होना, आशा तृष्णा से मुक्त होना वैराग्य है। कभी संसार के रिश्ते नाते को क्षणभंगुर मानते हैं ये सारे संबंध स्वार्थमय है ऐसा कह कर कबीर वैराग्य जगाने का प्रयास करते हैं।

11.कबीर की प्रपत्ति भाव

प्रपति का अर्थ है शरणागति एवं आत्मनिवेदन। कबीर भगवान को सर्वशक्तिमान मानकर उसकी शरण में जाकर अपनी रक्षा की प्रार्थना करते हैं।

कबीर तेरी सरनि आया, राखि लेहु भगवान।

12.आचरण की शुद्धता

कबीर ने आचरण की शुद्धता के लिए कुसंग का त्याग करने एवं सत्संग करने पर बल दिया है। कबीर का मत है कि जब तक मन में काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष आदि विकार भरे हैं तब तक हृदय में भगवान की भक्ति नहीं आ सकती भक्ति मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति को अहंकार एवं कपट का भी परित्याग करना पड़ता है।

13.नाम स्मरण:

कबीर दास के अनुसार केवल नाम मात्र से ही ईश्वर की प्राप्ति हो जाती है इसलिए वे कहते हैं कि हमें सच्चे मन से ईश्वर को स्मरण करते रहना चाहिए। जब हम एकाग्रचित्त होकर ईश्वर के नाम का जप करते है, तभी वह फलदायी होता है। वे ऐसे नाम स्मरण का विरोध करते हैं जिसमें मन दसों दिशाओं में घूमता रहता है -

माला तो कर में फिरै जीभ फिरै मुख माहि।
मनुवा तो दस दिसि फिरै सो तो सुमिरन नाहि ॥

14.ईश्वर में विश्वास

कबीर को ईश्वर की महत्ता का पता है इसलिए वे पूरी श्रद्धा और विश्वास से से अपने ईश्वर की आराधना करते हैं। कबीर को पूरा विश्वास है कि परमात्मा पूर्ण समर्थ है। वह राई को पर्वत एवं पर्वत को राई करने की सामर्थ्य रखता है-

सांई सूं सब होत है बन्दे थै कछु नांहि।
राई थे परबत करै, परबत राई मांहि ॥

15.कबीर की तन्मयता रूप

कबीर अपने प्रियतम के प्रति पूरी तरह समर्पित है वह अपने प्रियतम के साथ जुड़ना चाहते हैं। यारों भक्ति के चरम उत्कर्ष को प्रकट करता है

"आंखिन की करि कोठरि, पुतरी पलग बिछाय।

पलकन की चिक डारि के, पिय को लिया रिझाया।"

कबीर की उपासना में अनन्यता और अटल भक्ति का स्वरूप प्रकट होता है।

16.भक्त रूपी कबीर

भक्त के रूप में कबीर निर्गुण ब्रह्म केक उपासक थे। निर्गुण ब्रह्म की उपासना में बिना किसी बाहरी आडंबर के भक्त ईश्वर में अपने को समाहित कर देता है। निर्गुण ब्रह्म के उपासक के लिए ब्राह्म उपकरण व्यर्थ प्रतीत होते हैं। निर्गुण ब्रह्म के उपासक को किसी खास पत्थर (मूर्ति पूजा) या खास उपकरण (माला) मिस्र की सत्ता के दर्शन नहीं होते हैं, उसके लिए तो प्रत्येक कण में ईश्वर के उपस्थिति दिखाई देती है। भक्त के रूप में कबीर कहते हैं-

कबीरा खड़ा बाजार में, लिए लकुटिया हाथ।

जे घर फूंके आपना, सो चले हमारे साथ।।

कबीर निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे। उनके ईश्वर का कोई रूप नहीं इसलिए उन्होंने भगवान की तुलना कस्तूरी से की है कस्तूरी की गंध का अनुभव किया जा सकता है पर उसका रूप नहीं होता।

17.ईश्वर की प्राप्ति के लिए मार्ग प्रस्थान:

कबीर दास ईश्वर प्राप्ति का सच्चा मार्ग पहचाने हुए पहुंचे सन्त थे। उनका मानना है कि ईश्वर दिखावे से नहीं प्राप्त हो सकते हैं। ईश्वर को प्राप्त करने के लिए उनमें पूर्ण समर्पण की आवश्यकता है। कबीर कहते हैं कि लोग ईश्वर की प्राप्ति के लिए बाह्य आडंबर करते हैं पर पूर्ण समर्पण नहीं करते। इस पर कबीर कहते हैं कि माला फेरना तब तक व्यर्थ है जब तक ईश्वर में चित्त को पूर्ण रूप से न लगा दिया जाए तब तक ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

कबीर माला काठ की, कहिए समझावै तोहि।

मन न फिरावै आपणां, कहा फिरावै मोंहि।।

5.3. कबीर की भाषा

कबीर भले ही पढ़े-लिखे नहीं थे, परंतु पर्यटनशील होने के कारण उनकी भाषा में ब्रज, अवधी, राजस्थानी, पूर्वी हिंदी, पंजाबी आदि का सम्मिश्रण मिलता है, जिससे उसे पंचमेल खिचड़ी या साधुक्कड़ी कहा जाता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उन्हें वाणी का डिक्टेटर कहा है। डॉ द्वारिका प्रसाद सक्सेना के मतानुसार "कबीर निस्संदेह एक प्रतिभा संपन्न महाकवि थे, वे काव्य रूढ़ियों के जानकार न होकर भी अनुभवी शब्द चितेरे थे, काव्य कला के मर्मज्ञ न होकर भी शब्द शिल्पी थे और संगीत के पंडित ना होकर भी हिंदी की दिव्य एवं अलौकिक कविता के गायक थे। "कबीर ने यद्यपि अपने काव्य विधान में किसी प्रकार की प्रयत्नपूर्वक योजना नहीं की फिर भी प्रतीकात्मकता, अलंकारिकता और राजस्थान में बहुत ही सहज रूप में ही उसमें आ गई है। अन्योक्ति और रूपक अलंकार के प्रयोग में वे सिद्धहस्त हैं ।

कबीर की भाषा की विशेषताएँ

कबीर की भाषा में सामान्य तौर पर निम्नलिखित विशेषताएं पाई जाती है।

1. कबीर की भाषा में ब्रजभाषा अवधी खड़ी बोली राजस्थानी पंजाबी तथा अरबी फारसी भाषाओं का मिश्रण है। ऐसी भाषा साधुओं के बीच प्रचलित थी जिससे इसे साधुक्कड़ी भाषा कहा गया है।

2. कबीर द्वारा प्रयुक्त भाषा अनगढ़, अपरिमार्जित और अपरिष्कृत है, फिर भी वह अत्यंत प्रभावशाली है। कबीर की उक्ति यों में कहीं-कहीं विलक्षण प्रभाव और चमत्कार है।

3. कबीर की भाषा में व्याकरण के नियमों नगरों में प्रयोग की जाने वाली नियमों से अलग है।

4. कबीर की भाषा संगीतात्मक है जिसमें अभिव्यंजना की समस्त पद्धतियां पायी जाती है।

5. कबीर की भाषा में कबीर के भावनाओं को व्यक्त करने में पूर्ण रूप से सक्षम और समर्थ है। कबीर शब्दों को मूर्त रूप देने में माहिर है।

6. कबीर की भाषा में व्यंजना शक्ति का पूर्ण प्रस्फुटन दिखाई देता है। उनकी साखियों में बिम्बों का निर्माण करने वाले अलंकारों का आकर्षक प्रयोग उपलब्ध होता है।

7. कबीर की भाषा ब्रज, अवधी, राजस्थानी, पूर्वी हिंदी, पंजाबी आदि का सम्मिश्रित भाषा, पंचमेल खिचड़ी या साधुक्कड़ी है।

8. कबीर की काव्य भाषा पंचमेल खिचड़ी या साधुक्कड़ी कहलाती है।

5.4 कबीर के रहस्यवाद

कबीर दास की जन्म और मृत्यु दोनों तिथियां अनिर्णीत है। विद्वानों ने अपने अपने ढंग से इस संबंध में अटकलें लगाने की कोशिश की है। कबीर का लालन-पालन नीरू और नीमा नामक मुसलमान दंपति ने किया। इनके संबंध में कहा जाता है कि इन्होंने स्याही, कागज और कलम का स्पर्श नहीं किया था-'मसि कागद छुऔ नहिं,कलम। गह्यौ नहिं हाथ। फिर भी, कबीर ने अपनी प्रतिभा शक्ति से हिंदी साहित्य का अतिशय कल्याण किया। कबीर भक्ति काल के ज्ञानाश्रयी (निर्गुण) शाखा के प्रवर्तक कवि हैं। इनके दीक्षा गुरु वैष्णव भक्त रामानंद है।

उनके दृष्टि में ईश्वर अथवा ब्रह्म की व्याप्ति दुनिया के कण-कण में है अतः उसे अयंत्र खोजने की जरूरत नहीं। ब्रह्म प्राप्ति के लिए हृदय की स्वच्छता और पवित्रता चाहिए। कबीर सात्विक जीवन के समर्थक और शुद्ध सत्य के पुजारी थे। उन्होंने किसी धर्म ग्रंथ को महत्व नहीं दिया। आडंबर हीन जीवन जीने में उन्हें पूरा विश्वास था। उन्होंने तटस्थ भाव से हिंदुओं और मुसलमानों के धर्मों में निहित आडंबर वादी प्रवृत्तियों कि खुलकर आलोचना की। उनके मस्तिष्क में स्वस्थ और स्वच्छ समाज की परिकल्पना थी। उनका जीवन अंत अंत तक लाग लपेट से पूरी तरह से दूर रहा। मैं समाज सुधारक थे और भक्त भी।

उन्होंने राम को अपने प्रियतम के रूप में स्वीकार किया। व्यक्ति के जीवन की अंतिम आकांक्षा परमात्मा से साक्षात्कार की होती है। जब तक परमात्मा से आत्मा का मिलन नहीं हो जाता जीवन अधूरा और अपूर्ण है। परमात्मा ही जीवन का सर्वस्व है। हिंदी साहित्य में कबीर के समान दूसरा कोई अखंड कभी नहीं है। उनकी दृष्टि में ज्ञानी और पंडित वही है जिसने ढाई अक्षर प्रेम इस शब्द को अच्छी तरह से पहचान लिया हो-

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ,

पंडित भया न कोय

ढाई आखर प्रेम का

पढ़ें सो पंडित होय।

कवि के रूप में कबीर जीवन के अत्यंत निकट हैं। सहजता उनकी रचनाओं की सबसे बड़ी शोभा और कला की सबसे बड़ी विशेषता है। कबीर के काव्य में दांपत्य एवं वात्सल्य के द्योतक प्रतीकों का सुंदर प्रयोग हुआ हैं । रहस्यवाद से संबंध पदों में अकथनीय अनुभव को व्यक्त करने के लिए उन्होंने पग पग पर प्रतिकों का आश्रय लिया है । प्रभावसाभ्य के कारण उनके प्रतीक ओर से तादृशी भावना जागृत होती है। इसमें संदेह नहीं कि कबीर की दूरदर्शिता रसज्ञता, सहृदयता तथा संवेदनशीलता ने उनके काव्य में विभाव-पक्ष को सुंदर और प्रभावशाली बना दिया है। फिर भी उनमें वह सतर्कता एवं सावधानी नहीं मिलती जो लिखित साहित्य के लिए अपेक्षित है। काव्य सौंदर्य की अभिवृद्धि के साधनों छंद, अलंकार आदि के प्रति उनके मन में कोई पूर्वनिष्ठा नहीं है। उनके रुपक तथा उपमाएं दैनिक जीवन से संबद्ध हैं। सत्य तो यह है कि काव्य रचना उनका साध्य या लक्ष्य नहीं था फिर भी उन्हें महान संदेशों के अभिव्यक्ति के लिए उन्हें काव्य को माध्यम बनाना पड़ा। इस प्रकार राष्ट्रवादी संत और धर्मगुरु होने के साथ-साथ वे भाव प्राण कवि भी थे ।

5.5. कबीर दास की विद्रोही भावना

कबीर दास जी प्रगतिशील चेतना से युक्त एवं विद्रोही कवि थे। उनका व्यक्तित्व क्रांतिकारी था। धर्म और समाज के क्षेत्र में व्याप्त पाखंड कुरीतियों रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों की उन्होंने खूब आलोचना की और ऊंच-नीच छुआछूत जैसे समाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए वर्कर्स प्रयास किया ।

कबीर के जीवन काल में समाज हर तरह के बुराइयों से घिरा हुआ था उन्हें खत्म करने के लिए उन्हें जो ठीक लगा उसे कहने में कोई संकोच नहीं किया वस्तुत: वे जन्म से विद्रोही प्रकृति से समाज सुधारक एवं हृदय से लोक कल्याण के आकांक्षी महामानव थे। उनके व्यक्तित्व का पूरा प्रतिबिंब उनके साहित्य में विद्यमान है वह उपदेशक है तथा मानव मात्र को सत्य अहिंसा प्रेम करुणा दया क्षमा संतोष उदारता जैसे गुणों को धारण करने का उपदेश देते हैं साथ ही वे समाज में व्याप्त धर्मी पाखंड जाति प्रथा रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों का खंडन भी किया कबीर वैसे तो पढ़े-लिखे न थे किंतु उनमें अनुभूति की सच्चाई एवं अभिव्यक्ति का खरापान उनके अंदर बखूबी था। उनके अंदर इतना विद्रोही भाव था कि वे शास्त्र के पंडित को भी चुनौती देते हुए कहते है ।

तू कहता कागद की लेखी मैं कहता आंखिन की देखी।

मैं कहता सुरझावन हारी, तू राखा उरझोय रे।।

समूचा मध्यकाल अंधविश्वास रूढ़ियों पाखंड एवं बाह्याडम्बर में जकड़ा हुआ था। मुल्ला और पंडित भोली भाली जनता को बरगला कर धार्मिक उन्माद उत्पन्न करते थे और उससे अपना स्वार्थ साधते थे। कबीर यह अच्छी तरह जानते थे, इसलिए उन्होंने जनता को साफ-साफ शब्दों में चेतावनी देते हुए कहा-

हिंदू-तुरक की एक राह है सद्गुरु यहै बताई।

कबीर का व्यक्तित्व क्रांतिदर्शी था। उन्होंने बाह्यडम्बरों के विरूद्ध हल्ला बोल दिया और ऊंच-नीच तथा जाति-पांती के भेदों को नकारते हुए अपने विद्रोही स्वर में घोषणा की-

कबिरा खड़ा बाजार में लिए लुकाठी हाथ।

जो घर बालै आपना सो चलै हमारे साथ।।

अंधविश्वास और पाखंड के विरोधी कबीर ने 'मगहर' में जाकर इसलिए मृत्यु का वरण किया क्योंकि वे यह दिखा देना चाहते थे कि मुक्ति काशी में ही नहीं मगहर में मारने से भी मिल सकती है।

5.6 कबीर की समाज सुधार की भक्ति

कबीर महान समाज सुधारक थे। उनके समकालीन समाज में अनेक अंध विश्वासों, आडम्बरों, कुरीतियों एवं विभिन्न धर्मों का बोलबाला था। कबीर ने इन सब का विरोध करते हुए समाज को एक नवीन दिशा देने का पूर्ण प्रयास किया। उन्होंने जाती-पांति के भेदभाव को दूर करते हुए शोषित जनों के उद्धार का प्रयत्न किया तथा हिंदू मुस्लिम एकता पर बल दिया उनका मत था ।

जाति-पांति पूछै नहीं कोई।

हरि को भजै सो हरि का होई।।

कबीर ने विभिन्न क्षेत्रों में समाज सुधार का प्रयास किया। उनके द्वारा किए गए इस प्रयास को निम्न शिर्षकों में समझाया जा सकता है।

1. **मूर्ति पूजा का विरोध**

कबीर नहीं समाज में मूर्ति पूजा का डटकर विरोध किया वह सामान्य जनता को समझाते हुए कहते हैं की मूर्ति पूजा से भगवान नहीं मिलते हैं इससे तो अच्छा है कि आप घर की चक्की को ही पूजा करें क्योंकि चक्की हमें खाने भर के लिए अनाज पीस कर दे देती है।

पाहन पूजैं हरि मिलैं तौ मैं पूजूं पहार।

घर की चाकी कोई ना पूजै पीस खाय संसार।

2.जीव हिंसा का विरोध

कबीर ने धर्म के नाम पर व्यक्त हिंसा का विरोध किया। हिंदुओं में शाक्तो और मुसलमानों में कुर्बानी देने वालों को उन्होंने निर्भीकता से फटकारा और कहा कि दिन में रोजा रखने वाले रात को गाय काटते हैं।इस कार्य से भला खुदा कैसे प्रसन्न हो सकता है।

दिन भर रोजा रखत है रात हनन है गाय।
यह तो खून वह बंदगी कैसी खुशी खुदा है।।
बकरी पाती खात है ताकी काढ़ी खाल।
जो नर बकरी खात है ताको कौन हवाल।।

3. राम रहीम की एकता का प्रतिपादन

कभी चाहते थे कि हिंदू मुसलमान प्रेम एवं भाईचारे की भावना से एक साथ मिल कर रहें। उन्होंने राम और रहीम की एकता स्थापित करते हुए बताया कि ईश्वर दो नहीं हो सकते। यह तो लोगों का भ्रम है जो खुदा को परमात्मा से अलग मानते हैं-

दुई जगदीस कहां ते आया कहु कौने भरमाया।

4. जाति-पाति तथा छुआछूत का विरोध

कबीर भक्त और कभी बात में है समाज सुधारक पहले हैं। उनकी कविता का उद्देश्य जनता को उपदेश देना और उसे सही रास्ता दिखाना है। उन्होंने जो गलत समझा उसका निर्भीकता से खंडन किया। अनुभूति की सच्चाई और अभिव्यक्ति की ईमानदारी कबीर की सबसे बड़ी विशेषता है। कबीर ने समाज में व्याप्त जाति प्रथा छुआछूत एवं ऊंच-नीच की भावना पर प्रहार करते हुए कहा कि जन्म के आधार पर कोई ऊंचा नहीं होता ऊंचा हुआ है जिस के कर्म अच्छे हैं

ऊंचे कुल का जनमिया करनी ऊंच न होय।
सुबरन कलस सुरा भरा साधू निंदत सोय।।

5. **हिंदू पाखंड का खंडन**

कबीर ने हिंदू पाखंड साधुओं एवं अंधविश्वासी जैसे हिंदुओं पर फटकारा। वे कहते थे की माला फेरने से परमात्मा या ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती हैं ईश्वर को अगर प्राप्त करना है तो मन की सुधि से ईश्वर प्रश्न होता है बल्कि हाथ में माला फेरने से और मुंह से ईश्वर का नाम जपते रहने से परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती। उसके लिए मन भी स्थिर होना आवश्यक है। वे इस पर कहते हैं

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवा तो चहुँदिसि फिरै, यह ते सुमिरन नाहिं।।

माला फेरत जुग गया गया न मन का फेर।
कर का मनका डारि कै मन का मनका फेर।।

6. मुस्लिम प्रखंड का खंडन

कबीर सिर्फ हिंदुओं पर ही नहीं बल्कि मुसलमानों को भी पाखंडी कहा। मुसलमान दिन भर रोजा रखकर रात को यादी गौ हत्या करके ईश्वर को प्रसन्न करना चाहे तो यह नीरा भ्रम है। ईश्वर इस से प्रसन्न होने वाला नहीं है। वे समाज में व्याप्त बुराइयों के कटु आलोचक थे किंतु उनकी आलोचना सुधार भावना से प्रेरित था वे मुल्ला जो अजान के वक्त जोर-जोर से माइक में अल्लाह का नाम लेते हैं उन पर भी वे कड़ी फटकार लगाते हुए कहा

कंकर पत्थर जोरि कै मस्जिद लई बनाय।
ता चढि मुल्ला बांग दे क्या बहरा हुआ खुदाय

7.तीर्थाटन का विरोध

कबीर ने हिंदू तथा मुसलमान जो तीर्थ यात्रा या भगवान की प्राप्ति के लिए यहां वहां भटकते हैं उन पर भी विरोध किया और कहा कि

गंगा नहाए कहो को नर तरिंगे
मछरी न तरी जाको पानी में घर है।

8. संप्रदायिकता का विरोध

कबीर नहीं हिंदू और मुसलमान दोनों को ही एक समान माना है फिर चाहती थी कि हिंदू मुसलमानों में भाईचारे की भावना उत्पन्न हो। लेकिन वे आपस में ही लड़ मरते थे इस पर भी उन्होंने कहा

हिंदू कहे मोहे राम पियारा और तुरक रहमान।
आपस में दोऊ लरि मुए मरम न काहू जाना।।

5.7. कबीर में योग और भक्ति का सफल समन्वय

कबीर की वाणी वह लता है जो योग के क्षेत्र में भक्ति के बीज पड़ने से अंकुरित हुई थी।

कबीरदास जिस समय पैदा हुए ये उस समय उत्तर भारत में योग और दक्षिण भारत में भक्ति की धारा जोरों पर थी। कबीर शुरू में योगमार्ग की ओर झुके हुए थे। योग चित्तवृत्ति का निरोध करता है। मन को बस में करने का यह साधन है। योग के द्वारा ब्रह्म का साक्षात्कार किया जा सकता है। कबीर ने भी खुद समाधि लगाकर उस अक्षर ब्रह्म का साक्षत्कार का किया था। कुंडलिनी जागृत कर उसे ब्रह्मरंध्र में ले जा चुके थे, गगन मंडल के अनहदनाद एवं अमृत वर्षा का उन्हें अनुभव प्राप्त थाः

गगन गरजै तहाँ सदा पावस झरै

होत झनकार, नित बजत तूरा

वेद-कत्तेब की गम्म नाहीं तहाँ

कहै कबीर कोई रमै सूरा।

कबीर पर योगियों का भरपूर असर था, पर वे शुद्ध रूप से योगमार्गी नहीं थे। इसका एक कारण तो यह था कि किसी भी साधना मार्ग के तर्कहीन, अन्ध-अनुसरण में उनकी आस्था नहीं थी। किसी राह पर थोड़ी दूर चल लेने के बाद भी कोई बात खटक गई तो उस राह को छोड़ने में उन्हें क्षण मात्र की भी देर नहीं होती थी। जब समाधि भंग हुई, जब उनमनि से तारतम्य टूटा, तब। तब तो फिर तुम उसी संसार में लौट आए। अब तुम्हारी क्या गति होगी ? तुम्हारे योग के पास इसका क्या उत्तर है:

गगना-पवना दोनों बिनसै, कहँ गया जोग तुम्हारा?

कबीरदास योगियों के द्वारा प्रभावित तो बहुत है पर वे स्वयं वही नहीं है जो योगी है। कबीर ने योग साधना की थी, पर कबीर उसका हद जानते थे। वे यह मानते थे कि सिर्फ शारीरिक और मानसिक अनुशासन से ब्रह्म को प्राप्त नहीं किया जा सकता, उसके लिए तो आत्मा का सम्पूर्ण उन्नयन आवश्यक है। वे योग के रास्ते से होकर भक्ति के क्षेत्र में आए थे। उनकी अद्वैत भावना के साथ निर्गुन प्रेम इसी कारण है।

कबीर को भक्ति की शिक्षा गुरू रामनन्द से प्राप्त हुई थी। हजारी प्रसाद द्विवेदी जी लिखते हैं, ‘‘जिस दिन से महागुरू रामानन्द ने कबीर को भक्ति रूपी रसायन दी, उस दिन से उन्होंने सहज समाधि की दीक्षा ली, आँख मूँदने और कान सूँधने के टण्टे को नमस्कार कर लिया, मुद्रा और आसन की गुलामी को सलामी दे दी।’’ जाहिर है कि कबीर नाथपंथ के योगमार्ग से आगे बढ़े और रामानन्द ‘अनन्य भक्ति‘ को अपनाकर, उन्होंने क्रान्तिकारी निर्गुण भक्ति की प्रस्तावना की। इसलिए उनकी रचनाओं में योग के भी तत्व है और भक्ति के भी। वेदान्त में जिसे ‘ब्रह्म जिज्ञासा‘ कहा गया है वह वस्तुतः भक्ति ही है। कठोपनिषद् में कहा गया है, ‘‘परमात्मा में जिसकी भक्ति श्रद्धा है, उसी से परमात्मा प्रसन्न रहते हैं।" भक्ति सूत्रकार ने कहा है, ‘अथतो ब्रह्म जिज्ञासा सा परानुरक्तिरीश्वरे!’ अर्थात् ब्रह्म जिज्ञासा और कुछ नहीं ईश्वर विषयक परम अनुरक्ति ही है।

कबीर ने अपनी साधना-पद्धति के लिए भक्ति से भी तत्व लिया और योग से भी। यदि दोनो को बिल्कुल शास्त्रीय अर्थ में न ले तो कबीर की साधना को ‘‘भक्ति योग‘‘ का नाम दिया जा सकता है। उन्होंने नाथपंथी योग से निर्गुण प्रेम पर आधारित भक्ति का स्वरूप गढा। स्पष्ट है कि कबीर ने अपनी रूचि और विवेक से तत्कालीन मार्ग एवं पद्धतियों से गुण ग्रहण किये, अंधानुकरण नहीं किया

ना हरि रीझै जप तप कीन्हें, ना काया के जारे।

ना हरि रीझै धोती छाँड़े, ना पाँचों के मारे।

दया राखि धरम को पालै, जग सो रहे उदासी

अपना सा जिव सबको जानै, ताहि मिलै अविनासी।

कबीर ने देखा था कि योगी और भक्त के स्वभाव परस्पर विरोधी हैं। एक में निर्ममता है तो दूसरे में कोमलता। योगी समाज की ऊँच-नीच भावना का मजाक उड़ाता था, जाति भेद पर व्यंग करता था, पर स्वयं को समाज के अन्य निकृष्ट जीवों से श्रेष्ठ समझता था, जबकि भक्त वर्णाश्रम व्यवस्था को मानता हुआ भी अपने को तृण से भी गया गुजरा समझता था। योग ज्ञान पर आधारित था जबकि भक्ति विश्वास पर, आस्था पर, प्रेम पर। उस समय योग से साधारण

जनता आक्रांत थी। भक्ति अपने सहज स्वरूप को लेकर जनता के सामने आयी और प्रचारित किया कि 'हरि से बड़ा हरि का नाम। साथ ही इस नाम जप से ही भव सागर के पार जाया जा सकता है।

योग को थोड़ा सहज तथा भक्ति को थोड़ा कठिन बनाकर कबीर ने अपनी रचनाओं की विचार भूमि तैयार की। 'तेरा साई तुझमें' कहकर उन्होंने घट-घट में निवास करनेवाले ब्रह्म की सत्ता को स्वीकार किया है। उनकी भक्ति प्रेममूला है। उनके अनुसार कुंडलिनी को ब्रह्मरंध्र में ले जाने के लिए ''लौ'' लगाने की जरूरत है। कबीर उन मतों का भी विरोध करते हैं, जिनके अनुसार परम पुरूष केवल बाहरी दुनिया में रम रहा है और भीतर उसमें शुन्य है।

भीतर कहूँ तो जगमय लाजै,

बाहर कहूँ तो झूठा लो।

बाहर-भीतरः सकल निरन्तर,

गुरू परतापै दीठा लो।

कबीर दास जी जिस ब्रह्म की साधना करते थे, उसे प्रेम से ही प्राप्त किया जा सकता है। उनकी प्रेमाभक्ति में आत्मसमर्पण भी है और अकड़ भी। इसमें हार में भी जीत हैं और जीत तो जीत है ही-

'हारौं तो हरि नाम है, जो जीतूँ तो दाव'

इस सरलता और विश्वास के कारण ही जहाँ वे एक स्थान पर भगवान के निकट अतिशय विनम्र दिखते है, वहाँ दूसरे स्थान पर चुनौती देते दिख जाते हैं। ''कबीर कुत्ता राम का, मुतिया मेरा नाउँ। गलै राम की जेबड़ी, जित खैंचे तित जाऊँ।'' में उनकी विनम्रता, प्रेम और भक्ति के आधिक्य के कारण ही है।

भक्ति के अतिरेक में उन्होंने अपने को कभी भी नीच नहीं समझा। उनके दैन्य में भी एक आत्म विश्वास है। उनका मन जिस प्रेम रूपी मदिरा से मतवाला बना हुआ था, वह ज्ञान के गुड़ से तैयार की गई थी। इसलिए कबीर में योग और भक्ति का मनोहारी तालमेल दिखाई पड़ता है। कबीरदास जनता को न ही योग की तांत्रिक साधना से डराना चाहते थे न ही भक्ति की सरलता से फुसलाना चाहते थे। इसलिए वे कहते है -

मैं कहता सुरझावन हारी,

तू राख्यो अरूझाई रे।

कुछ लोग की आपत्ति है कि निर्गुण ब्रह्म के साथ भक्ति कैसे चल सकती है। इसका उत्तर है कि भक्ति भागवत विषयक प्रेम को ही कहते है। नारद पंचरात्र में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि निर्गुण ब्रह्म को अनन्य भाव से समस्त इन्द्रियों और मन के द्वारा सेवन करना ही भक्ति है। अद्वैत भावना भक्ति के मार्ग में बाधक नहीं है। इसलिए कबीर ने कहा है-

संतो, भक्ति सतो गुरू आनी।

5.7 सारांश

कबीर की भक्ति भावना में प्रेम को आकर्षक और प्रभावी महत्व दिया गया है उनका मानना है कि मानव प्रेम में भी ईश्वर की कृपा होती है कन कन में समाया राम ही मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रेरणाधार है कबीर के सच्चे भक्त थे विभक्ति की महिमा गाते नहीं अघाते।भक्ति ही जीवन को व्यर्थ बताते हैं ऐसा व्यक्ति बार-बार जन्म लेकर संसार में आता जाता रहता है। कबीर की भक्ति सहज है। वे ऐसे मंदिर के पुजारी है जिसकी फर्ष हरी हरी घास जिस की दीवारें दसों दिशाएं हैं जिसकी छत नीले आसमान की छतरी है या साधना स्थान सभी मनुष्य के लिए खुला है। कबीर की भक्ति में एकग्र मन, सतत साधना, मानसिक पूजा अर्चना, मानसिक जाप और सत्संगति को विशेष महत्व दिया गया है। इस प्रकार कबीर की भक्ति भावना बहुत ही अद्भुत है। कबीर नैतिक मूल्यों को लोगों के अंदर से बाहर निकालना चाहते थे कबीर ऐसे संत थे जो जनता के सच्चे पथ प्रदर्शक कहे जा सकते हैं। उन्होंने व्यक्ति के सुधार पर इसलिए बल दिया क्योंकि व्यक्तियों से ही समाज बनता है वे चाहते थे कि हिंदू और मुसलमान में जो विडंबना है उसे खत्म कर सके उन दोनों में भाईचारे की भावना उत्पन्न कर सके और वैसे साधु या ढोंगी और अंधविश्वासों को भी समाप्त करना चाहते थे कबीर को समाज सुधारक के रूप में आज भी याद किया जाता है।

5.8. बोध प्रश्न

1. कबीर की भक्ति भावना पर निबन्ध लिखिए।
2. कबीर की भाषा का वर्णन प्रस्तुत कीजिये।
3. कबीर के रहस्यवाद की भावना की विशेषता को स्पष्ट कीजिये।
4. कबीर दास की विद्रोही भावना कबीर की समाज सुधार की भावना वर्णन कीजिये।
5. कबीर में योग और भक्ति का सफल समन्वयी भावना के बारेमें लिखिए।

5.9. सहायक ग्रन्थ

1. संतों की सांस्कृतिक संसुती – डॉ. राज रतन पाण्डेय , उपकार प्रकाशन , दिल्ली।
2. कबीर मीमांसा – डॉ . रामचन्द्र तिवारी – लोक भारती प्रकाशन , इलाहाबाद।
3. कालजयी कबीर – संपादक – हर महेंद्र सिंह गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी , अमृतसर।
4. कबीर साहित्य की परख – परशुराम चतुर्वेदी , भारती भण्डार , इलाहाबाद।
5. कबीर – हजारी प्रसाद द्विवेदी राजकमल प्रकाशन , दिल्ली।

डॉ . एम . मंजुला

6. कबीर का साहित्य

(सामाजिक एवं दार्शनिक विचारधाराएँ)

6.0. उद्देश्य

कबीर के साहित्य और संस्कार को लेकर विभिन्न विद्वानों में मतभेद हैं। देवटेंड वेस्टाकास्ट ने कबीर की मूल रचनाओं की संख्या 82 बतायी है। मिश्रबंधुओं ने अपने ग्रंथ नवरत्न में कबीर की कृतियों की संख्या 75 बतायी हैं। फिर मिश्रबन्धु विनोद में वे 84 बताये हैं। डॉ. एफ. ई. के. 38, डॉ. रामकुमार वर्मा ने 85 तथा नागरी प्रचारिणी की खोज किया है। पाश्चात्य विद्वान विल्सन ने कबीर के आठ ग्रंथ की ओर संकेत किया है। वे ग्रंथ हैं- 1. आनन्द राम सागर, 2. वलख की रमैनी, 3. चौचरा, 4. हिंडोला, 5. झूलना, 6. कबीर पंथी, 7. कहरा और 8. शब्दावली आदि।

नागरी प्रचारिणी सभा पुरातन पाण्डुलिपियों के शोध और खोज की बहुत बड़ी संख्या है। सभा ने कबीर के 61 ग्रंथों की खोज की है। उनमें से कुछ रचनाएँ योग से कुछ साधु-संतों की महिमा से कुछ नाम महात्मा से सम्बद्ध है। अधिकांश कृतियाँ आध्यात्मिक ज्ञान से युक्त हैं। यह संख्या अविवादित नहीं है। जब हम कबीर की वाणी की पाठ योजना पर दृष्टिपात करते हैं, तब हमें इसमें प्रयुक्त तीन पाठ दिखायी पड़ते हैं – 1. पंजाबी पाठ, 2. राजस्थानी पाठ, 3. पूर्वी अवधी पाठ।

पंजाबी पाठ के लिए 'गुरु ग्रंथ साहब', राजस्थानी पाठ के लिए स्वयं पुरोहित हरि नारायण का संग्रह तथा पूर्वी अवधी पाठ के लिए 'बीजक' को देखा सकता हैं। क. साखी, ख. सबद, ग. रमैनी।

क. साखी

साखी साक्षी का तद्भव शब्द हैं। कबीर द्वारा विरचित दोहे इसी में आते है। कबीर की साखियाँ अनुभव से अनुप्राणित हैं। कहा भी गया हैं कि साखी आँखिन ज्ञान की। निस्संदेह कबीर ने अपनी साखियों में जीवन और प्रेम का व्यवहारिक अनुभव व्यक्त किया हैं। संकलित साखियां की संख्या 809 के आसपास मानी जाती हैं।

ख. सबद

सबद 'शब्द' का तद्भव है। ये गेम पद हैं जो अनेक शास्त्रीय रागों पर आधारित हैं। इन्हें पद भी कहा जाता हैं। कबीर ने अपने पदों में ब्रह्म, जीव, माया, मोक्ष, जगत आदि पर बड़ी गम्भीरता और दार्शनिरता से विचार किया है। एक उदाहरण द्रष्टक हैं जिसके माध्यम से कबीर के पदों की अन्तरात्मा में बड़ी सहजता से प्रवेश किया जा सकता है।

ग. रमैनी

कबीर वाड़मय में बताया गया हैं कि रमैनी शब्द का प्रयोग तीन अर्थों में हुआ हैं-

1. जिसमें संसार में जीवों के रमण का विवेचन हुआ हैं,
2. वेद शास्त्र के विचारों में रमण कराने वाली,
3. एक छन्द विशेष जिसके प्रत्येक चाप में सोलह मात्राएँ होती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि कबीर के साहित्य पर सत्यप्राय कुछ नहीं किया जा सकता है। रचनाओं की संख्या और रचनाओं के पाठ को लेकर पर्याप्त मतभेद है। किसी एक संग्रह को प्रामाणिक घोषित कर देना उचित नहीं प्रतीत होता हैं। फिर भी कबीर साहित्य अपनी सीमाओं वे बावजूद मानवता का, आत्मशुध्दि का और आत्म विस्तार का विस्तृत संदेश हमें देता हैं।

रूप रेखा

6.1. प्रस्तावना

6.2. सामाजिक विचारधारा

6.2.1.जाति व्यवस्था का निषेध

6.2.2.सामाजिक व्यवस्था और विश्वास के प्रति दृष्टिकोण

6.2.3. नारी विषयक चिन्तन

6.2.4. सामाजिक नैतिकता की प्रतिष्ठा

6.3. दार्शनिक विचारधारा

6.4. सारांश

6.5. बोध प्रश्न

6.6. सहायक ग्रंथ

6.1. प्रस्तावना

साहित्य और समाज का मानव जीवन के साथ गहन सम्बन्ध है क्योंकि मानव के सोच-विचार, क्रियाकलाप उसकी चिन्तनशीलता आदि सभी समाज से जुड़ी होती है और समाज की सभी घटनाओं के साहित्यकार अपने साहित्य के माध्यम से व्यक्त करता है। साहित्यकार की कोई भी घटना अपनी घटना नहीं होती हैं, अपितु उस घटना का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में समाज से ही सम्बन्ध होता है। समाज से अलग साहित्यकार का अस्तित्व अन्धकारमय होगा। इसलिए साहित्यकार जीवन के प्रत्येक कदम पर समाज से प्रभावित होता चलता है। इस पाठ में हम कबीर के सामाजिक विचार धारा और दार्शनिक विचारधाराओं के बारे में विस्तार रूप से चर्चा करेंगे।

6.2. सामाजिक विचारधारा

सन्त कबीरदास का काव्य भी समाज से निरपेक्ष नहीं है, अपितु उनकी कविता समाज सापेक्ष है। समाज में हो रहे विभिन्न परिवर्तनों ने उनके साहित्य को भी प्रभावित किया है। सन्त कबीर ने समाज की बुराइयों को अपनी आँखों से ही नहीं देखा था, अपितु सहन भी किया था। उस युग का सामाजिक वातावारण दूषित था। सम्पूर्ण समाज विभिन्न वर्गो में विभक्त था तथा लगभग सभी वर्गों के लोगों का नैतिक दृष्टि से पतन हो चुका था। समाज में सभ्य कहा जाने वाला वर्ग निरन्तर स्वार्थी होता जा रहा था। सभी काजी, मौलवी एवं पण्डित समाज को विभिन्न भ्रमों में डालकर लूट

रहे थे। नारी जो समाज में उच्च स्थान की अधिकारिणी रही है, वह केवल काम वासना और भोग की वस्तु बन गई थी। जिससे समाज मे जहाँ एक ओर पर्दा-प्रथा, अनमेल विवाह, बहु-विवाह जैसी बुराईयाँ फैल रही थी वहीं दूसरी तरफ चोरी, बेइमानी, झूठ धोखा और हिंसात्मक प्रव तियाँ भी जोर पकड़ रही थी।

सन्त कवि कबीर दास सामाजिक बुराईयों को युगद्रष्टा की परखी नजर से निहार रहे थे। उनके सामने व्यक्ति का पतन हो रहा था। धार्मिक कट्टरता के कारण हिन्दू धर्म और मुसलमानों में परस्पर वैमनस्य की भावना दृढ़ होती जा रही थी। हिन्दुओं को जहाँ एक ओर अपने धर्म में आस्था थी वहीं मुसलमानों को मुस्लिम धर्म मे पूर्ण विश्वास और श्रद्दा थी। वे दोनों अपने-अपने धर्म का प्रचार-प्रसार करने के उद्देश्य हेतु अनेकों बुराइयों से लिप्त हो गए थे। साधारण व्यक्ति अपने चारों ओर के इस अन्धकारमय वातावरण से दुखी एवं पीडित था, जिससे वह त्राहि-जाहि कर अठा। ऐसी भंयकर समाज विरूद्ध स्थिति को देखकर प्रबुद्धचेता एवं समाज सुधारक कवि कबीरदास जी निश्चित होकर नहीं बैठ सकते थे। उनका मन इन सभी सामाजिक विषमताओं से आहत हो उठा। जिसके विरोध में उन्होंने सामाजिक सुधार का नारा बुलन्द किया। उन्होंने समाज में व्याप्त अनेक प्रकार के आचरिक और मानसिक विकारों को निर्मूल करके आर्दश समाज और आर्दश मानव की संकल्पना की। अपनी इसी कामना की पूर्ति के लिए उन्होंने सामाजिक विसंगतियों पर बड़े तीव्र और तीखे प्रहार किए। वस्तुतः सन्त कबीर की सामाजिक दृष्टि को निम्नशिर्षकों के अर्न्तगत विभाजित किया जा सकता हैं।

6.2.1.जाति व्यवस्था का निषेध

सन्त कबीर दास जी की भावना मूलतः विस कति भाव की थी, परन्तु उन्होंने सामाजिक जीवन से अलग होकर साधना करने पर बल नहीं दिया, बल्कि इसकी अपेक्षा उन्होंनें लोक जीवन में ही रहकर वैराग्य की साधना को अधिक महत्वपूर्ण माना है। इसी भावना के कारण सन्त कबीर ने वैदिक काल से चली आ रही वर्ण-व्यवस्था में जातियों उपजातियों को सकारात्मक या नकारात्मक रूप से रेखांकित किया है। इनके युग में जाति व्यवस्था विकृत रूप से फैल चुकी थी। समाज जातियों तथा उपजातियों में विभक्त हो चुका था। चतुर्वर्ण और आश्रम व्यवस्था विनष्ट सी हो गई थी। लोग अपने विहित मार्ग से विलग हो गए थे-

पण्डित भूले पठि ग्रंथ वेदा, आप न पावै नांनां भेवा।

संध्या तरपन अरू षट करमां, लागि रहे इनके आशरमां।

गायत्री जुग चारि पढाई, पूछौ जाइ कुमति किनि पाई।

सब में राम रहे ल्याँ सींचा, इन थै ओर कहौ को नीचा।

अति गुरू गरब करे अधिकाई, अधिकै गरब न होई भलाई।

कहकर पण्डितों की अधोगति का उल्लेख किया है।

कबीर दास जी छुआछूत और जाति व्यवस्था को समाज में भेदभाव फैलाने वाले तत्व के रूप में स्वीकारते है। छुआछूत और जाति-पाति को फैलाने वाले पण्डितों और मौलवियों दोनों को उन्होंने फटकार लगाई है। इनकी दृष्टि में जन्म कोई व्यक्ति न तो ऊँचा होता है और न ही नीचा, अपितु जाति व्यवस्था की देन ईश्वर की न होकर समाज के अभिजात वर्ग द्वारा निर्मित की गई है। इसी सम्बन्ध में कबीर दास कहते हैं-

जो ताँहि करता बरन बिचारा, जनमत तीनि दण्ड अनुसारा।

जन्मत सूद मुए पुनि सूद्रा, धन तम जनेउ डारि जग मुद्रा।

जौ तुह तुरक तुरकिनीं जाया, पेटे काहे न सुनति न आया।

कारी पियरी दुध्हू गाई, ताकर दुध देहु बिलगाई।

सन्त कबीर ने हिन्दू और मुसलमानों द्वारा समाज में फैलाई जाति-व्यवस्था का ही विरोध नहीं किया है अपितु समाज में व्याप्त अनेक धर्मो - शेष, शाक्त और वैष्णव के भेद को भी रेखांकित किया हैं। उन्होंनें शाक्त से भला सुअर को माना है जो गाव की सफाई रखता है। शाक्त की संगति को काले मटके के समान मानकर त्याज्य माना हैं -

साषत संगु न कीजिए, दूराहि जइसे भागु।

बासन कारो परसिये, तऊ कछु लागे वागु।।

अतः स्पष्ट है कि सन्त कबीरदास जी ने समाज निर्मित जाति को नकारते हुए ईश्वरीय जाति को स्वीकार किया है। इनकी साधना का प्रधान लक्ष्य था कि मनुष्य इन जाति बन्धनों से छुटकारा पाकर ईश्वरत्व को स्वीकार करे और समाज में फैली विभिन्न जातियों को नकारकर के प्रेम का मार्ग अपनाएं एवं एक दूसरे के सहयोग से जीवन यापन करें।

6.2.2. सामाजिक व्यवस्था और विश्वास के प्रति दृष्टिकोण

प्रत्येक समाज की अपनी संस्कृति होती हैं, जो अपने ही रीतियों एवं विश्वासों पर आधरित होती है। लोकजीवन में लोक विश्वासों और लोक मान्यताओं की विशेष महत्व है। जिस जाति का सांस्कृतिक आधार जितना पुराना होगा, उसमे प्रचलित कुकर्मों के लिए नरक की प्राप्ति होती है। संसार में वे मनुष्य ही इस नरक से मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं, जो ईश्वर की अराधना करते है, उसके नाम का स्मरण करते हैं-

कहै कबीर दोउ गये नरक महें,

जिन हरदम राम न जाना।।

- **मूर्तिपूजा**

सन्त कबीर दास ने अपने युग में व्याप्त मूर्तिपूजा का विरोध किया हैं, क्योंकि ईश्वर की प्राप्ति मन से की जाती हैं। न कि मूर्तियों की पूजा करने से। मूर्तियों पर उपहास करते हुए कबीर ने कहा हैं - पाथर पूजे हरि मिलै, तौ मैं पुगुँ पहार। 'उन्होंने उन लोगों का भी विरोध किया है जो मूर्ति पूजा में ही अपना ध्यान रमाये बैठे रहते है और सत्कर्म से मुहँ मोड़ चुकें है।

पाण केरा पूतला, करि पुर्जे करतार।

हि भरोसे जे रहे, ते बूड़े काली धार।।

सन्त कबीर ने हिन्दुओं को ही फटकार नहीं लगाई है,

अपितु मुसलमानो की भी भर्त्सना की है।

कांकर- पाथर जोरि कै, मस्जिद लई चुनाय।

ताँ चढ़ि मुल्ला बाँग हैं, बहिरा भया खुदाय।।

- **अन्धविश्वास**

भारतीय समाज में सामान्यतः लोगों की मान्यता रही है कि गेरुए वस्त्र पहन कर, गले में माला धारण करके, तीर्थ स्थानों पर स्नान करके, जप-तप से ईश्वर को प्राप्त किया जाता है, परन्तु सन्त कबीर दास ने गेरुए वस्त्र माला तीर्थ स्थान तिलक, जप-तप आदि को मिथ्या माना है। उन्होंने वस्त्रों के सन्दर्भ में कहा है कि -

मन न रंगाये, रंगायें जोगी कपड़ा।

आसन मारि मन्दिर में बैठे,

नाम छाँड़ि पूजन लागे पत्थर।

कनवा फडाय जोगी जटवा बढोले,

ददिया बढाय बनि नै लै बकरा।

- **माला के सम्बन्ध में**

माला तो कर में फिरे, जीभ फिर मुख माहि।

मनुवाँ तो चहुँ दिसी फिरें, सो तो सुमरन नाँहि।।

- **तीर्थ स्थान के सम्बन्ध में**

जल के मंजनि जे गति होई, नित-नित मॅडुक नावाहि।

जैसे मँडुक तैसे ओइ नर, फिर-फिर जोनी आवहि।।

- **जप-तप के सम्बन्ध में**

जप तप दीस थोथरा, तीरथ ब्रज बेसास।

सूर्वे संबल सेविया, याँ जग चल्या निरास।

इस प्रकार हिन्दू समाज के जिस जिस क्षेत्र मे आडम्बर एवं अन्धविश्वास था, कबीर ने उनका विरोध किया है।

6.2.3. नारी विषयक चिन्तन

सन्त कबीर की कविताओं, नारी विषयक चिन्तन का सर्वथा अभाव दिखाई पड़ता हैं, क्योंकि उनकी कविताओं का लक्ष्य ईश्वर महिमा का गायन करना था न कि नारी विषयक चिन्तन प्रस्तुत करना। फिर भी उनकी कविताओं में नारी के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। सन्त कबीर ने नारी के दो रूपों की अवतारणा की हैं एक तो कामिनी रूप की और दूसरे सती रूप की।

नारी के कामिनी रूप में कबीर दास ने नारी के निन्दनीय रूप को चित्रित किया है, क्योंकि उनकी दृष्टि में नारी नरक का द्वार है और ईश्वर प्राप्ति में बाधक भी। नारी के संसर्ग से साधक को ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

नारी की झांई पड़त, अन्धा होत भुजंग।

कबिरा तिनकी मौन गति, जो नित नारी के संग।।

कह कर नारी के साहचर्ष की आलोचना की है और साधुओं को सचेत करते हुए कहा है।

जोगिया खेलियों बचाय के नारि मैंन चलें बान।

सिंगी की भिंगी करी डारि, गोरख के लिपटान।।

कामदेव महादेव सतावै, कहा कहा करौ बखान।

आसन छोड़ मच्छन्दर भागे, जल में मीन समाना।।

इस कामिनी नारी की शक्ति के सामने बड़े-बड़े शक्तिशाली व्यक्तित्व वाले श्रृंगी ऋषि, गोरखनाथ, महादेव, मत्स्येन्द्रनाथ सरीखे देवर्षि भी नहीं बच पाये है।

सन्त कबीर दास जहाँ एक ओर कामिनी नारी की कठोरता के साथ भर्त्सना करते हैं, उसे त्याज्य मानते हैं, उसके साहचर्य से दूरी चाहते हैं, वहीं दूसरी तरफ पतिव्रता नारी को वे बड़ा मान सम्मान प्रदान कर गौरवान्वित करते है। पतिव्रता नारी न केवल अपने पति के ही प्रति अपनी भावनाओं को उद्वेलित करती है। अपितु वह माता बनकर समाज का निर्माण भी करती है। वह अपने सहकर्मों से अपने पुत्र समाज को प्रेरणा प्रदान करती हैं। इतना ही नही, वह नाना गुणों से अन्वित होती है।

- **कबीर का यह पद दृष्टवय है**

हरि जननी मैं बालक तेरा, काहे न औगुण बकसहु मेरा।

सुत अपराध करे दिन केते, काहे न औगुण बकसहु मेरा।।

कर गहि केस करे जो घाता, तऊ न हेतु उतारे माता।

कहै कबीर एक बुधि बिचारी, बालक दुखी दुखी महतारी।

इसलिए नारी के बाह्य रूप की अपेक्षा कबीर ने उसके आन्तरिक पक्ष निर्मलता, कोमलता, एवं शुद्धता की ओर उन्होंने ध्यान दिया है। बाह्य गुणों के स्थान पर आन्तरिक गुणों का विशिष्ट महत्व स्वीकार किया है। इसलिए सन्त कबीर दास जी कहते हैं-

6.2.4. सामाजिक नैतिकता की प्रतिष्ठा

सन्त कबीरदास न जहाँ समाज में व्याप्त पाखण्डों और अन्धविश्वासों का खण्डन किया हैं वहीं समाज सुधार के लिए उन्होंने नैतिक आदर्शो का भी प्रतिपादन किया है। उन्होंने मानव जीवन को परिष्कार हेतू काम, क्रोध, लोभ, मोह और अंहकार आदि को निन्दनी मानकर उसे त्यागने का सन्देश दिया है, वहीं सत्य, दया, प्रेम परोपकार, संत्संगति एवं

अहिंसा आदि का भी महत्व प्रतिपादित किया हो। इन नैतिक आदर्शो को ग्रहण करके ही कोई व्यक्ति सच्चे अर्थो में सामाजिक प्राणी कहला सकता है। उन्होंने नीति के निम्न तत्त्वों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया हैं।

सन्त कवि कबीरदास ने सत्य से बड़ा कोई धर्म ही नहीं माना है। सत्य के आधार पर ही साधारण मनुष्य भी उच्चता को ग्रहण कर सकता है। इसके विपरीत यदि कोई व्यक्ति झूठ का सहारा लेता है तो उसका शरीर अनेक बुराईयों से युक्त हो जाता है। अतः जो मनुष्य झूठ बोलता है वह पापी है और पापी व्यक्ति का संसार में कोई हितैषी नहीं होता है।

सांच बराबर तप नहीं, झूठ बरोबर पाप।

जाकै ह वय सांच हैं, ताके हदय आप।।

स्पष्ट है कि ईश्वर भी उसी व्यक्ति की सहायता करता है जो सत्यता के मार्ग पर चलता है। सन्त कबीर का विश्वास है कि जो मनुष्य झूठ बोलता है, वह लाख प्रयत्न करने पर भी अपना भला नहीं कर सकता है। अतः मनुष्य सत्यता जैसे गुण को ग्रहण करने पर भी अपना भला नही कर सकता। उसके सुख, समृद्धि का आधार तो केवल मात्र सत्यता हैं। अतः मनुष्य सत्यता जैसे गुण को ग्रहण करना चाहिए तभी उसके जीवन की सार्थकता सिद्ध हो सकेगी।

सबही ते सांचा भला, जो दिल साँचा होय।

सांचा बिन सुख नाहीं है, कोटी करे जो कोय।।

कबीर दास ने दया को सार तत्व के रूप में स्वीकार किया है। प्राणी का धर्म हैं कि वह अपने अधीन प्राणियों पर दया करे, इसी से उसका जीवन उपलब्धिमय हो सकेगा। इसके विपीरत जिस मानव में दया धर्म नहीं है, उसका जीवन नीरस है। सन्त कबीर का मत है कि जो दूसरों के दुख को देखकर उस दुख को दुखी होता है और उन पर अपनी दया दृष्टि करता है, वह इस संसार में पीर तुल्य है।

कबिरा सोई पीर है, जो जाने पर पीर।

जो पर पीर न जानई, सो काफिर बेपीर।।

सन्त कबीरदास ने प्रेम का जीवन मे विशेष महत्व स्वीकार किया है। इनका पूरा काव्य प्रेम के ओत प्रोत है। उन्होंने मनुष्य के प्रेम के साथ जीवन जीने का सन्देश दिया है तथा उन लोगों के जीवन को निष्काम मानते है जो प्रेम नही करते हैं।

जिहिं घटि प्रीति न प्रेम रस, पुननि रसना नहिं राम।

ते नर इस संसार में उपजि पये बैकाम।।

कबीर ने समाज में व्याप्त अनेक धर्म और धर्म के आधार पर बटें हुए लोगों तथा उनकी जातियों पर भी व्यंग्य किया है। उनकी दृष्टि में जन्म से कोई व्यक्ति ज्ञानस्वान नहीं कहला सकता हैं, बल्कि वही व्यक्ति ज्ञानी है। जिसने प्रेम के महत्व को स्वीकार कर लिया है। इसीलिए कबीर जी कहते है-

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पण्डित भया न कोय।

ढ़ाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पण्डित होय।।

मनुष्य जीवन पर संगति का विशिष्ट प्रभाव स्वीकारते हुए उन्होने कुसंगति का त्यागने और संत्संगति को ग्रहण करने के लिए कहा है। क्योंकि कुसंगति मनुष्य से सदैव बुरे कर्म करवाती है। वहीं दूसरी तरफ कुसंगति मनुष्य से सदैव बुरे कर्म करवाती हैं, वहीं दूसरी तरफ संत्सगति से मनुष्य जीवन का परिष्कार होता है। इसलिए मनुष्य को सदैव सज्जन पुरुषों के साथ रहना चाहिए क्योंकि ये मनुष्य की बुरी प्रवृत्तियों को दूर करके सद्गुणों का विकसित करते है।

कबीर संगति साध की बेंगि करीजै जाई ।।

दुरमति दूरी गवाइंसी, देसी सुमति बताइ ।।

इस प्रकार से सन्त कबीर दास ने नैतिक दृष्टि से लोगों में चेतना जागत की हैं तथा विश्वास व्यक्त किया है कि सद्वतियों से ही मनुष्य अपने ही आचारण में सुधार कर सकता है। अतः मनुष्य को पाशविक वृत्तियों को छोड़कर सात्विक वृत्तियों को ग्रहण करना चाहिए। इस भावना को ग्रहण करने से मनुष्य तन, मन, आचार, विचार, कथनी और करनी से निर्दोष और निर्मल हो जाता है, तथा उसका चरित्र आदरणीय एवम अनुकरणीय हो जाता है।

कबीर की सामाजिक विचारधारा पर विचार करने के बाद कहा जा सकता है कि कबीर सच्चे समाज सुधारक उनकी सामाजिक चेतना बड़ी स्वच्छ और सर्मथ थी। इसलिए उन्होंने अपनी बाणियों से समाज के लिए निम्नलिखित कार्य किया।

1. बाहयाचार और बाह्याडम्बर का निषेध।

2. निगुर्ण निराकार ब्रह्म की स्थापना।

3. सत्याचरण की प्रतिष्ठा।

4. सामाजिक विषमताओं और व्यवस्थाओं का खण्डन

5. सहज और मानव हितकारी व्यवस्थाओं को खण्डन।

6. सामाजिक समता का संक्षेप

7. धार्मिक सौहार्द स्थापन

इस सारी स्थितियों को कबीर ने बड़ी तार्किकता से विवेचित किया है। निष्कर्ष रूप मे हम गोविन्द त्रिगुणायत के शब्दो मे कह सकते हैं -

इस प्रकार कबीर की सद्समाज प्रियता उनकी विचारधारा में पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित दिखलाई पड़ती है। उन्होंने परम्परागत अन्धविश्वासों, प्रथाओं और संस्थाओं का मूलोच्छेदन करके धर्म दर्शन और समाज सभी क्षेत्रों में बुद्धिवादी साम्यवाद प्रतिष्ठित किया था। अपने लक्ष्य की पुर्ति उन्होंने इसमें कोई भी संन्देह नहीं, बड़ी कटुता के साथ की है। यह कटुता कहीं कही अपने अतिरूप में दिखलाई पड़ती है। इनको देखकर ऐसा मालूम होता है कि कबीर किसी प्रकार की पक्षपात पूर्ण दुर्भावनाओं से प्रेरित थे, किन्तु हमारी समझ में इसकी कट आलोचनाओं के मूल में उनकी अखण्ड प्रकृति बहुत थी। पक्षपात पूर्णता बहुत कम। वास्तव में उनका साम्यवाद भारत के लिए एक मौलिक देन है। इसी के आधार पर चलकर आज भी भारत का उद्धार हो सकता है।

6.3. दार्शनिक विचारधारा

कबीर अपने समय के क्रांतिकारी युगद्रष्टा थे । यद्यपि इन्होंने कोई दार्शनिक मत प्रस्तुत नहीं किया। तथापि ईश्वरीय शक्ति में प्रेम की भाव-व्यंजना करते हुए उन्होंने ब्रह्म, जीवन जगत तथा माया आदि के बारे में जो विचार व्यक्त किये इन्हीं के आधार पर उनके दार्शनिक विचारों का मूल्यांकन किया जा सकता है । वे प्रधानतः एक भक्त थे, लेकिन भक्ति के अधिकार को वे सामान्य जन तक ले गए । उन्होंने ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप को अपनाते हुए उसकी साधना में बाह्याचार और कर्मकांड की सर्वथा उपेक्षा की । कबीर जिस साधना पद्धति को विकसित कर रहे थे, वह आम लोगों के जीवन और पहुँच के अनुकूल थी। अपनी साधना पद्धति के विकास के क्रम में कबीर ने अपने समय के सभी धार्मिक संप्रदायों-हिंदु, मुसलमान, सिद्ध-नाथ, वैष्णव, शक्ति आदि की मान्यताओं का परीक्षण किया तथा संकीर्णताओं और रूढ़ियों पर प्रहार किया । इसी क्रम में उन्होंने जो विचार व्यक्त किए हैं उसी से उनकी दार्शनिक मान्यताएँ उभरकर सामने आई ।

कबीर के दार्शनिक दृष्टिकोण का आधार उनके काव्य के मुख्य विषय मन, आत्मा, माया मुक्ति जगत इत्यादि में दृष्टिगत होता है। जिसका विवेचन निम्नलिखित है -

1. ब्रह्म संबंधी दृष्टिकोण

कबीर उच्च कोटि के महात्मा एवं भक्त थे । उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य था, पर ब्रह्म का अनवेषण करके उससे साक्षात्कार करना यद्यपि कबीरदास को विभिन्न धर्मग्रथों का ज्ञान था लेकिन ब्रह्म के विषय में उन्होंने जो विचार व्यक्त किए है वे उनकी स्वानुभूति का परिणाम हैं ।

कबीर का ब्रह्म संबंधी ज्ञान उपनिषदों के अद्वैतवाद से प्रभावित है ।

कबीर का विचार था कि बह्म के मूल तत्व को समझना अत्यधिक महत्वपूर्ण है । कबीर जी घोषणा करते हैं कि उस परमतत्त्व को न कोई देख सकता है, न प्राप्त कर सकता है, वह न खाता है, न पीता है, न जीता है, न मरता है । उसका कोई रूप रंग अथवा वेशभूशा नहीं है । वह असीम अनन्त, अनिर्वचनीय, अरूप तथा सर्वव्यापी है । एक स्थल पर वे कहते हैं -

“पानी ही ते हिम भया, हिम है गया बिलाय।

कबीर जो था सो भया, अब कुछ कहा ना जाय ।।”

कबीर का ब्रह्म अपार महिमा शाली है। उसकी शक्ति, प्रकाश तथा रूप स्वरूप तक कोई नहीं पहुँच सकता। प्रेमी- प्रेमिका का रूपक प्रस्तुत करते हुए वे कहते हैं -

“बालम आउ हमारे गेह रे।

तुम बिन दुखिया देह रे।

सब कोई कहैं तुम्हारी नारी, मोको यह संदेहरे।

एकमेक हयै सेज न सौवे तब लागि कैसा स्नेह रे।

अन्न न भावै नींद न आवै, जिह बन धरै न धीररे।

ज्यों काम कौ कामिनी प्यासी, ज्यों प्यासे कौ नीर रे ।

इस प्रकार कबीरदास ने निर्गुण निराकर और निर्विकार ब्रह्म की भक्ति पर ही बल दिया हैं परन्तु कहीं-कहीं वे सगुण भावनाओं का भी आश्रय ले लेते है ।

2. माया संबंधी दृष्टिकोण

कबीरदास ने अद्वैतवादियों से प्रभावित होकर माया को मिथ्या माना है । उन्होंने कहा की माया संसार में अज्ञान का अंधकार फैलाती है । इसलिए इसे उन्होंने पापिनी, विश्वासघातिनी, मोहिनी, सांपिणी, ठगिणी, डाकिनी आदि कहा है । आत्मा संसार में आकर इसी के जाल में फँसती है । सृष्टि के सारे संबंध माया- जन्य हैं, समस्त सृष्टि मायामय है -

"कबीर माया पापणी फंद लै बैठी हाटि,

सब जग तो फंधे पाड़या फासियां गया कबीरा काटि ।।"

कनक और कामिनी माया के प्रधान प्रतीक हैं । कबीरदास जी ने माया को परिवर्तनशील माना है । वह उत्पन्न तथा नष्ट होती रहती है । इसी भ्रम का शिकार होने के कारण जीव ईश्वर से विमुख हो जाता है । ईश्वर को प्राप्त करने के लिए इस माया रूपी ममता को त्यागना पड़ता है । इसी भाव को दृष्टिगत कर कबीरदास जी कहते हैं -

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहिं ।

कबीरदास जी भक्तों को माया से बचने का उपाय बताते है -

"औंधा घड़ा न जल में डूबे सूधा सूभर भरिया ।

जाकौ यह जग घिन करि चालै, ना प्रसादि निस्तरिया ।।"

3. जगत संबंधी दृष्टिकोण

कबीर दास ने अद्वैतवादियों के समान ब्रह्म को सत्य तथा जगत को मिथ्या माना है । वे बार संसार की सत्ता को नश्वर कहते हैं । कबीर दास जी संसार को बाजीगर का खेल कहते हैं । उनके अनुसार यह भ्रामक है । सृष्टि के बारे में कबीर दास के विचार वेदांत तथा सांख्य दर्शनों से प्रभावित है । लेकिन एकाध स्थल पर वे सूफी तथा इस्लाम की धारा से भी प्रभावित दिखाई पड़ते है ।

वे संसार के मिथ्या भाव को प्रकट करने के लिए उसे सेम्बल का फूल, आकाश निलिमा, धुआँ – धरोहर आदि कहते है । वे स्पष्ट घोषणा करते हैं -

"यहूँ ऐसा संसार है, ज्यों सेम्बर का फुल

दिन दस के व्यवहार में झूठे रंग न भूल ।।"

4. जीव तत्व संबंधी दृष्टिकोण

कबीरदास जी परमतत्व को ही सर्वोपरि मानते हैं । कभी-कभी लगता है कि कबीर का ब्रह्म तथा आत्मा एक ही है । कुम्भ के रूपक द्वारा उन्होंने सिद्ध किया है कि आत्मा शरीर बद्ध होने के कारण ब्रह्म से भिन्न प्रतीत होने लगती है, पर यह अलग नहीं है । कबीरदास जी आत्मा को कभी अमर मानते हैं तो कभी ब्रह्म के समान मानते हैं, क्योंकि ब्रह्म

आनन्द स्वरूप है, अतः आत्मा भी आनन्द स्वरूप है। वे तो आत्मा-परमात्मा के अंश अंशी संबंध को स्वीकार करते हैं ।

6.4. सारांश

निर्गुण धारा के संत कवि कबीर मुख्य रूप से एक भक्त कवि और साधक थे। उन्होंने ईश्वर और जीव के अद्वैत को स्वीकार किया है। माया की भूमिका को स्वीकार करने के साथ ही कबीर इस जगत की निस्सारता पर भी जोर देते हैं । उनका मानना है कि जीवन क्षण भंगुर है। वे परमात्मा से संबंध को ही एकमात्र सत्य मानते हैं। योग उनके लिए चित्त शुद्धि का साधन है। योग के साथ परमात्मा की प्राप्ति के लिए ज्ञान और प्रेम आवश्यक है। ज्ञान की प्राप्ति के लिए गुरु कृपया आवश्यक है। गुरु ही साधक को सही मार्ग पर अग्रसर करता है। इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कबीर का दार्शनिक दृष्टिकोण वेदों, उपनिषदों आदि से प्रभावित है, जो विशुद्ध भारतीय है। इस पर किसी विदेशी विचारधारा का प्रभाव नहीं है। वे आत्मा-परमात्मा को एक मानते हुए अंश - अंशी का संबंध स्वीकार करते हैं।

6.5. बोध प्रश्न

1. कबीर का साहित्यिक पृष्ठभूमि के बारे में लिखिए।

2. कबीर के सामाजिक एवं दार्शनिक विचारधाराओं के बारे में विस्तार रूप से बताइए।

6.6. सहायक ग्रंथ

1. कबीर- हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

2. कबीर ग्रंथावली- संपादक- श्यामसुंदर दास, लोक-भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

3. भारतीय चिंतन परंपरा- डॉ. के. दामोदरन।

4. कबीर वाणी- डॉ. पारस नाथ तिवारी।

5. कबीर एक नयी दृष्टि- रघुवंशी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

6. विचार-विमर्श- चन्द्रबली पांडे, हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

डॉ. सूर्य कुमारी. पी.

7. कबीर का रहस्यवाद

7.0. उद्देश्य

इस इकाई में हम कबीर के रहस्यवाद की प्रवृत्तियों के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे। इस इकाई को आप पढ़ने के बाद कबीर का रहस्यवाद का अर्थ, कबीर की रचनाओं में रहस्यवाद को कैसे दर्शाया गया है, रहस्यवाद की अवस्थाएँ, रहस्यवाद के भेद और प्रवृत्तियों के बारे में जान पायेंगे।

रूपरेखा

7.1. प्रस्तावना

7.2. कबीर का रहस्यवाद

7.2.1. कबीर के रहस्यवाद की अवस्थाएँ

7.2.2. कबीर के रहस्यवाद के भेद-प्रभेद

7.2.3. कबीर के रहस्यवाद की प्रवृत्तियाँ

7.3. सारांश

7.4 बोध प्रश्न

7.5. सहायक ग्रंथ

7.1. प्रस्तावना

मानव में जब से ज्ञान वृद्धि नामक तत्व की स्थिति हुई तभी से उसकी चिन्तन प्रक्रिया में सृष्टि के उद्गम और अपने मूल के संबंध में जिज्ञासा रही है। उसने जब इस सृष्टि नियन्ता के स्वरूप को ज्ञान का आश्रय लेकर सुलझा ने का प्रयास किया तब यह दर्शन का विषय बन गया। किन्तु जब कवि इस बात को समझने का प्रयास कर अपने अनुभवों को वाणी की विशेष पद्धति में अभिव्यक्त किया तब इसे रहस्यवाद कहा गया।

संसार का लगभग प्रत्येक श्रेष्ठ कवि किसी न किसी अंश में रहस्यवादी होता है क्योंकि जन मानव की भावनाएँ कवि के द्वारा अभिव्यक्ति पाती हैं। विद्वानों ने रहस्यवाद की व्याख्या भिन्न-भिन्न प्रकार से की हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी एक जगह कहते है कि ज्ञान के क्षेत्र में जिसे अद्वैतवाद कहते हैं भावना के क्षेत्र में ही रहस्यवाद कहलाता है। रहस्यवाद शब्द काव्य की एक धारा विशेष को सूचित करता है। काव्य में आत्मा की संकल्पनात्मक मूल अनुभूति की मुख्य धारा रहस्यवाद है। वस्तुतः रहस्यवाद साहित्यकार की ईश्वर विषयक प्रेममय अनुभूतियों की ऐसी अभिव्यक्ति है जिसका निरूपण साधारण भाषा की क्षमता से परे है। अतः उस अभिव्यंजना को स्वभावतः ही प्रतीकात्मकता का आश्रय लेना पड़ता है। इस रहस्यवाद का निरूपण कबीरदास के रचनाओं में किस प्रकार दर्शाया गया है इसके बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।

7.2. कबीर का रहस्यवाद

कबीर का रहस्यवाद को समझ ने के लिए प्रसाद जी का एक उदाहरण-

हे अन्नत रमणीय! कौन तुम?

यह मैं कैसे रह सकता?

कैसे हो? क्यों हो? इसका तो

भार विचार न सह सकता

-प्रसाद

वस्तुतः कामायनी के उपर्युक्त छन्द में रहस्यवाद की लगभग समस्त मान्य अवधारणाएँ अन्तर्निगुढ़ित है। सामान्यतः रहस्यवाद के अर्थ एवं स्वरूप को आकारित करना अत्यन्त दुरूह एवं निगूढ़ कार्य है, फिर भी आचार्यो, विद्वानों ने उसे शब्दायित करने का प्रयास किया है। हिन्दी साहित्यान्तर्गत रहस्यवाद को एक विशुद्ध साहित्यिक धारा के रूप में मान्यता मिली है। यह शब्द 'रहस्य' और 'वाद' दो शब्दों से बना है। 'रहस्य' शब्द का तात्पर्य है गुप्त, निगूढ़ या छिपी बात तथा 'वाद' एक विशिष्ट धारा, प्रवृत्ति अथवा शैली की अभिव्यंजना करता है। इस प्रकार रहस्यवाद का व्युत्पतिलभ्य अर्थ हुआ वह काव्यधारा जिसका उत्स अज्ञात, गुप्त और निगूढ़ सत्ता का अनुभावन है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि परमेश्वर में ही ऐसी सत्ता हैं। रहस्यवाद की स्वरूपगत निगूढ़ता को ध्यान में रखते हुए विद्वानों ने रहस्यवाद की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ दी है। कतिपय प्रसिद्ध परिभाषाओं की प्रस्तुति इस प्रकार की जा सकती है।

स्पर्जन के अनुसार - "रहस्यवाद वास्तव में एक प्रकार की मनोदशा है, सिद्धान्त नहीं; एक प्रकार का आध्यात्मिक वातावरण है, कोई दर्शन-पद्धति नहीं।"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार "चिन्तन के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है भावना के क्षेत्र में वहीं रहस्यवाद है।"

डॉ. गोबिन्द त्रिगुणायत के अनुसार "संक्षेप में हम रहस्यवाद को ब्रह्म के आध्यात्मिक स्वरूप से आत्मा की भावात्मक ऐक्यानुभूति के इतिहास का प्रकाशन कह सकते हैं।"

उक्त परिभाषाओं की मीमांसा करने पर रहस्यवाद के स्वरूप के सन्दर्भ में निम्नलिखित तथ्य प्राप्त होते हैं -

1. रहस्यवाद काव्य की एक विशिष्ट धारा है।

2. रहस्यवाद अद्वैतवाद के हृदय से निकला है।

3. रहस्यवाद आत्मा-परमात्मा के तादात्मय की गाथा हैं, इसमें आत्मा-परमात्मा के प्रणय का प्रस्फुरण होता हैं।

4. आत्मा-परमात्मा के तादाम्य में प्रकृति अनुरागमयी बनकर मिलन के माध्यम का स्वरूप ग्रहण कर लेती है।

अंतः यह कहा जा सकता है कि उस अज्ञात परम सत्ता के प्रति जिज्ञासा प्राप्ति की उत्कट लालसा तथा तदनुरूप हो जाने की कामना का नाम रहस्यवाद है।

सन्तों की कविता में प्रर्याप्त मात्रामें रहस्य की भावना वर्तमान है। सन्त कबीर भी इसके अपवाद नहीं है। उनके काव्य में निहित रहस्यवादी चेतना का अध्ययन इस प्रकार किया जा सकता है ।

7.2.1. कबीर के रहस्यवाद की अवस्थाएँ

रहस्यवाद के चिन्तकों ने रहस्यवाद की कई स्थितियों मानी है । मिस अन्डरहिल ने रहस्यवाद की निम्नलिखित अवस्थाएं बतायी है-

1. जागृति की अवस्था।

2. परिष्करण की अवस्था।

3. अंशानुभूति की अवस्था।

4. विध्नावस्था।

5. मिलनावस्था।

इनके अतिरिक्त, विद्वानों ने रहस्यवाद की एक अवस्था और भी स्वीकार की है। इस प्रकार रहस्यवाद की छः अवस्थाएँ हो जाती हैं। कबीर के काव्य में रहस्यवाद की इन विविध दशाओं का सुन्दर निरूपण मिलता है। उसका वर्णन इस प्रकार हैं वे -

1.जागृति की अवस्था

रहस्यवाद के अन्तर्गत जागृति या जागरण की अवस्था उसे कहते हैं जिसमें आत्मा परमात्माविषयक चर्चा को सुनकर जग जाती है। जागरण सम्बन्धी यह कार्य कोई ज्ञानी गुरू ही करता है। उसकी प्रेरणा से साधक में ज्ञान का उन्मेष हो जाता है और वह इस मिथ्या संसार के प्रति विरागी बन जाता है। उसकी सारी चेतना ब्रह्म की ओर उन्मुख हो जाती है और परमसत्ता के लिए उसके मन में जिज्ञासा और लालसा की भावना भर उठती है । अन्तर्ज्ञान की उत्पति और जागरण की अवस्था के कारण कवि कबीर भी बड़े व्यग्र दिखाई देते हैं। वे जानना चाहते हैं कि जिस परमात्मा कान कोई वेष है, न रूप है, न रंग है, वह कैसा है? क्या है? मृत्यु के पश्चात प्राण कहाँ जाते हैं, मरा जीव किसमें समाजाता है ? आदि-आदि। कबीर का यह पद इस दृष्टि से द्रष्टव्य है कि -

सो कछू विचारहु पंडित लोई, जाकै रूप न रेष वरण नहीं कोई ।।

उपजै त्यंड प्रान कहाँ थैं आवे मूवा जीव जाई कहाँ समावै ।

इंद्री कहाँ करिहि विश्रामा, सो कल गया जो कहता रामा ।

पंचतत तहाँ सबद न स्वांद, अलख निरंजन विद्या न बांद ।

कहै कबीर मन मनहि समानों, तब आगम निगम झूठ करि जानों ।।

जागृति की अवस्था वह दशा है जो साधक को अपने मन्तव्य की प्राप्ति के लिए ऊर्जा प्रदान करती है।

2. परिष्करण की अवस्था

गुरू से ज्ञान प्राप्त करके साधक परमात्मा को प्राप्त करने के लिए, साक्षात्कार के लिए व्याकुल हो उठता है और जब वह उसका दर्शन प्राप्त नहीं कर पाता है तब साधना की तरफ उन्मुख हो जाता हैं। साधना की यही ईश्वरोन्मुखता परिष्करण कहलाती है। परिष्करण की इस प्राजल अवस्था को सन्त कगीर तो बडी गहराई से अनुभव करते हैं। कतिपय दोहे इस दृष्टि से विशेष संलक्ष्य है -

सतगुरू मार्य वाण भरि, धरि धरि सूधी मूठि।

ऑग उघाड़े लागिया, गई दवा सूं फूटि॥

सतगुरु लाई कमॉण करि, वाहण लागा तीर।

एक जुडी बाह्य प्रीत सूं, भीतरि रह्या सरीर॥

3. अंशानुभूति की अवस्था

अंशानुभूति की दशा ऐसी अवस्था है जिसमें साधक साध्य की सत्ता स्वरूप की अनुभूति करता है। इस अनुभव की क्रिया से साधक का हृदय भाव विभोर हो जाता है। इस भाव विभोरता का चरमोत्कर्ष पर पहुँचने में स्मरण नाम-जप आदि साधना (भक्ति) की पद्धतियाँ बड़ा योगदान देती है। कबीर ने इस भावना की बड़ी मार्मिक अभिव्यंजना की है -

मेरा मन सुमिरै राम हूँ मेरा मन रमहि आप।

अब मन रामहि हवै रह्या सीस नवॉऊ काहि॥

तथा

तू तू करता तू भया मुझसे रही न हूँ।

बारी फेरी बलि गई जित देखूं तित हूँ।।

4. विध्नावस्था

साधक और साध्य के मिलन में जो तत्व अवरोध बनते हैं, उन्हें विध्न कहा जाता है। भारतीय धर्म, साधना और साहित्य में इसे माया की संज्ञा दी जाती है। हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत इस माया का सविस्तार वर्णन सन्तों, भक्तों, कवियों ने किया है। सन्त कबीर ने माया को बहुत बड़ी 'ठगिनी' बताया है। वह माया बहुत मृदु-मधुर है। उसे छोड़ा नहीं जा सकता है। वह अज्ञानी मनुष्यों का भक्षण करती है-

मीठी मीठी माया तजी न जाई।

अग्यानी पुरूष को भोलि- भोलि खाई॥

तथा

कबीर माया पापणी, हरि सूं करे हराम।

मुखि कड़ियाली कुमति की, कहण न देई राम॥

5. मिलन और तादाम्यीकरण की अवस्था

रहस्यवाद की अन्तिम अवस्था मिलन और तादात्म्यीकरण की अवस्था मानी गयी है। सन्तों और कवियों ने इस अवस्था के बड़े ही उत्तेजक और हृदयस्पर्शी चित्र उकेरे है। कबीर आत्मा-परमात्मा के भावानमय लोक का मधुर रूप रूपायित करते हुए लिखते हैं-

दुलहनी गावहु मंगलाचार,

हम घरि आए हो राजा राम भरतार ॥ टेक ॥

तन रत करि मैं मन रत करिहू पंचतत बराती।

रामदेव मोरैं पाँमुनैं आये मैं जीवन मैं माती ॥

सरीर सरोवर बेदी करिहूँ, ब्रह्मा वेद उचार।

रामदेव सँगि भाँवरी लैहूँ, धंनि धंनि भाग हमार ॥

सुर तेतीसूं कौतिग आये, मुनिवर सहस अठयासी।

कहै कबीर हॉम ब्याहि चले हैं, पुरिष एक अविनासी।।

7.2.2. कबीर के रहस्यवाद के भेद प्रभेद

भारतीय एवं पश्चिमी विचारकों ने रहस्यवाद के भेद प्रभेद पर अलग-अलग दृष्टिकोण से विचार किया है। अध्ययन की सुविधा के लिए इसको निम्नलिखित भेदों में बाँट सकते हैं जो रहस्यवाद के अन्यान्य भेदोपभेदों को अपने अन्तस्त में निहित किए हुए है -

1. भावात्मक रहस्यवाद।

2. साध्नात्मक रहस्यवाद।

3. प्राकतिक रहस्यवाद।

4. अभिव्यक्तिमूलक रहस्यवाद।

1. भावनात्मक रहस्यवाद

जब जीवात्मा और परमात्मा की सजल रागिक रंगभयता को साहित्य में शब्दाकार प्रदान किया जाता है तब भावात्मक रहस्यवाद की व्यंजना होती है। रहस्यवादी कवियों ने इस भावना से आन्दोलित होकर उस निर्गुण निराकार परमतत्व को कही पति रूप में माना है, तो कहीं प्रियतमा-पत्नी के रूप में अंगीकार किया है।

कबीरदास ने दामपत्यमूलक रहस्यवाद की बड़ी मार्मिक वर्णना की है। वस्तुतः दामपत्त्य भाव ही रहस्यवाद का मूलाधार है । कबीर का अपने ब्रह्म के साथ सम्बन्ध दामपत्य परक है । प्रेमगत ऐसी ही दिव्य- पवित्र अनिर्वचनीयता को स्वरूपित करते हुए कबीर लिखते हैं कि -

अब तोहि जान न देहुं राम पियारे, ज्यूं भावै त्थूं होहु हमारे।। टेक ॥

बहुत दिनन के विछुरे हरि पाये, भाग बड़े घर बैठे आये ।।

चरननि लागि करौं वरियायी, प्रेम प्रीति राखैं उरझाई ।

इत मन मंदिर रही नित चोपै, कहै कबीर करहु मति घोषैं ।।

2. साधनात्मक रहस्यवाद

साधनात्मक रहस्यवाद को यौगिक रहस्यवाद के भी नाम से जाना जाता है । साधनात्मक तथ्यों का वर्णन जब भाव और काव्य के धरातल पर किया जाता है, तब वह साधनात्मक रहस्यवाद की संज्ञा अधिगत करता है । सिद्धों, नाथों, सन्तों तथा छायावदी कवियों ने साधनात्मक रहस्यवाद से सम्बन्धित पुष्कल छन्दों को रचा है । सन्त कबीर ने साधनात्मक शब्दावली के सहारे वैराग्य की स्थितियों दशाओं को इस प्रकार शब्द बद्ध किया है -

जग में सोइ वैराग कहावै

आसन मारि गगन में बैठे, दुर्मति दूर बहावै ।।

भूख प्यास और निद्रा साधे, जियतहि तनहि जरावै ।

भौसागर के भरम मिटावै, चौरासी जिति आवै ।

कहै कबीर सुना भई साधो, भाव भक्ति मन लावै । ।

3. प्राकृतिक रहस्यवाद

कबीर की कविता में प्राकृतिक रहस्यवाद के अनेक रूप दिखाई पड़ते है । कबीर की रहस्यभावना की व्यंजना में प्रकृति ने बड़ी सहायता की है । इस दृष्टि से यह जीव और ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन किया गया है ।

जल में कुम्भ कुम्भ में जल है,

बाहर भीतर पानी ।

फूटा कुम्भ जल जलहि समाना,

यह तत कथहु गियानी ।

आदै गगनां अंतै गगना,

मधे गगनों माई ।

कहै कबीर करम किस लागे,

झूठी संक उपाई ।।

4. अभिव्यक्तिमूलक रहस्यवाद

रहस्यवादी कवियों ने सहृदय समाज को चमत्कृत करने के लिए अभिव्यक्तिमूलक रहस्यवाद को माध्यम बनाया है । रहस्यवाद की यह कोटि सन्तों में बड़ी व्यापकता के साथ दिखायी पड़ती है । हिन्दी साहित्य में, विशेषतः रहस्यवादी कवियों के काव्य में अभिव्यक्ति मूलक रहस्यवाद का व्यवहार निम्न रूपों में दिखायी पड़ता है :

1. रोचक, किन्तु असाधारण शैली।

2. उलटवासियों के माध्यम से आध्यात्मिक तथ्यों का प्रतिपादन।

3. पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग।

दार्शनिक चेतना को साहित्य के माध्यम से व्याख्यायित करना एक दुरूह कार्य है। कबीर ने, रहस्यवादी कवियों ने इस निगूढ़ चिन्तन को सहज बनाने के लिए अभिव्यक्तिगत अनेक उपादानों का सहारा लिया है। कबीर का यह उदाहरण देखें जिसमें कवि ने सामान्य तथ्य को असामान्य किन्तु रोचक शैली में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है-

हरि के पारे बडे पकाये, जिनि जारे तिनि पाये।

ग्यान अचेत फिरै नर लोई, ता जनमि जनमि डहकाए।।

धौल मँदलिया बैल रबाबी, कऊवा ताल बजावै।

पहरि चोलना आदम नाचै, भैसाँ निरति कहावै।।

स्यंघ बैठा पान कतरै, घूँस गिलौरा लावै।

उंदरी बपुरी मंगल गावै, कछु एक आनंद सुनावै।

कहै कबीर सुनहु रे संतौ, गडरी परवत खावा।

चकवा बैसि अंगारे निगले, समंद अकासा धावा।।

कबीर ने अपने प्रतिपाद्य के निरूपण में साधनात्मक शब्दावली का भी व्यवहार बेझिझक किया है। इन व्यवहृत शब्दों को देखकर ऐसा आभास होता है कि मध्ययुगीन साधना, धर्म और दर्शन ने ऐसे शब्दों को बड़ी उदारता के साथ कबीर को दिया है। ऊँ, अन्तःकरण, अजपा जाप, आत्मा, इन्द्री, इड़ा, ऊँट, कुँआँ, दीपक, दुलहिन, ध्यान, निरति, बाती, हिंडोलना, मानसरोवर, बिन्दु, विसाहणा, हाट आदि असंख्य ऐसे शब्द हैं। कबीर का एक पद इस दृष्टि से द्रष्टव्य है -

हिंडोलनां तहाँ झूलैं आतम राम।

प्रेम भगति हिंडोलना, सब संतन कौ विश्राम।।

चंद सूर दोइ खंभवा, बंक नालि की डोरि।

मूलें पंच पियारियाँ तहाँ झूलै जीय मोर।।

द्वादस कम के अंतरा, तहाँ अमृत कौ ग्रास।

जिनि यह अमृत चाषिया, सो ठाकुर हम दास।।

सहज सुंनि कौ नेहरौ गगन मंडल सिरिमौर।

दोऊ कुल हम आगरी, जो हम झूलै हिंडोल।।

अरथ उरध की गंगा जमुना, मूल कवल कौ घाट।

षट चक्र की गागरी, त्रिवेणी संगम बार ।।

नाद व्यंद की नावरी, राम नाम कनिहार ।

कहै कबीर गुण गाइ ले, गुर गैमि उतरौ पार ।।

7.2.3. कबीर के रहस्यवाद की प्रवृतियाँ

रहस्यवाद में प्रणय और विचार तत्व का सम्मेल है । एस. के. स्पेन्सर ने प्रणय और विचार को रहस्यवाद की कुंजी माना है । इस धारणा के कारण रहस्यवाद न तो विशुद्ध दर्शन ही बनने पाया और न तो प्रेम की गहनता से स्वच्छन्द ही होना पाया है । इसमें अनुभूति और विचार का अदभुत सामंजस्य है । रहस्यवाद की अवस्थाएं, उसके भेद प्रभेद आदि को अपने अवधान में रखने की प्रवृत्तियों को इस प्रकार निरूपित किया जा सकता है -

1. आनुभूतिक गहनता

रहस्यवादी कविता की सबसे प्रमुख विशेषता आनुमत्यात्मकता है । रहस्यवादी अनुभूतियाँ प्रणयोन्मुखी है । उनका यह प्रणय दामपत्य मूलक किन्तु आध्यात्मिक है । कबीर प्रेम के अनन्य कवि हैं । वे प्रेम के 'ढ़ाई आखर' के ज्ञाता को पंडित मानते है । प्रेम उन्हें ईश्वर-तुल्य प्रतीत होता है । कबीर के काव्य में प्रेम के नाना आयाम प्रस्तरित हैं । कहीं मॉ-बेटे का प्रेम है, कहीं प्रेयसि-प्रियतम का और कहीं भक्त-भगवान का, लेकिन इस सन्दर्भ में ज्ञातव्य है कि विस्तार प्रेयसि -प्रियतम वाले प्रेम को अधिक प्राप्त हुआ है । सन्तों का यह प्रियतम स्वयं ब्रह्म है । कबीर प्रेयसि-प्रियतम के मधुर-प्रणय भावना को शब्दाकार प्रदान करते हुए लिखते हैं कि-

देखि कबीर का रूप मगन भइ । निरखि सेज पर आप चढ़ी ।।

करत विलास प्रिया अपने संग । पौढ़ि सेज पर प्रेम भरी ।।

सुख सागर से विलसन लागी । विधुरै पिय धन मिलि जो गई ।।

कहै कबीर मिलि पिय से । जनम-जनम को अमर भई ।।

2. दार्शनिक चेतना की विवृति

कविता के माध्यम से जब उस परम तत्व को चिन्तन मूलक स्वरूप अभिव्यंजित होता है, तब दर्शन सम्बन्धी रहस्यवाद को रूपाकार प्राप्त होता है । कबीर की रहस्यवादी चेतना में दार्शनिकता का योग दिखाई पड़ता है । वे जीव, ब्रह्म, माया जगत आदि के सम्बन्ध में अपने बुद्धि और ज्ञान का सहारा लेते हैं । इस आयोजन के सम्बन्ध में ध्यातव्य हैं कि यह शुष्क और निरस ही नहीं है, वरन् इसमें भावना की सजलता भी निहित है । दार्शनिक रहस्यवाद में भावना और बुद्धि का सुन्दर सम्मेल परिलक्षित होता है । उदाहरण के लिए-

न कछु रे न कछू राम बिनां ।

सरीर धरे की रहै परमगति, साध संगति रहनॉ ।।

मंदिर रचत मास दस लागै, विनसत एक छिनां ।

झूठे सुख के कारनि प्रांनीं, परपंच करता घना । ।

तात मात सुख लोग कुटुंब, मैं फूलयो फिरत मनां।

कहै कबीर राम भजि वौरे, छाडि सकल भ्रमनां।।

3. आध्यात्मिक भावना का निरूपण

हिन्दी के रहस्यवादी कवियों ने लौकिक वर्णन के माध्यम से, पार्थिव उपादानों से, अलौकिक और अपार्थिव चेतना की अभिव्यंजना की है। कवियों ने अपने कथ्य में जीवन और जगत सम्बन्धी नित्य मान्यताओं

को संजोया है। कबीर का पूरा काव्य आध्यात्मिक भावना की अनुगूंज है। इस दृष्टि से यह पद द्रष्टव्य है-

बातहा आव हमारे गेहु रे, तुम्ह बिन दुखिया देह रे।।

सब को कहे तुम्हारी नारी, मोकौ इहै अदेह रे।

एकमेक है सेज न सोवै, तब लग कैसा नेह रे।।

आन न भावै नींद न आवै, ग्रिह बन धरै न धीर रे।

ज्यू कामी कौ काम पियारा, ज्यूं प्यासे कूं नीर रे।।

है कोई ऐसा परउपगारी, हरि सूं कहै सुनाइ रे।

ऐसे हाल कबीर भये है, बिन देखे जीव जाइ रे।।

4. जिज्ञासा, आकर्षण और मिलन के प्रति प्रयत्न की भावना

कहने की आवश्यकता नहीं है कि उस परम सत्ता के प्रति जिज्ञासा, आकर्षण और मिलन के प्रयत्न की भावना ही रहस्यवाद के उद्गम का मूल हेतु है। रहस्यवादी कवियों के अन्तस में ऐसी भावना बड़ी गहराई के साथ विद्यमान है। सामान्यतः ये कवि ब्रह्म के अरूप, निर्गुण, निराकार रूप के उपासक हैं, फिर भी उसकी सत्ता और व्याप्ति को कण-कण में स्वीकार करते हैं। उस सत्ता की सर्वव्याप्ति को अंगीकार करने के कारण वे उसके रहस्य को जानने के लिए सचेत, तत्पर और व्याकुल दिखाई पड़ते हैं। परोक्ष सत्ता के प्रति यह आकर्षण, जिज्ञासा और मिलन की भावना कबीर के साहित्य में भी बड़ी व्यापकता के साथ उन्मिषित हुई है। चूंकि रहस्यवाद ईश्वरीय साधना एवं अर्चना का साहित्यिक रूप है और कबीर ईश्वर के साधक थे ही, इसलिए उनके साहित्य में ऐसी भावना और चेतना का मिलन सहज ही है। कुछ पंक्तियाँ इस दृष्टि से द्रष्टव्य हैं-

विरहनि ऊभी पंच सिरि, पंछी बूझै छाइ।

एक सबद कहि पीव का, कब रे मिलैगे आई।।

आंइ न सकौ तुझ पै, सकूँ न तुझ बुझाइ।

जियरा यौही लेहुगे, विरह तपाइ तपाइ।।

अन्तस् प्रेम की दिव्यता यहाँ दीपित हो रही है।

5. धार्मिक भावना का निरूपण

रहस्यवादी कविताओं का कथ्य अनेक धार्मिक भावनाओं से अनुप्राणित है । जब साहित्य युग चेतना का प्रतिबिम्ब हुआ करता, तब रहस्यवाद में नाना धर्मों के सिद्धान्तानुरूप धार्मिकता का स्फुरण क्यों न हो ! भारतीय रहस्यवाद पर दोनों धाराओं औपनिषदिक और यौगिक का प्रभाव तो है ही । औपनिषदिक प्रभाव के कारण ही इसमें आध्यात्मिकता, अद्वैतता, पवित्रता तथा यौगिक धारा के फलतः हठयोग, तन्त्रमत, बौद्धमत आदि का प्रस्फुरण दिखाई पड़ता है । कबीर का रहस्यवाद तो भारतीय और सूफी मत का सेतु है ।

6. नाना सम्बन्धों की सर्जना

कबीर ने उस परमसत्ता से नेह के नाना रिश्तों-नातों को स्थापित किया है । कण-कण में व्याप्त उस विराट-व्यापक ब्रह्म को अनेक रूपों में मानना समीचीन है । सन्त कबीर ने उन्हें जननी, पति, प्रियतम आदि कई रूपों, सम्बन्धों में मान प्रदान किया है । वे हरि का जननी तथा अपने को बालक मानकर अपने अपराधों से मुक्ति की कामना करते है ।

हरि जननी मैं बालक तोरा ।

काहे न अवगुन बखसुं मोरा ।

वे कहीं अपने को उस अदृश्य की विरहिणी मानते हैं :

विरहनि ऊभी पंथ सिरि, पंछी बूझै छाइ ।

एक सबद कहि पीव का, कब रे मिलैगे आइ ।।

7. आत्मसमर्पण की सजल भावना

आत्म समर्पण और रहस्यवाद का आधारधेय सम्बन्ध है । सन्तों से लेकर छायावादी सुकवियों तक यह प्रवृत्ति अत्यन्त विस्तार के साथ दिखाई पड़ती है । आत्मसमर्पण की इस भावना में दीनता भी निहिति है । कबीर और निराला जैसे प्रबल दृढ़ आत्म विश्वासी रचनाकार भी इस दैन्यमूलक आत्मसमर्पण शीलता से आगे नहीं निकल पाए है । कबीर तो अपने को उस अविनाशी राम का कूता मानते हैं वे कहते हैं कि -

कबीर कूता राम को, मुतिया मेरा नाउँ।

गलै राम की जेवडी, जित खैचूँ तित जाँऊ ।।

8. मुक्तक और संगीत शैली

रहस्यवादी कविता में मुक्तक और संगीत शैली का आश्रय लिया गया है । चूँकि रहस्यवादी कविता एकांकी, धनीभूत और व्यष्टिगत अनुभूतियों की उपज है, इसीलिए मुक्तक और संगीत शैली में ही उसे खुलकर अवसर प्राप्त हुआ है । सामान्यतः इस कविता का विस्तार मुक्तक काव्यों में ही ज्यादा है, प्रबन्ध काव्यों में नहीं । सन्तों की बानियों, छायावादी कवियों की गीतियों में रहस्यवाद का समग्र लालित्य बिखरा पड़ा है । कबीर का एक पद देखें -

कब देखूं मेरे राम सनेही ।

वा बिन दुःख पावै मेरी देही ।।

हूँ तेरा पंथ निहारूँ स्वामी ।

कवरू मिलिहुगे अन्तर्यामी ।।

जैसे जल बिनु मछली तलफै ।

ऐसे हर बिन मेरा जिय कलपै ।।

निसि दिन हरि बिन नींद न आवै।

दरस पियासी राम क्यों सचु पावै ।।

महैं कबीर अब विलम्ब न कीजै ।

अपनो जानि मोहि दर्शन दीजै ।।

9. प्रतीक-विधान

प्रतीकात्मकता कबीर की अभिव्यक्ति का मूलाधार है । प्रतीक ही कबीर का वह साधन-माध्यम है । जिसमें वे उस अज्ञात हरि की कथा को अत्यन्त मनोमय एवं अटपटी वाणी में प्रस्तुत करते हैं । सन्तों की रहस्यमूलक प्रतिक योजना की विवेचना के सन्दर्भ में डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत ने इसके कई भेद स्वीकार किये हैं जो कबीर की प्रतीकात्मकता पर भी अपनी सार्थकता सिद्ध करते हैं । डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत का विभाजन इस प्रकार है-

सांकेतिक प्रतीक

पारिभाषिक प्रतीक

संख्यामूलक प्रतीक

रूपात्मक प्रतीक

विरोध प्रतीक

भावात्मक प्रतीक

उक्त भेदों के आलोक में कबीर की प्रतीकात्मकता का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है उदाहरणार्थ-

आकासे मुखि आँधा कुआँ, पाताले पनिहारि ।

ताका पांणी को हंसा पीवै, विरला आदि विचारि ।।

यहाँ पर 'अकासे' सहस्रार, 'औंधा कुआ' ब्रह्मरन्ध्र, परिहारि-कुण्डलिनी 'हंसा' सिद्ध व्यक्ति साधक के प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुए हैं ।

विरोधमूलक प्रतीक का एक उदाहरण और देखिए -

समंदर लागी आग, नदिया जली कोइला भई ।

देखि कबीरा जागि, मंछी रूपों चढ़ि गई ।।

यहां समन्दर-ब्रह्म आग-वियोग, नदियाँ-कुत्सित वृत्तियाँ, मछली-आत्मा का प्रतीक है ।

अन्त में कहा जा सकता है कि कबीर का रहस्यवाद अपनी अप्रासंगिकता के बावजूद बहुत भावनामय है, संवेदनशील है और शिल्प की दृष्टि से बड़ा सशक्त है। वह सहृदयों को उद्वेलित करने में समर्थ है।

7.3. सारांश

कबीर के रहस्यवाद को समझने के लिए हम इस इकाई में सर्वप्रथम रहस्यवाद, ध्यान-योग, के मूल निहित जो मूल आशय है उसे समझने की जरूरत है। कबीर में जो रहस्य भावना है, उसका कारण तन को देवालय बनाकर उसी में अपने ईश्वर के साक्षात्कार का प्रयत्न है। इस रहस्य भावना के अनेक प्रतीकार्थ है। कबीर ने अपने रहस्यवाद की अभिव्यक्ति विभिन्न प्रतीकों, रूपकों और उलटबांसी आदि के माध्यम से प्रकट किये हैं। कबीर के रहस्यवाद का प्राणत्व अद्वैत है। कबीर ने अद्वैत के अहं ब्रह्मास्मि को अपने प्रिय साक्षात्कार का माध्यम बनाया था।कबीर आत्मा और परमात्मा का संबंध के बारे में बताया और अपने आध्यात्मिक बोध को अपनी ग्रंथों के द्वारा प्रतिबंबित किया था।

7.4. बोध प्रश्न

1. कबीर का रहस्यवाद के बारे में विस्तार रूप में बताइए।

2.कबीर का भेद-प्रभेद और प्रवृत्तियों के बारे में विस्तार रूप से बताइए।

7.5. सहायक ग्रंथ

1. कबीर- हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

2. कबीर ग्रंथावली- संपादक- श्यामसुंदर दास, लोक-भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

3. भारतीय चिंतन परंपरा- डॉ. के. दामोदरन।

4. कबीर वाणी- डॉ. पारस नाथ तिवारी।

5. कबीर एक नयी दृष्टि- रघुवंशी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

6. विचार-विमर्श- चन्द्रबली पांडे, हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

डॉ. सूर्य कुमारी. पी

8. कबीर का काव्य शिल्प

(भाषा शैली)

8.0. उद्देश्य

पिछले अध्यायों में कबीर के रहस्यवाद के बारे में जान चुके हैं। कबीर मूलतः भक्तिकाल के महान संत कवि थे। उन्होंने भक्तिकाल समय के तत्कालीन परिस्थितियों को मानव मन को मानव के बीच संबंधों को आत्मा-परमात्मा के संबंध को अपनी ग्रंथों के द्वारा दर्शाया है। कबीर के काव्य शिल्प के बारे में इस अध्याय में जान लेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद हम उस समय किस प्रकार की भाषा का प्रयोग किया करते थे और किस प्रकार की भाषा शैली के बारे में विस्तृत रूप में जानेंगे। कबीर की रचनाओं में प्रयुक्त किये गये शब्दों के बारे में कबीर का प्रतीक विधान के बारे में, अलंकारों के बारे में संगीतात्मकता के बारे में भी सोदाहरण रूप में जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।

रूपरेखा

8.1. प्रस्तावना

8.2. कबीर का काव्य शिल्प

8.2.1.कबीर की भाषा में प्रयुक्त शब्दावली

8.2.2. कबीर का प्रतीक विधान

8.2.3. कबीर का अप्रस्तुत विधान

8.2.4. कबीर की उलटवासियाँ

8.2.5. कबीर काव्य में संगीतात्मकता

8.2.6. कबीर के काव्य रूप

8.3. सारांश

8.4. बोध प्रश्न

8.5. सहायक ग्रंथ

8.1. प्रस्तावना

भाषा भावों को प्रकट करने का साधना है। यदि भाव साध्य है तो भाषा साधना है। साध्य की उपयुक्त तभी संभव है जब साधन भी उसके अनुरूप हो। इसी प्रकार भावों की गरिमा तभी प्रकट हो सकती है जब उस महिमा को वहन करने की पूर्ण शक्ति भाषा में हो। अन्यथा भाव चाहे जितने उदात्त हो , यदि उनके अनुरूप भाषा का प्रयोग नहीं है तो भावों के औदात्य अत्यधिक क्षति पहुँचती है। वरन वह कहानी भी अनुचित न होगा कि वह औदात्य नष्टप्राय हो

जाता है। इसीलिए भावों को अनुरूप ही भाषा-प्रयोग नितांत अनिवार्य है। कबीर की भाषा में भावानुरूपिणी माना जाता है। यह भाषा का सर्वोत्तम गुण है। भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के अधिकार थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहता है, उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया है। कबीर की भाषा अपभ्रंश थी। कबीर की रचनाओं में प्रयुक्त भाषा शैली के बारे में, शब्दों के प्रयोग, अलंकार योजना, छंद आदि के बारे में आगे पढ़ेंगे।

8.2. कबीर का काव्य शिल्प

कला की चरम परिणति का नाम अभिव्यंजना है। अभिव्यंजना ही कला की अस्मिता है। अभिव्यंजित कला ही शाश्वतता को अधिगत करती है, यही कला लोक की प्रेरिका-पथप्रदर्शिका भी बनती है। कबीर कोई कलाबाज (चमत्कारी कवि-कलाकार) नहीं थे, प्रदर्शन न तो उन्हें प्रिय था और न वे समाज के लिए ही उसे मंगलकारी मानते थे। इसलिए उन्होंने अपनी सहज साधु 'बानी' में अपने अन्तस के सहज-सरल उद्गारों को बिना किसी बनाव ठनाव के कह दिया है। तथापि इस सहजता की स्थिति में भी लय है और गहन प्रभावमयता भी। चूंकि कबीर का काव्य ईश्वराधन था, उनका काव्य व्यक्ति-व्यक्ति के भेद की निर्मूलित करके प्रेमाधारित समाज की रचना था, इसलिए उन्होंने अपने भावोद्गारों को व्यक्त किया । कबीर की साधना नितान्त एकान्तिक आत्मनिष्ठ नहीं थी, वह समाजोन्मुखी थी, सम्प्रेषणोन्मुखी थी। कबीर की 'वानियों' का उद्देश्य सम्प्रेषण था। सम्प्रेषण इसलिए, क्योंकि वह अपने उपदेश को जनसामान्य तक पहुँचाना चाहते थे। इस कामना से उनकी 'बानियों' में अनायास भाषा विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है-

8.2.1. कबीर की भाषा में प्रयुक्त शब्दावली

जैसे व्यक्ति-व्यक्ति से समाज स्वरूपित होता है, वैसे ही शब्द-शब्द से भाषा भी स्वरूपित होती है। कबीर की काव्य भाषा की शब्दावली संस्कृति का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों में किया जा सकता है -

1. पौराणिक शब्दावली

कबीर ने अपनी प्रस्तुति को प्रबल तथा प्रस्फुट बनाने के लिए अनेक पौराणिक शब्दावली का प्रयोग अनेक सन्दर्भों में किया है। कबीरदास ने राम, शिव, सनकादिक, नारद, सनक, ध्रुव, प्रहलाद, विभीषण, शेष, शुक्र, गोरख, भर्तृहरि, गोपीचन्द, रहीम, केशव, आदम, कुबेर, कृष्ण, गणेश, सुदामा, हनुमान, काली, दुर्गा, पार्वती और राधा आदि अनेक पौराणिक शब्दों नाम स्थानों का प्रयोग करके भाषा के सांस्कृतिक पक्ष को व्यंजित किया है।

2. प्राकृतिक शब्दावली

कबीर द्वारा प्रयुक्त प्राकृतिक मूलक शब्दावली के अन्तर्गत स्थलीय, जलीय, पवनीय, पावकीय, आकाशीय आदि समस्त प्रकृति रूप संलक्ष्य है। कबीर ने जीव जन्तुओं में मछली, मेंढ़क, मगर, कछुआ, सिंह चीता, हाथी, शूकर, बन्दर, गाय, बैल, भैंसा, कुत्ता, कौआ, चील, उल्लू, गरूड़, बगुला, हंस, मोर, कोयल, अललपक्षी, तीतर, मुर्गा, मुर्गी, सर्प, चूहा, अजगर, गोरिल्ला आदि वनस्पति जगत के अन्तर्गत मालती वन, नीम वृक्ष, आम्र, पीपल चन्दन, अरण्ड, बाँस, आक, सेमल आदि का। फलों में कमल, गुलाब आदि का। पर्वतों में स्वर्ण पर्वत, मलयपर्वत आदि का। देश-

ग्राम-नगर में कच्छदेश, बांगड़देश, जम्बूद्वीप, मालवादेश, मथुरा, द्वारका, काशी आदि का। नदियों सरोवरों में गंगा, यमुना, गोदावरी, मानसरोवर आदि का तथा और भी अन्यान्य प्रकृति प्रतिरूप को प्रकट शब्दायित किया है।

3. सामाजिक शब्दावली

सामाजिक शब्दावली अपनी परिधि में एक व्यापक अर्थवता को समाविष्ट किये हुए है। अस्तु, इसके अन्तर्गत वे सारे शब्द आ जाते हैं जो मानव के सामाजिक जीवन से सम्बद्ध हैं। कबीर ने सम्बन्धों की व्यंजना के लिए कंत, जननी, दुलहिनी, दूल्ह, सती, भर्त्तार, पति, साइयाँ, प्रिय, देवर, ननद, सास, ससुर आदि का। खाद्य और पेय में आमिख, दूध, दही, मेवा, पान, नारियल, मिठाई, खीर, खाँड, घृत आदि का। गृहस्थी के लिए उपयोगी वस्तुओं में चन्दन, पलंग, चैर, गागरि, चरखा, दीपक आदि का तथा अन्यान्य वस्त्राभूषणों का उल्लेख-व्यवहार किया है।

4. आर्थिक शब्दावली

आर्थिक शब्दावली के अन्तर्गत कबीर ने कृषि, व्यापार तथा आर्थिक जीवन से सम्बन्धित अन्यान्य शब्दावली का प्रयोग किया है। कतिपय विशिष्ट व्यापक व्यवहृत शब्द द्रष्टव्य है। यह शब्द हैं- किसान, रहट, ढ़ेकुली, मोट, लोहारी, सोनारी, कुम्हारी, बढ़ईगीरी, बनजारा, साह, तौल, नफ़ा, बजार आदि शब्दों के साथ व्यापाराधारित नाना जातियों (अहीर, कसाई, कोरी, जुलाहा, खेवट, गुजरी, चमार, बनिया, मालिन) का यथास्थन व्यवहार किया है। इन शब्दों के प्रयोग से उस समय के आर्थिक परिप्रेक्ष्य का परिचय प्राप्त हो जाता है।

5. राजनीतिक शब्दावली

कबीर की राजनीतिक शब्दावली के अन्तर्गत बादशाह (राजा), दीवान, कोतवाल, अढ़ल, कचहरी, फौज, लश्कर, गढ़, तीर, बाण, धनुष, तलवार, बरछी, बन्दूक, तोप, गोला, युद्धक्षेत्र, यौद्धा आदि पर्याप्त शब्द देखे जा सकते हैं।

6. साधनामूलक शब्दावली

कबीर काव्य की साधना मूलक या योगपरक शब्दावली के अन्तर्गत निम्नलिखित शब्दों की गणना होती है। ये शब्द हैं- अजपा जाप, अनहद या अनहद नाद, अम्रित, सहस्रार, अष्टकमल, आतम, इड़ा, उनमनि, खसम, गाइत्री, ओं, पिंगला, इंगला, निरंजन, निरति, बिन्दु, सहज, सुखमन आदि। कतिपय बहुशः प्रयुक्त शब्दों का संक्षिप्त अनुशीलन इस प्रकार किया जा सकता है।

- **अजपा जाप**

अजपा जाप बिना किसी बाह्य उपादान के आन्तरिक जाप है। जब श्वास-प्रश्वास के साथ जप की यह क्रिया सहज रूप से निरन्तर चलने लगती है, तब अजपा जाप की स्थिति होती है। साधक 'हं' ध्वनि के साथ श्वास को बाहर निर्गमित करता है ओर 'स' ध्वनि के साथ ग्रहण। इस प्रकार वह 'हंस' का जाप करता है। यही सोहम भी कहलाता है। यह जप माला से विरहित बिल्कुल आत्मिक होता है। सन्त कबीर ने इस स्थिति को अनुभवते हुए लिखा है कि -

सुरति समांणी निरति मैं, अजपा मांहै जाप।

लेख समांणां अलेख में, यूं आपा मांहै आप।।

- **अनहद नाद**

संसार में कानों के माध्यम से जो नाद सुनाई पड़ता है वह 'आहत नाद' है, जो अखण्ड नाद जगत के अन्तस्तल और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में ध्वनित हो रहा है, उसी की शरीर में स्थित कुण्डलिनी को उबुद्ध करके अपने अन्तर्गत सुनना ही 'अनहद नाद' वा 'अनाहत नाद' है। 'अनाहत नाद' का मौलिक केन्द्र 'अनाहत चक्र' है। योगी-साधक अपनी अन्तरीण चेतना को अनाहत चक्र में समाहित करके 'अनाहत नाद' का भावन करता है। योगियों से प्रभावित होकर कबीर ने 'अनहद नाद' का व्यापक प्रयोग किया है।

- **यथा**

अनहद बाजै नीझर झरै, उपजै बहच गिआन।

- **चक्र**

सामान्य रूप से शरीर में छः चक्र माने गये हैं और एक चक्र सिर के उपर शुन्य में बताया गया है जिसे सहस्रार, शुन्य, शुन्यमण्डल, गगन आदि कहा गया है। योगी छह चक्रों (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत या हृदय चक्र, विशुद्ध, आज्ञा चक्र या आकाश चक्र) को भेद कर ही ज्ञान की प्राप्ति करता है।

- **कुण्डलिनी**

मूलाधार चक्र के अधोभाग में स्थित सर्पिणी के आकार की एक शक्ति।

- **अमृत**

अमृत को नाथपंथियों ने अमीरसु, महारस, रसायन आदि की भी संज्ञा प्रदान की है। उनकी धारणा है कि इस रस को चखने के पश्चात साधक अमर हो जाता है। इस रस का स्रवण सहस्रार में विद्यमान चन्द्र से होता है जिसे योगी प्राणायाम या खेचरी मुद्रा द्वारा चखता है।

- **अवधू**

अवधू या अवधूत को पाप-प्रक्षालित करने वाला योगी बताया गया है। कबीर के सन्दर्भ में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि कबीर दास का अवधूत नाथपंथी सिद्ध योगी है।

उक्त शब्दों के विवेचन से यह तथ्य स्पष्ट रूप से भासित हो जाता है कि कबीर को नाना क्षेत्रों-स्थितियों-वर्गो की व्यापक शब्दावली तथा उनके विधान की सम्यक जानकारी थी।

शब्दावली संयोजन और विधान के पश्चात जब हम कबीर की भाषा पर पड़ताल करते हैं तब पता चलता है कि कबीर की भाषा में अनेक प्रकार के शब्दों के अतिरिक्त अनेक भाषाओं के शब्द भी देखे जा सकते हैं। राजस्थानी, पंजाबी, उर्दू, फ़ारसी आदि। इसीलिए आचार्य शुक्ल ने कबीर की भाषा पर टिप्पणी करते हुए लिखा था कि "कबीर की भाषा सधुक्कडी अर्थात राजस्थानी, पंजाबी मिली खड़ी बोली है। पर रमैनी और शब्द में गाने के पद हैं। जिसमें काव्य की बीज भाषा और कहीं पूर्वी बोली का व्यवहार है।"

ज्ञातव्य है कि कबीर की भाषिक रचना में अनेक प्रकार के शब्द हैं। उसमें प्रतीमाँ, अलंकारों, अप्रस्तुतों के साथ संगीतत्व और मुहावरे, लोकोक्तियों की भी विद्यमानता है । कबीर दास ने अनेक लोकोक्तियों एवं मुहावरों का कलात्मक प्रयोग करके अपनी भाषा को समद्ध किया है। कतिपय उदाहरण दृष्टत्व हैं -

मींजै हाथ= हाथ मींजना, पारी बाट= बिगाड डालना, मुख में पडियारेत= अपमानित होना, स्वान की पूँछ गहलो= कमजोर का सहारा लेना, बहि-बहि मर्यौ =भटकता हुआ, नष्ट होना आदि-आदि।

8.2.2. कबीर का प्रतीक विधान

किसी शब्द, संख्या, नाम, गुण या सिद्धान्त आदि के सूचक चिन्ह को प्रतीक माना जाता है। इसका अंगरेजी रूपान्तर 'सिमबल' (symbol) है। जिसका तात्पर्य बताते हुए कहा गया है कि प्रतीक किसी विचार, भाव या अनुभव का दृश्यया श्रव्य चिन्ह या संकेत है जो उन तथ्यों को स्पष्ट करता है जो केवल मस्तिष्क, द्वारा ही ग्रहण किये जाते हैं। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने प्रतीक के स्वरूप को भावित करके जो लिखा है, वह नितान्त रेखांकनीय है। वे लिखते हैं कि प्रतीक से अभिप्राय किसी वस्तु की और इंगित करने वाला न तो संकेतमात्र है न उसका स्मरण दिलाने वाला कोई चित्र या प्रतिरूप है यह उसका एक जीता जागता एवं पूर्णतः क्रियाशील प्रतिनिधि है, जिस कारण इसे प्रयोग में लाने वाले को इसके ब्याज से उसके उपयुक्त सभी प्रकार के भावों को सरलतापूर्वक व्यक्त करने का पूरा अवसर मिल जाया करता है।

अस्तु, कहा जा सकता है कि प्रतीक, अलक्ष्य, अप्रस्तुत, अमूर्त के सकल आकार-प्रकार, गुण-धर्म का प्रस्तुत और मूर्त रूप है।

काव्य के अन्तर्गत प्रतीकों के व्यवहार की महत्ता निर्विवाद है क्योंकि रचनाकार प्रतीकों के माध्यम से ही जटिल, सूक्ष्म, अमूर्त अवस्थाओं को शब्दाकार प्रदान करता है। कबीर ने भी अपने अतिश्य सूक्ष्म और अनिर्वचनीय प्रभु को व्यंजित करने के लिए प्रतीकों का सहारा लिया है। उनकी कविता में प्रतीकों के निम्न रूप परिलक्षित होते हैं -

1. पारिभाषिक प्रतीक।
2. सांकेतिक प्रतीक।
3. संख्या मूलक प्रतीक।
4. रूपकात्मक प्रतीक।
5. विरोधात्मक प्रतीक।
6. भावात्मक प्रतीक।

1. पारिभाषिक प्रतीक

कबीर ने पारिभाषिक प्रतीकों का प्रयोग अपनी हठयोगिक साधना की व्यंजना के लिए किया है। सन्तों के पारिभाषिक प्रतीकों पर सिद्धों और नाथों का प्रस्फुट प्रभाव पड़ा है। इन पारिभाषिक प्रतीकों में इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, अमीरस, कुण्डलिनी, गगन-गुफा, सजि, खसम, निरंजन, त्रिवेणी, आदि का उल्लेख किया जा सकता है।

कबीर ने 'गगन गुफा' का प्रयोग ब्रह्मरन्ध्र के लिए किया है। कबीर की आस्था है कि जब साधना से ब्रह्मरन्ध्र उन्मीलित हो जाता है, तब अमृतरस झरने लगता है। कबीर कहते हैं -

रस गगन गुफा मैं अजर झरै।

अजपा सुमिरन जाप करै॥

जो साधक ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँच जाता है, वह आवागमन से मुक्त हो जाता है।

2. सांकेतिक प्रतीक

आध्यात्मिक अनुभूतियाँ प्रायः गूढ़ एवं अनिर्वचनीय होती हैं। हमारी बैखरी वाणी उनकी अभिव्यक्ति में स्वयं को असमर्थ पाती है। फिर भी, प्रत्येक कवि या चिन्तक उन्हें व्यक्त अवश्य करना चाहता है। इसके लिए वह लोक जीवन के उन रूपों, चित्रों, वस्तुओं एवं सम्बन्धों का चयन करता है, जिनमें उनकी अनुभूति का साम्य हो और जो सामान्यतः लोक-परिचित तथा लोक प्रचलित भी हो। (डॉ. ब्रह्जीत गौतम) इस प्रकार सांकेतिक प्रतीक का विधान होता है।

सांकेतिक प्रतीकों तथा उनके द्वारा संकेतिक भावों में सादृश्य के पाँच आधार-रूप, धर्म, क्रिया, स्वर, प्रभाव माने गये हैं। यहाँ यह शब्दायित करने की आवश्यकता नहीं है कि कबीर की बानियों में पर्याप्त सांकेतिक प्रतीक दृष्टिगत होते हैं। सन्तों ने अम्बर, आकाश, ऊँचा टीबा, ऊँचा वृक्ष, गगन, गढ़, शिव नगरी, शुन्य आदि को शुन्य चक्र के, अनल, कोल्हू, गोरी, जोनडी, नागिनी, नारी, मछली, रॉड, अमंद आदि को कुण्डलिनी के, औंधा कुवाँ, कँवल कुवू, देहुरा, बनारस गाऊँ, भँवर गुफा आदि को ब्रह्मरन्ध्र के, अमरबेलि, घनबरषि, छाछ, नीर, पानी, महारस आदि को अमर वारूणी के, घंटा, जंत्र, झीझी, जंतर, दमामा, नटवर बाजा, मंदला, सींगी आदि को अनहद नाद के संकेतक के रूप में प्रयुक्त किया है। सांकेतिक प्रतीकों के माध्यम से कबीरदास चित्र बताते हुए लिखते हैं -

सरवर तटि हसणी तिसाई।

जगति बिनां हरि जल पिया न जाई॥

पीया चाहै तौ लै खग सारी, उडि न सके दोऊ पर भारी॥

कुभलीयै ठाडी पनहारी, गुण बिन नीर भरै कैसे नारी॥

कहै कबीर गुर एक बुधि बताई, सहज स्वभाव मिलै राम राई॥

यहाँ पर सखर सहस्रार, हंसिनी- आत्मा, खग-कुण्डलिनी, पनिहारी- कुण्डलिनी, गुण-सुषुम्ना नाडी का संकेतक है। अस्तु, पूरे अवतरण में सांकेतिक प्रतीक है।

3. संख्या मूलक प्रतीक

संख्याओं (एक, दो, तीन, पाँच, छः आदि) से जिन प्रतीकों की सर्जना होती है, वे संख्यामूलक प्रतीक कहलाते हैं। सन्त कबीर ने 'एक नारी' को माया के लिए, 'एकै पुरूष' को ब्रह्म के लिए, 'एकै अषिर' ऊँ के लिए, 'एक कुंभरा' विधाता के लिए, 'एक दुआरा' ब्रह्मरन्ध्र के लिए प्रयुक्त किया है।

संख्यामूलक प्रतीकों में एक के बाद कबीर ने पाँच का बड़ा व्यापक व्यवहार किया है। यह पाँच ज्ञानेन्द्रियों (हाथ, पांव, वाणी, मल तथा मूत्रद्वार), पाँच विकारों (काम, क्रोध, मद, लोभ, तथा मोह) के लिए व्यवहृत किया गया है। कबीर ने इन्हीं सन्दर्भों में पांच का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए-

पंच संगी पिव पिव करे, कहै कबीर जो पंचौ मारै, आप तिरैं और कूं तारे।

यहाँ पंच संगी- पाँच ज्ञानेन्द्रियों के तथा पंचौ-पाँच विकारों के प्रतीक हैं।

कबीर के काव्य में छः का प्रयोग मन, तान्त्रिक षट्कर्म (मारण, उच्चाटन, स्तम्भन, वशीकरण, शांति, विदूषण), सर्वजन विदित षट्कर्म (स्नान, सन्ध्या, पूजा, तप, तर्पण, होम), योग सम्बन्धी षट्कर्म (धोति, वस्ति, नेति, त्राटक, मौलिक, कमाल आदि) सन्दर्भों में किया गया है। कबीर काव्य का प्रयोग मुख्यतः नवधा भक्ति, शरीर के नवद्वार (दो आँख, दो कान, दो नासा-विवर, मुख, मलद्वार तथा मूत्रद्वार), नौ नाडियॉ (इडा पिंगला, सुषुम्ना, गान्धारी, हस्तिजिवह्या, पूषा, पयस्विनी, लकुहा, अलम्बुसा), नौ गुण (शम, दम, शोच, क्षमा, आर्जव, ज्ञान, विज्ञान, आस्तिक्य) के लिए, दस का व्यवहार दस वायु (प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान, नाग, कर्म, ककर, देवदत्त, धनंजय), शरीर के दस छिद्र (दो आँख, दो कान, नासा-विवर, मुख, मलद्वार, मुत्राधार) के लिए, बारह का द्वादशदल कमल (अनाहत चक्र) के लिए, चौदह का चौदह भुवन (भू, भुवः स्वः, महः, जनः, तपः, सत्य, अतल, सुतल, वितल, तलातल, महातल, रसातल, तथा पाताल) के लिए, सोलह का विशुद्ध चक्र तथा सोलह श्रृंगार (उबटन, स्नान, सुन्दर वस्त्र धारण, बाल सँवारना, काजल, सिंदूर, महावर, तिलक, चिबुक पर तिल, मेंहदी, सुगन्धि, आभूषण, पुष्प माला, मिस्सी, पान, होठ रचना आदि) के लिए, पच्चीस तत्वों (पांचों तत्पों की पांच-पांच प्रकृतियाँ, आकाश- काम, क्रोध, लाभ, मोह, भय; वायु- चलन, बलन, धावन, प्रसारण, संकोचन; अग्नि क्षुधां तृषा, आलस, निद्रा, मैथुन जल- लार, रक्त, पसीना, मूत्र, वीर्य, पथ्वी - हाड़, मांस, त्वचा, रीम, नाडी) के लिए, चौसठ दीवा चौसठ कलाओं के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

संख्यामूलक प्रतीकों के अन्तर्गत एक, पाँच, नौ, दस, पच्चीस आदि के लिए कबीर का 'मेरे जैसे बनिज सौ कवन काज' वाला पद अवलोकनीय है। उदाहरणार्थ-

मेरे जैसे बनिज सौं कवन काज, मूल घटैं सिरि बधै व्याज।

नाइक एक बनिजारे पाँच, बैल पचीस कौ संग साथ।

नव बहियाँ दस गौनि आहि, कसनि बहतरि लागै ताहि॥

सात सूत मिल्वि बनिज कीन्ह, कर्म पयादौ संग लीन्ह।

तीन जगति करत शरि, चल्यौ है बनिज वा वनज झारि॥

बनिज सुटानाँ पूँजी टूटि, षाडू यह दिसि गयौ फूटि।

कहै कबीर यहु जन्म बाद, सहजि समॉनू रही लादि॥

4. रूपकात्मक प्रतीक

रूपकात्मक प्रतीक केवल रूपक अलंकार तक ही सीमित न होकर, काफी विस्तार को लिये हुए है। कबीर ने दर्शन की जटिलता को सरल बनाने के उद्देश्य से रूपकों की रचना की है। कबीर रूप की के अप्रस्तुत कार्य और

परिस्थिति के सम्पूर्ण बिम्ब को उतारने में अत्यन्त सफल हुए हैं। सन्त कबीर रूपकात्मक प्रतीक की आयोजना करते हुए लिखते हैं कि -

काहे री नलिनी तूं कुमिलांनी।

तेरै ही नालि सरोवर पांनी॥

जल मैं उतपति जल मैं बास, जल में नलनी तोर निवास।

ना तलि तपति न उपर आगि, तोर हेतु कहु कासनि लागि।

कहै कबीर जे उदिक समांन, ते नहीं मूए हमारे जान॥

यहाँ पर नलिनी आत्मा, सरोबर पानी तथा जल-हरि के उपमान के रूप में आकार दार्शनिक जटिलता को बड़ी सरलता और स्पष्टता के साथ व्यंजित करने में समर्थ हुए हैं।

5. विरोधात्मक प्रतीक

विरोधमूलक प्रतीक उक्ति चमत्कार पर आश्रित होते हैं। इन्हीं के अन्तर्गत अलटवासियाँ आती हैं। उदाहरण द्रष्टव्य है-

"आंगणि बेलि अकासि फल, अण व्यावर का दूध।

ससासींग की धुनहड़ी, रमैं बाँझ का पूत॥"

आशय यह है कि माया उस लता के समान है जो संसार रूपी आँगन में लगी है, जिसका फल आकाश में लगता है। वह माया बिना ब्याई हुई गाय के दूध के समान है, खरगोश की सींग की ध्वनि के समान है। वह बंध्या के पुत्र की क्रीड़ा के समान है। अर्थात् ये विरूद्ध बातें हैं।

6. भावात्मक प्रतीक

भावात्मक प्रतीकों के अन्तर्गत प्रेमी और प्रियतमा के प्रतीक आयेंगे। निर्गुण कवियों ने ब्रह्म को अपना 'पीव', 'प्रीतम', 'कंत' आदि मानकर अपनी भावानात्मक समीपता व्यक्त की है। भावात्मक प्रतीक विधान के अन्तर्गत प्रणय के दोनों रूप दृष्टिगत होते हैं। इसके अन्तर्गत कहीं तो मिलन के आनन्द का महासागर तरंगयित हो रहा है और कहीं व्यथा की अपार 'पीर' चिह को चीर रही है। कबीर की आत्मा जब उसे अपने घट के भीतर प्राप्त कर लेती है, तब उस 'पीव' को न जाने देने के लिए कटिबद्ध हो जाती है -

अब तोहिं जांन न दैहूं रांम पियारे। ज्यों भावै त्यौं होहु हमारे॥

बहुत दिनन के बिछुरे हरि पाए। भाग बड़े घर बैठे आए॥

चरननि लागि करौं बरिआई। प्रेम प्रीति राखौं उरझाई॥

आज बसौं मन मन्दिर चोखै। कहै कबीर परहु मति धोखै॥

अंतः कहा जा सकता है कबीर का प्रतीक कोष बड़ा व्यापक है। उनके अधिकांश प्रतीक प्रकृति-जगत से लिये गये हैं। उनकी प्रतीक योजना पर नाथों और सिद्धों का प्रभाव है, लेकिन वह पिष्टपेषण मात्र नहीं हैं। कबीर ने

अपनी प्रतीक-योजना को एक नया सन्दर्भ प्रदान किया है। उन्होंने एक-एक भाव-स्थिति के लिए कई-कई प्रतीकों का आयोजन किया है।

8.2.3. कबीर का अप्रस्तुत विधान

कबीर के अन्तर्गत अप्रस्तुतों की महत्ता निर्विवाद है। अप्रस्तुत उत्तम काव्य के अनिवार्य उपादान है। अप्रस्तुतों को ही उपमान की भी संज्ञा प्राप्त है। आलंकारिक योजना के मुख्य दोनों तत्वों उपमेय और उपमान में उपमान या अप्रस्तुत योजना ही मुख्य है। यह काव्य का प्राण है, कला का मूल है और कवि की कसौटी है। यही काव्य में प्रभाव उत्पन्न करती है, प्रेषणीयता लाती है, भावों को विशद बनाती है और रसनीयता को वर्द्धिता करती है। जो कविता अप्रस्तुत योजना से शुन्य होती है वह उतनी हृदयाकर्षक नहीं होती, अमन्द आनन्द के दान में समर्थ नहीं होती। (राम दहिन मिश्र)

वास्तव में अप्रस्तुत रूप, गुण और धर्म को लक्षित करके कल्पना के आधार पर लाया गया तत्व है। यह अप्रस्तुत भिन्न-भिन्न अलंकारों में भिन्न-भिन्न स्वरूप को लेकर समाहित रहता है। अलंकारों की सृष्टि ही अप्रस्तुतों की पीठिका पर होती है और अलंकार रहित काव्य की कल्पना दुरूह होती है। इसलिए काव्य, कवि और सहृदय सभी के लिए अप्रस्तुतों की पहचान आवश्यक है, सभी इसकी प्रभा और प्रभाव से अनुप्राणित हैं।

सामान्य रूप से तो अप्रस्तुत-विधान का विभाजन साम्यमूलक, अतिशय मूलक, विरोधमूलक (वैषम्यमूलक) आदि रूपों में किया जाता है, लेकिन जिन अलंकारों में अप्रस्तुत को खेलने का खुलकर अवसर मिलता है, वे अलंकार अधोलिखित हैं- उपमा, रूपक, दृष्टान्त, अन्योक्ति, समासोक्ति, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, उल्लेख, आन्तिमान, तदगुण, अतदगुण, विशेषोक्ति, प्रतिवस्तूपमा, लोकोक्ति, प्रतीक, विशेषोक्ति, भेदकातिशयोक्ति आदि। कतिपय प्रधान अलंकारों के परिप्रेक्ष्य में कबीर के अप्रस्तुत विधान का अनुशीलन इस प्रकार किया जा सकता है।

- **उपमा**

साद श्यमूलक अलंकारों में उपमा की प्रमुखता असंदिग्ध है। कबीर ने अपने अभीष्ट को प्रस्तुत स्पष्ट बनाने के लिए अप्रस्तुतों का आनयन किया है। कबीर माया को 'मीठी खॉड' के समान बताते हुए कहते हैं -

कबीर माया मोहिनी, जैसी मीठी खाँड।

सतगुर की कृपा भई, नहीं तौ करती भांड ।।

यहाँ पर उपमा के चारों अंग उपमेय, उपमान, साधारण-धर्म और वाचक शब्द विद्यमान हैं, अस्तु पूर्णोपमा है।

- **रूपक**

कबीर ने अपनी संधारणा और संदृष्टि को सुरेखित करने के लिए अनेक स्थलों पर रूपक अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया है। रूपक अलंकार में उपमान उपमेय पर आरोपित रहता है। रूपकाश्रित उपमान की कतिपय छवियॉ संलक्ष्य है। सन्त कबीर का 'ज्ञान की आँधी' वाला सांगरूपक साहित्य जगत में बहुचर्चित है। कबीर का अभिमत है कि अज्ञान के आवरण से ही ज्ञान की ज्योति का उन्मेष होता है और भक्ति का उदय भी। इस भाव-सत्य को कबीर ने छप्पर, आँधी और वर्षा की रुपक- रचना के द्वारा व्यंजित करने का प्रयास किया है। वे कहते हैं कि -

संतौ भाई आई ग्यॉन की आँधी रे।

भ्रम की टाटी सबै उडॉणी, माया रहै न बाँधी ॥

हिति चित की द्वै यूँनी गिरांनी, मोह बलिंडा तूटा।

त्रिस्ना छॉनि परि घर उपरि, कुबधि का भाँडॉ फूटा ॥

जोग जुगति कर संतौं बाँधी, निरचू चुवै न पॉणी।

कूड़ कपट काया का निकस्या, हरि की गति जब जॉणी ॥

आंधी पीछै जो जल बूठा, प्रेम हरि जन भींना।

कहै कबीर भॉन के प्रगटे उदित भया तम पींनॉ ॥

कबीर ने अन्यत्र भी मन के लिए मथुरा, दिल के लिए द्वारका, काया के लिए काशी तथ ब्रह्मरन्ध्र के लिए देवालयों का रूपक प्रस्तुत किया है। यथा

मन मथुरा, दिल द्वारिका, काया कासी जांणि।

दसवां द्वारा देहुरा, तामैं जोति पिछांणि ॥

- **दृष्टान्त**

कबीर ने अपने मत की पुष्टि के लिए अनेक दृष्टान्तों का प्रयोग किया है। सन्त कबीर ने सुन्दरी नारी की भयंकरता तथा दाहकता को उद्दिष्ट करके उसे अग्नि के दृष्टान्त के रूप में प्रस्तुत किया है। यथा -

सुन्दरि थै सूली भली, विरला बंचै कोइ।

लौह निहाला अगनि में, जलि बलि कोइला होइ ॥

उदाहरण -

चूँकि कबीर का पूरा साहित्य सामान्य जन के उद्बोधन के लिए रचा-लिखा गया है, अस्तु वहाँ कथन को स्पष्ट एवं बोधगम्य बनाने के लिए पर्याप्त उदाहरणों का प्रयोग दृष्टिगत होता है। सन्त कबीर ने कामी व्यक्ति की स्थिति का बोध कराने के लिए निद्राभिभूत व्यक्ति का उदाहरण दिया है।

कॉमी लज्जा नॉ करे, मन मोह अहिलाद।

नींद माँगै सॉथरा, भूष न माँगै स्वाद ॥

उक्त कतिपय अलंकारों में समाहित अप्रस्तुत-विधान को लक्षित करके कहा जा सकता है कि कबीर का अलंकार विधान अनायास और आनन्दात्मक है। वह उनकी कविता पर आरोपित नहीं है। उदाहरण दे देकर सारे अलंकारों को सविस्तार समझाया जा सकता है, लेकिन इस कार्य से अनावश्यक विस्तार हो जायेगा इसलिए, इस सन्दर्भ में यही ज्ञातव्य है कि कबीर अपने अप्रस्तुतों का चयन लौकिक और प्राकृतिक जगत से किया है। उन्होंने

औपम्यमूलक उपमानों का प्रयोग कथ्य को उत्कर्ष प्रदान करने के लिए तथा रूपकमूलक उपमान का प्रयोग प्रतिपाद्य को विश्वसनीयता प्रदान करने के लिए किया है।

8.2.4. कबीर की उलटवासियाँ

सन्त साहित्य के आलोचकों ने उलटवासी के लिए अनेक रूपों-नामों-उलटबांसियों, उल्टबॉसी, उलटबासीं, उलटबाँसीं को प्रस्तावित किया है। सन्तों ने इस शैली के लिए 'उलटी चरचा' 'उलटी थापना', 'उलटि बेद', 'उलटा ख्याल' आदि नाम भी प्रदान किये हैं। इस सन्दर्भ में ज्ञातव्य है कि उलटवासी नाम प्रयोग पुरातन न होकर, अधुनातन है। संतों की विशेषरूप से कबीर की, अटपटी अभिव्यक्ति को किस आधार पर 'उलटवासी' कहा गया इसका कोई प्रामाणिक निर्णय संभव नहीं। संत परम्परा की गद्दियों पर 'अटपटी बानी' को 'उलटवासी' या इसके निकटवर्ती नाम से पुकारने की परम्परा का अवलोकन साहित्यिकों ने किया है और सम्प्रदाय से चलकर, शैली विशेष के लिए, साहित्य में 'उलटबॉसी' नाम प्रचलित हुआ है। (डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र)।

'मानक हिन्दी कोश' में उलटवासी के स्वरूप को संलक्षित करके कहा गया है कि उलटवॉसी =उलट + बासी, साहित्य में ऐसी उक्ति या कथन (विशेषतः पद्यात्मक) जिसमें असंगति, विचित्र, विभावना, विषम, विशेषोक्ति आदि अलंकारों से मुक्त कोई ऐसी विलक्षण बात कही जाती है जो प्राकृतिक नियम या लोक नियम या लोक-व्यवहार से विपरीत होने पर भी किसी गूढ़ तत्व से युक्त होती है।

उलटवासी के स्वरूप के सन्दर्भ में सारतः कहा जा सकता है कि जहां पर अध्यात्म की भावना है और उस भावना में विरोधाभास होता है और इस आभास के माध्यम से कवि साधक अपने अभिप्रेत को लुप्त रखना चाहता है, इस उद्देश्य से कि सामान्य व्यक्ति उसके मन्तव्य को न समझ सके, वहाँ पर उलटवासी की सत्ता होती है । डॉ. त्रिलोकीनारायण दीक्षित ने लिखा है कि संतों ने उलटवासियों में अत्यन्त दुरूह तथा गूढ़ योजनाओं को व्यक्त किया है।

उलटवासियों के संसार में कबीर का बड़ा नाम है। यद्यपि वे पढ़े लिखे न थे, पर उनकी प्रतिभा बड़ी प्रखर थी, जिससे उनके मुँह से बड़ी चुटीली और व्यंग्य चमत्कारपूर्ण बातें निकलती थी। इन उक्तियों में विरोध और असम्भव का चमत्कार लोगों को बहुत आकर्षित करता था। उदाहरणार्थ - (आचार्य शुक्ल)

कैस नगरि करौं कुटवारी, चंचल पुरिष बिचपन नारी।

बैल बियाइ गाइ भई बाँझ, बछरा दूहै तीन्यू सॉझ॥

मकड़ी धरि भाषी छछिहारी, मांस पसारि चील्ह रखवारी।

मूसा खेवट नाव बिलइया, मींडक सौवै सांप पहरइया।

नित उठि स्याल स्यंध सूं झूझै, कहै कबीर कोई बिरला बूझै॥

उक्त अवतरण में नगरि मानव-शरीर, कुटवारी-रक्षा, पुरिष-मन, नारी- इन्द्रिय, बैल-सदोषमन, बियाइ- उत्पन्न करता है, गाइ-इन्द्रिय, बछरा- सदोष मन के आश्रित इन्द्रियों, मकड़ी-माया, मूसा-चंचल वृत्ति वाला मन, बिलइया-दुष्टमति, मींडक-भ्रम में पड़ा मन, सर्ष-संशय, स्याल-भीत जीवात्मा, स्यंध-काल के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। इनके आधार पर उक्त अवतरण का संकेतित अर्थ इस प्रकार किया जा सकता है। सन्त कबीर कहते हैं कि शरीर रूपी नगर की सुरक्षा कैसे की जाए? इसमें मन रूपी पुरूष तो अत्यन्त चंचल है तथा इन्द्रिय रूपी उसकी नारियॉ बड़ी विदग्ध है। साधना

रूपी रक्षा का उपक्रम करने पर कुछ विचित्र स्थितियॉ पैदा हो गई हैं तथा वृत्ति रूपी गाय नैरात्म्य दशा को प्राप्त कर वंध्या हो गयी है। शुद्ध मन रूपी बछड़ा अब तीनों समय चित रूपी बैल को दुहता है। माया रूपी मकड़ी के गृह को स्वच्छ रखनेवाली वृत्तियाँ रूपी मक्खियाँ ही स्वच्छ होकर पवित्र करने वाली हो गयी हैं अर्थात् वासनाओं से और अधिक आक्रान्त होने से बचा रही हैं। मन रूपी चूहा अब मल्लाह बन गया है तथा मन रूपी चूहे को मारने वाली शुद्ध बुद्धि रूपी बिल्ली ही उसको सहस्रार तक पहुँचाने वाली नाव के रूप में हो गयी है। मन रूपी मेंढ़क को साधना का फल प्राप्त हो गया है और कुण्डलिनी रूपी सर्पिणी जगकर उसकी रक्षा कर रही है। इसके फलस्वरूप साधक रूपी श्रृंगाल निर्भय होकर काल रूपी सिंह से संग्राम करता है। कबीर का एक उदाहरण और-

समंदर लागी आगि, नदियाँ जलि कोइला भई।

देखि कबीरा जागि, मंछी रूषां चढ़ि गई॥

यहाँ पर 'समंदर' मूलाधार चक्र, 'नदियों' इड़ा, पिंगला, मंछी-कुण्डलिनी, रूषां मेरूदण्ड का बोधक है।

8.2.5. कबीर काव्य में संगीतात्मकता

साहित्य के अन्तर्गत संगीत की संस्थिति निर्विवादित है। काव्य की छन्द-बद्धता को संगीत की सत्ता से पृथक नहीं किया जा सकता है। आज जब मुक्त छन्द का व्यापक प्रचार-प्रसार है, इसमें रचित साहित्य की प्रचुरता है, तब भी उसके लयतत्व में संगीत की संस्थिति है। कविता का रूप-स्वरूप परिवर्तित हो सकता है, पर वह संगीततत्व से कदापि विरहित नहीं हो सकता, क्योंकि कविता के अन्तर्गत संगीततत्व से आशय रमणीय अर्थ के साथ स्वर को मधुरता, समरसता तथा लयात्मकता के सधात से है। इस प्रकार, संगीत के तीन उपजीव्य तत्व-नाद, छन्द, लय-अंगीकार किये जा सकते हैं।

काव्यकला का आधार भाषा है जो नाद का ही विकसित रूप है, (आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी) नादतत्व को शब्दाकारित करने में शब्दालंकारों का विशेष महत्व होता है। इनमें से अनुप्रास का प्रधान स्थान है। वास्तव में शब्दविद्वान-कौशल, लय- माधुर्य आदि से गीत सुदृढ़ स्निग्ध, चमकीले रेशमी तारों से बुने हुए सिल्कसा उतरता है। (डॉ० रामेश्वर लाल खण्डेलवाल)

अर्थ के सम्बन्ध में विद्वानों में भले ही मतभेद हों, परन्तु छन्द (नाद-लय) के प्रभाव को अस्वीकार करना सबके लिए कठिन है। काव्य में छन्द समर-सता और एकता का विधायक होता है वह सौन्दर्य तथा प्रभाव को प्रादुर्भूत करता है और कविता को गति एवं प्रति प्रदान कर उसे प्रवहमान् बनाता है।

संगीत का अगला तत्व लय है। छन्द और लय में बड़ा गहरा सम्बन्ध है। आचार्य शुक्ल ने व्यंजित किया है कि छन्द वास्तव में बँधी हुई लय के भिन्न-भिन्न ढांचों का योग है जो निर्दिष्ट लम्बाई का होता है। अस्तु, संगीत के तीनों तत्वों (नाद, छन्द, लय) में लय का विशेष महत्व है। यदि कविता से लय को निकाल लिया जाये तो वह गद्य बन जायेगी। लय के परिप्रेक्ष्य में या यों कहें कि संगीततत्व के सन्दर्भ में जहाँ तक कबीर साहित्य का प्रश्न है, उस सन्दर्भ में ज्ञातव्य है कि कबीर की सभी बानियाँ छन्दबद्ध हैं। उनके छन्दों का अध्ययन करने पर अनुभव होता है कि उन्होंने अधिकतर उन्ही छन्दों का प्रयोग किया है जो उन्हें सरल या प्रभावोत्पादक प्रतीत होते थे या जो उन्हें लोक परम्परा से प्राप्त हुए थे।

कबीर ने छन्दों पर अपना अवधान केन्द्रित नहीं किया था, इस उदासीनता का कारण दृष्टिकोण की भिन्नता थी । उनका मनोरथ विश्वमानव को एक सूत्र में बाँधते हुए हरि-स्मरण करना था । फिर भी कबीर ने साखी, सबद और रमैनी का व्यवहार किया है । साखी तो दोहे का आध्यात्मिक नाम है और सबद (शब्द) तो गेय पद है । चूँकि कबीर के चेतना सम्प्रेषणोन्मुखी थी, वे अपनी बात को आसानी से लोक तक पहुँचाना चाहते थे, इसीलिए कबीर ने सारी परम्पराओं की अवमानना करते हुए लय-तत्व को बड़ी गहराई के साथ स्वीकार किया है । यहाँ यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि कबीर के 'सबद' गेय ही नहीं, अनेक रागों पर भी खरे उतरे हैं । उनका यह खरापन उनकी सांगीतिक संदृष्टि का परिचायक है । 'गुरूग्रन्थसाहिब' में संकलित कबीर के अनेक पद अनेक रागों (सिरी, गउड़ी, आसा, गूजरी, सोरठि, घनासरी, तिलंग, सूही, विलावलु रागु) में विभक्त है । यद्यपि यह वर्गीकरण कबीर के द्वारा सम्पादित नहीं हुआ है, फिर भी, संगीतात्मकता के अभाव में वर्गीकरण की यह सम्भावना नहीं की जा सकती थी ।

8.2.6. कबीर के काव्य रूप

कबीर की सारी रचनाओं का एक ही उद्देश्य था - भवसागर से जीव की मुक्ति । वे कहते हैं -

हरि जी यहै विचारिया साखी कहाँ कबीर ।

भौ सागर में जीव है जे कोई पकडै तीर ॥

वैसे तो कबीर की अनन्त रचनाएँ मानी गयी हैं -

जेते पत्र बनसपति औ गंगा की रेनं ।

पंडित विचारा का कहै कबीर कही मुख बैन ॥ कबीर बीजक

लेकिन प्रामाणिक तीन्ही हैं । इन तीनों रचनाओं के आधार पर उनकी रचनाओं के निम्नलिखित काव्यरूप दिखायी पड़ते हैं-

1. साखी	2.सबद (पद)	3. रमैनी
4.चौंतीसा	5. बावनी	6. विपभतीसीं
7. वार	8. थिंती	9. चॉचर
10. वसन्त	11. हिंडोला	12. बेली
13. कहरा	14. विरहुली	15. उलटबाँसी

साखी 'ज्ञान की आँख' हैं । वे उपदेश मूलक हैं । सबद या पद गीतात्मक हैं । ये लौकिक और पारलौकिक भावों से युक्त हैं । रमैनी में चौपाई दोहा छन्द का प्रयोग है । इसमें परमतत्व, भक्ति, संसार आदि पर विचार किया गया है । 'चौंतीसा' का काव्यरूप बीजक में वर्तमान है कबीर बीजक में ही विप्रभतीस, चाँचर, हिंडोला, कहरा, बिरहुली, बलि आदि काव्यरूप देखे जा सकते हैं । आदिग्रन्थ में बावनी, वाद तथा थिंती काव्यरूप वर्तमान हैं । 'वसन्त' काव्यरूप सर्वत्र देखा जा सकता है । स्पष्ट है कि कबीर दास ने लोक में प्रचलित, नाथों-सिद्धों द्वारा प्रयुक्त काव्यरूपों को ग्रहण किया है ।

8.3. सारांश

कबीर की भाषा में वे सभी गुण मिलते हैं जो एक सरल और समृद्ध भाषा के लिए अपेक्षित हैं । कबीर अशिक्षित थे लेकिन उनकी भाषा किसी भी समर्थ और महाकवि की भाषा का मुकाबुला कर सकती ।कबीर की रचनाओं का काव्य शिल्प और शिल्प सौंदर्य सौंदर्य यहाँ शांत रस का परिपाक हमें दिखाई देता है। यह साखियाँ, दोहा छंद में रची गई हैं। इनकी भाषा सुधक्कड़ी है जिसमें पंजाबी, राजस्थानी मिश्रित खड़ी बोली का रूप देखने के मिलता है। इसके अलावा उलटबांसी के मूल निहित जो मूल आशय है उसे भी समझने की जरूरत है। इस उलटबांसियों को आगे इकाई में विस्तार रूप से समझेंगे।

8.4. बोध प्रश्न

1. कबीर का काव्य शिल्प के बारे में बताइए।

2. कबीर का काव्य शिल्प के अंतर्गत आने वाली भाषा प्रयुक्त शब्दावलियों के बारे में सोदाहरण रूप में लिखिए।

8.5. सहायक ग्रंथ

1. कबीर- हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

2. कबीर ग्रंथावली- संपादक- श्यामसुंदर दास, लोक-भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

3. भारतीय चिंतन परंपरा- डॉ. के. दामोदरन।

4. कबीर वाणी- डॉ. पारस नाथ तिवारी।

5. कबीर एक नयी दृष्टि- रघुवंशी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

6. विचार-विमर्श- चन्द्रबली पांडे, हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

डॉ. सूर्य कुमारी. पी

9. कबीरदास- उलटवासियाँ और प्रासंगिकता

9.0. उद्देश्य

पिछले इकाई में हम संत कबीर दास के विचारधाराओं में रहस्यवाद और काव्य शिल्प के बारे में विस्तार रूप से जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। इस इकाई में समाज सुधारक संत कबीर दास के उलटवासियाँ और प्रासंगिकता के बारे में विस्तृत अध्ययन करना ही हमारा उद्देश्य है।

रूपरेखा

9.1. प्रस्तावना

9.2. उलटवासियाँ

9.3. प्रासंगिकता

9.4. सारांश

9.5. बोध प्रश्न

9.6. सहायक ग्रंथ

9.1. प्रस्तावना

संत कबीर दास का व्यक्तित्व उलटवासियों के प्रयोग की दृष्टि से बेजोड़ है। उन्होंने भले ही उलटवासियों का प्रयोग विधान अपनी परम्परा से ग्रहण किया है, लेकिन उसकी प्रस्तुति में उनका विलक्षण व्यक्तित्व जगह-जगह व्यंगित हुआ है। कबीर की रचनाओं में कबीर ग्रन्थावली, कबीर बीजक रचनाओं को पड़ताल करने से यह पता चलता है कि ग्रन्थावली के साखी भाग में लगभग पचास साखियाँ तथा पदावली भाग में लगभग नब्बे पद उलटबाँसी शैली के तत्वों पर खरे उतरते है। उस के बावजूद कबीर ने अनेक उलटवासियों की रचना की है। कबीर के उलटबाँसी पदों की संख्या सन्त साहित्य में सर्वाधिक है। कबीर ने अनेक प्रकार की उलटबांसियों का प्रयोग किया है। वह कहीं रूपक मूलक है और कहीं विरोध मूलक प्रतीक मूलक तथा अद्भुत रस मूलक इन पर हम विस्तार रूप चर्चा करेंगे।

9.2. उलटवासियाँ

'उलटबासी' सन्त सहित्य का बड़ा प्रिय स्वरूप है। सन्त साहित्य के आलोचकों ने इसको अनेक नामों-रूपों से संबोधित किया है-

उलटबॉसियॉ- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी।

उल्टबॉसी – डॉ. राम कुमार वर्मा।

उलटबाँसी - रांगेय राधव।

उलटबांसी - परशराम चतुर्वेदी।

गोरखबानी में इस शैली के लिए 'उलटी चर्चा' और 'उलटी कामना' शब्दों का प्रयोग किया गया है। वहां कहा गया है-

गगरी कौ पॉणी कूई आवै, उलटी चरचा गोरष गावै।

तथा

निगुरी पिरथी परलै जाती लायें, हम उल्टी थापना थापी।।

हाथरस वाले सन्त तुलसी साहब ने इसको 'उलटवाँस' तो कहा ही है, साथ ही साथ इसमें प्रयोग के निहितार्थ को भी स्पष्ट किया है। उन्होंने अपनी रचना कर रामायण में लिखा है -

उलटी चाल संत की बोली। बिन परचै को परदा खोली।

उस उलटी उन रही अगूढ़ा। पंडित भेष न जाने मूढां।।

तथा

उलटबाँस संतन में भाखी। जाकी समझ सूर कोई राखी।।

सुलटी को उलटी कर बूझा। उलटी सुलटी समझ न सूझा।।

अब याकौ इस शब्द सुनाऊँ। उलटि सुलटि वोहि माहि दिखाऊँ।।

सन्त कबीरदास ने उलटबांसियों को उलटि वेद कहा है। एक साखी में वे लिखते हैं-

हे कोई जगत गुरु ग्यानी उलटि वेद बूझौ।

पाणी में अगिनि जरै, अंधेरे को सूझौ।।

'उलटवासी' के प्रयोग के बारे में जानने योग्य है कि इस नाम का प्रयोग पुरातन न होकर, आधुनातन है। संतों की, विशेष रूप से कबीर की अटपटी अभिव्यक्ति को किस आधार पर उलटवासी कहा गया, इसका कोई प्रामाणिक निर्णय संभव नहीं। संत परम्परा की गद्दियों पर 'अटपटी बानी' को 'उलटवासी' या इसके निकटवर्ती नाम से पुकारने की परम्परा का अवलोकम साहित्यकारों ने किया है और समप्रदाय से चलकर शैली विशेष के लिए, साहित्य में उलटबाँसी नाम प्रचलित हुआ है। (डॉ० रमेश चन्द्र मिश्र)

मानक हिन्दी शैली में उलटवासी के स्वरूप को ध्यान में रखकर किया गया है कि उलटबाँसी उलट + वासी, साहित्य में ऐसी उक्ति या कथन (विशेषतः पद्यात्मक) जिसमें असंगति, विचित्र, विभावना, विषम, विशेषोक्ति आदि अलंकारों से युक्त कोई ऐसी विलक्षण बात कही जाती है जो प्राकृतिक नियम या जाँच नियम का लोक व्यवहार में विपरित होने पर भी किसी गूढ़ तत्त्व से युक्त होती है।

सन्त साहित्य के अनेक आचार्यों ने भी उलटवासी पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। इनमें से कुछ विद्वानों के विचार अवश्य द्रष्टत्व है। जिससे उलटवासी का स्वरूप स्पष्ट हो सकेगा।

- **डॉ. पीताम्बर दत्त बडरवाल के अनुसार**

आध्यात्मिक अनुभव की अनिश्चितता के कारण साधक को कभी-कभी परस्पर विरोधी उक्तियों द्वारा व्यक्त करने का ढंग अपनाना पड़ता है, जैसे चन्द्रविहीन चांदनी, सूर्यविहीन सूर्यप्रकाश आदि और उसके आधार पर ऐसे गूढ़ प्रतीकों की सृष्टि हो जाती है, जिन्हें 'उलटबाँसी या विषर्यक कहते हैं।

• डॉ. सरनाम सिंह शर्मा के अनुसार

'परमपद' या अध्यात्म लोक में रहने वाले का निवास वास्तव में 'उलटवास' है। इससे सम्बन्धित वाणी 'उलटवासी' वाणी कहला सकती है। आध्यात्मिक अनुभूतियाँ लोक-विपरीत अनुभूतियाँ होती हैं और उन अनुभूतियों को व्यक्त करने वाली वाणी लोक दृष्टि से उलटी प्रतीत होती है, वास्तव में उलटी नहीं होती।

उलटबांसियों की कुछ विद्वानों ने सन्ध्या भाषा से जोडने का प्रयास किया है। इस दृष्टि से आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विशेष रूप से उल्लेख है। संध्याभाषा को स्पष्ट करते हुए पंडित हर प्रसाद शास्त्री ने कहा है कि सन्ध्या भाषा वह है, जिसका कुछ अंश समझ में आया और कुछ अस्पष्ट रहे; अर्थात् अन्धकार और प्रमाण में बीच की सी भाषा सन्ध्या भाषा है।

उलटवासी पदों की अपनी विशेषताएँ होती हैं। उनकी व्यंजना इस प्रकार की जा सकती है -

1. उलटवासी पदों के वर्ग को समझ लेने पर एक प्रकार मानसिक तृप्ति की अनुभूति होती है। वास्तव में इन पदों का वर्णन आध्यात्मिक होता है। यह तृप्ति पहली दृष्टिकूट पद, समस्यापूर्ति, बुझोवल, मुकरी आदि शैलियों में रचित रचनाओं से पृथक होती है।

2. उलटवासी पदों में रहस्य, चमत्कार और अदभुत तत्व विद्यमान होते हैं। इसमें निहित आध्यात्मिक अनुभव सूक्ष्म होते हैं। वस्तुतः यह अनुभव अनिर्वचनीय होता है।

3. उलटवासी में प्रयुक्त छन्द विधान भी महत्वपूर्ण होता है। सबद, साखी, सवैया में इनका विधान देखा जा सकता है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि जो उलअवासियों पदों में रचित हैं, उनका प्रभाव सहृदय पर ज्यादा है।

4. गेयता थी उलटवासी पद की प्रधान विशेषता है। डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ने उलटवासी की कुछ अनिवार्य और कुछ सामान्य विशेषताओं की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है ।

• उलटवासी में अनिवार्य तत्व हैं

1. विरोधाभासी असम्बद्ध पद योजना।

2. प्रतीक प्रधान शब्द वैचित्र्य।

3. साधनात्मक अथवा वैचारिक अनुभूति का होना।

• उलटवासी के सामान तत्व - सामान्य विशेषताएँ

1. विचित्र प्रकार की अभिधा का होना।
2. प्रायः सम्बोधन का होना।
3. प्रायः चुनौती जैसे स्वर की प्रतीति।

4. बूझे, विचारै, अर्थावै आदि विशिष्ट क्रियाओं का होना।
5. पारिभाषिक एवं सांकेतिक प्रतीम शब्दावली की योजना।
6. प्रयोक्ता की आत्मविश्वासमयी ध्वनि।
7. विस्मय सृष्टि।
8. प्रतिपक्ष की परिकल्पना।
9. असम्भव प्रमाणों के माध्यम से रूढ़ि अथवा लोकमार्ग का व्यक्तिक्रम।
10. गेयत्व की प्रधानता।
11. रूप व तत्व की योजना।
12. व्यंग्य और वक्रता की विशेष चमक।

उलटवासियों के प्रयोग की दृष्टि से कबीर का व्यक्तित्व बेजोड़ है। यद्यपि उन्होंने उलटवासियों का प्रयोग विधान अपनी परम्परा से ग्रहण किया है, लेकिन उसकी प्रस्तुति में उनका विलक्षण व्यक्तित्व जगह-जगह व्यंगित हुआ है। कबीर ने अनेक उलटवासियों की रचना की है। डॉ. स्नातक ने इस विषय में लिखा है कबीर की रचनाओं के लिए कबीर ग्रन्थावली (सम्पादकः श्यामसुन्दर दास), कबीर बीजक (सम्पादकः विचारदास शास्त्री) अभी भी प्रामाण्य कोटि में गिने जाते हैं। इनकी पड़ताल करने से पता चलता है कि ग्रन्थावली के साखी भाग में लगभग पचास साखियाँ तथा पदावली भाग में लगभग नब्बे पद उलटबाँसी शैली के तत्वों पर खरे उतरते है।.....कुल मिलाकर कबीर के उलटबाँसी पदों की संख्या सन्त साहित्य में सर्वाधिक है।

कबीर ने अनेक प्रकार की उलटबांसियों का प्रयोग किया है। वह कहीं रूपक मूलक है और कहीं विरोध मूलक प्रतीक मूलक तथा अद्भुत रस मूलक अध्ययन की सुगमता की दृष्टि से इनको निम्नलिखित वर्गों में विवेचित करना ठीक होगा -

1. रूपक मूलक उलटवासी।
2. प्रतीक मूलक उलटवासी।
3. विरोध मूलक उलटवासी।
4. अद्भुतरस मूलक उलटवासी।

1. रूपकमूलक उलटवासी

कबीर रूपकों के विधान में बड़े सिद्ध हैं, इसलिए उनकी रचनाओं में अनेक रूपक मूलक उलटवासियों दिखायी पड़ती हैं। इनकी अधिकता को देखकर ही राहुल सांकृत्यायन ने कबीर की सारी उलटवासियों को रूपक मूलक कहा था और इसमें सन्देह नहीं है कि कबीर ने अनेक रूपक मूलक उलटवासियां रची हैं। कुछ-कुछ उदाहरणों से इन्हें समझा जा सकता है। उदाहरणार्थ-

हरि के बारे बड़े पकाये, जिनि जारे तिनि पाये।

ग्यॉन अचेत फिरैं नर लोई, ता जनमि जनमि डहकाए।।

धौल मंदलिया बैल रबाबी, कऊवा ताल बजावै।

पहरि चोलना गारह नाचै, भैसॉ निरति करावै ।।

स्पंघ बैठा पान कतरै, धूँस गिलौरा लावै ।

उंदरी बजुरी मंगल गावै, कछु एक आनंद सुनावै ।।

कह कबीर सुनहुँ रे संतौ, गडरी परवत खावा ।

चकवा बैसि अंगारे निगले, समंद अकासा धावा ।।

ध्यान देने योग्य बात है कि इस पद में कबीर ने उलटवासी के माध्यम से परमात्मा के साक्षात्कार का भाग दर्शाया है । जिनि जारे तिनि पाये यह एक विचित्र प्रयोग है, लेकिन इसका अर्थ यह है कि जिस साधक ने अपनी पारखिक प्रवृत्तियों को जला दिया है, वही प्रभु को प्राप्त कर सकता है। समंदर अकासा धावा भी ऐसा ही विचित्र प्रयोग है। लेकिन जब व्यक्ति यह समझ लेता है कि चिन्त रूपी नदी सामान्य नदी की तरह केवल ऊपर से नीचे की ओर नहीं अती है। वह भीतर ओर बाहर दोनों और बहती है। जब वह अज्ञान मार्ग (नीचे की ओर) गामी होती है, तब वह कल्याण ही होती है । रूपक मूलक ऐसा ही एक उदाहरण और द्रष्टक है-

हिंडोलना तहाँ झूलैं आतम राम ।

प्रेम भगति हिंडोलनॉ, सब संतनि कौ विश्राम ।।

चंद सूर दोह खंभवा, बंक नालि की डोरि ।

झूलें पंच पियारियाँ, तहाँ झूलै जीय मोर ।।

कबीर ने हिंडोलना के रूपक द्वारा यह बतलाया है कि प्रेम भक्ति रूपी झूले में आत्मा रूपी राम झूल रहे हैं । इतना ही नहीं, इस झूले में पंचप्राणों (प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान) के साथ आत्मा झूल रही है।

उक्त साखी में कबीर ने गंगा, यमुना को इड़ा, पिंगला घाट को सहज-शून्य, भयमानी से ब्रह्मरन्ध्र के रूप में प्रस्तुत करके समाधी की अवस्था का वर्णन किया है।

2. प्रतीक मूलक उलटवासी

कबीर के रूपक मूलक उलटवासियों के साथ प्रतीक मूलक अनेक उलटवासियों की रचना की है । वस्तुतः उलटवासियों के संसार में कबीर का बड़ा नाम है। यद्यपि वे पढ़े-लिखे न थे, पर उनकी प्रतिभा बड़ी प्रखर थी, जिससे उनके मुँह से बड़ी चुटीली और व्यंग्य चमत्कारपूर्ण बातें निकलती थी। इन उक्तियों में विरोध और असम्भव का चमत्कार लोगों को बहुत आकर्षित करता था। (आचार्य शुक्ल) यथा-

कैसे नगरि करौं कुटवारी, चंचल पुरिष बिचपन नारी ।

बैल बियाइ गाइ भई बाँझ, बछरा दूहै तीन्यूँ सांझ ।।

मकड़ी धरि माषी छछि हारी, मांस पसादि चील्ह रखवारी ।

मूस खेवट नाव बिलइया, मींडक सीवै सॉप पहरइया ।।

नित उठि स्याल स्वंध सूं सूझै, कहै कबीर कोई बिरला बूझै ।।

उक्त अवतरण में नगरि =मानव शरीर, कुटवारी= रक्षक, पुरिष=मन, नारी = इन्द्रिय, बैल= सदोष मन, बियाइ= उत्पन्न करता है, गाइ =इन्द्रिय, बछरा=सदोष मन के आश्रित इन्द्रियों, मकडी =माया, मूसा =चंचल वृत्ति वाला मन,बिलइया =दुष्टमति, मींडक= भ्रम में पड़ा मन, सर्प= संगय, स्याल=मति जीवात्मा, स्यंघ= काल के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। इनके आधार पर उक्त अवतरण का संकेतित अर्थ इस प्रकार किया जा सकता है। सन्त कबीर कहते हैं कि शरीर रूपी नगर की सुरक्षा केसे की जाए? इसमें मन रूपी पुरूष तो अत्यन्त चंचल है तथा इन्द्रिय रूपी उसकी नारियाँ बड़ी विदग्ध हैं। साधना रूपी रक्षा का उपक्रम करने पर कुछ विचित्र स्थितियां पैदा हो गयी है तथा वृत्ति रूपी गाय नैरात्क्य दशा को प्राप्त कर बंध्या हो गयी है। शुद्ध मन रूपी बछड़ा अब तीनों समय चित रूपी बैल को दुहता है। माया रूपी मकडी के गृह को स्वच्छ रखने वाली वृत्तियाँ रूपी मक्खियाँ ही स्वच्छ होकर परित्र करने वाली हो गयी हैं अर्थात वासनाओं से और अधिक आक्रान्त होने से बचा रही हैं। मन रूपी चूहा अब मल्लाह बन गया है तथा मन रूपी चूहे को मारने वाली शुद्ध बुद्धि रूपी बिल्ली ही उसको सहस्रार तक पहुँचाने वाली नाव के रूप में हो गयी है। मन रूपी मेंढ़क को साधना का फल प्राप्त हो गया है और कुण्डलिनी रूपी सर्पिणी जगकर उसकी रक्षा कर रही है। इसके फलस्वरूप साधक रूपी श्रृंगार निर्भय होकर काल रूपी सिंह से संग्राम करता है।

3. विरोध मूलक उलटवासी

कहने की आवश्यकता नहीं है कि कबीर की भक्ति में विरोध मूलक उलटवासियों की अधिकता है। यद्यपि ऐसी उलटवासियाँ उलटी दिखायी देती हैं, पर वे वैसी हैं नहीं। उनके सांकेतिक अर्थ खुल जाने पर वे बिलकुल सीधी-सुलटी दिखाई देने लगती हैं। उदाहरणार्थ -

आकासे मुखि औंधा कुवाँ, पाताले पनिहारि।

ताका पांणी को हंसा पीवै, बिरला आदि विचारि ।।

सामान्य रूप से इसमें विरूद्ध बातें दिखाई पडती हैं।

लेकिन जब यह पता चल जाता है कि आभाष गगन मण्डल का, औंधा मुख ब्रह्मरन्ध्र का, पाताल मूलाधार चक और पनिहारि कुण्डलिनी का संकेतक है तब भी सारी दुविधा नष्ट हो जाती है।

एक साखी और

ऑगणि बेलि अकासि फल, अण व्यावर का दूध।

ससा सींग की धुनहड़ी, रमैं बाँझ का पूत ।।

4. अदभुत रसमूलक उलटवासी

कबीर की कुछ उलटवासियाँ अदभुत, अलौकिक और विचित्र हैं। इस बारे में द्वारिका प्रसाद सक्सैना ने लिखा हे कि कबीर की कुछ उलटबासियॉ अदभुत और अलौकिक वर्णनों से युक्त होने के साथ अदभुत रस से भी परिपूर्ण हैं। इन उलटबासियों में कबीर ने प्रतीकों का आश्य तो अवश्य लिया है, परन्तु इनके द्वारा कवि ने ऐसे-ऐसे अदभुत चित्रों को अंकित किया है जिसको देखेते ही आश्चर्य भकित रह जाना पड़ता है, और जिनका अर्थ सरलता से समझ में नहीं आता है। ये उलटबासियों गोयन शैली में लिखी गयी हैं और इनमें कबीर की गहन एवं अनिवार्यतता अनुभूति का ही प्राधाल है। उदाहरणार्थ-

एक अचंभा देखा ऐ भाई,

ठाढ़ा सिंघ चरावै गाई ।।

पहलैं पूत पिछे भई मॉइ, चेला के गुरु लागे पाई ।

जल की मछली तरवर ब्याई, पकरि बिलाई मुरगै खाई ।।

बैलहि डारी गुंनि धरि आई, कुत्ता कूँ लै गई बिलाई ।।

तलकार साखा ऊपरि करि मूल, बहुत भाँति जड़ लागे फूल ।।

कहै कबीर या पद को बूझै, तांकू तीन्यू त्रिभवन सूझै ।।

यहाँ पर सीधे सीधे अर्थ में बहुत विषमताएं हैं लेकिन अब यह ज्ञात हो जाता है कि -

सिंध= त्रीव का, गाई= इन्द्रिय का, पूत= साधक का, माई=साधना का, चेला= साधक का, गुरू= अन रात्मा का, मछली =कुण्डलिनी का, तरवर= सुषुम्ना का, कुत्ता =विषय भोग का, बिलाई= अन्तर्मुखी प्रवृत्ति का, गुनिं= मन का, ब्रह्मरन्ध का, फूल= मोक्ष, आनन्द का संकेतन है -**तब सारी विषमताएँ और अदभुतताएँ नष्ट हो जाती हैं ।**

अंत में कहा जा सकता है कि उलटवासियों की रचना में कबीर बड़े सिद्ध हैं । इनमें उनकी अनुभूतियों के अनेक सन्दर्भ वर्तमान हैं, लेकिन वे हैं बड़े सूक्ष्म । आध्यात्मिक अनुभूति कणों को देखने के लिए सूक्ष्म दृष्टि चाहिए । अन्त में यही कहा जा सकता है -

तुम्ह जिनि जानों गति है, यहु निज ब्रह्म विचार ।

केवल कहि समझाइया, आतम साधन सार रे ।।

9.3. प्रासंगिकता

'हरि अनन्त हरिकथा अनन्ता' - अनन्त हरि और अनन्ता हरिकथा को श्रुति सन्तों ने भाँति-भाँति से गाया-ध्याया है । किसी ने श्री हरि के मधुर मनोहर, कठिन-कठोर, भव्य भयंकर रूप स्वरूप की अवतारणा करके उसे पूजा है और किसी ने उसके अरूप, अनिर्वध, निर्गुण-निराकार रूप को मन ही मन भावित करके आराधा है । हरि के अरूप, अनिर्वय, निर्गुण, निराकार रूप की भावना-अनुभावना करने वाले साधु-साधकों को निर्गुणिए भक्त, निर्गुण कवि, सन्त आदि नाना अभिधानों से जाना-बखाना जाता है । सन्त प्रवर कबीरदास जी इसी परम्परा के श्रेष्ठ कवि सन्त हैं । वास्तव में, कबीर देशकालजयी हैं ।

आज जब आये दिन पुरातन कवियों की प्रासंगिकता का प्रश्न उठाया जाता है, तब कबीर की प्रासंगिकता का प्रश्न न उठे-ऐसा कैसे हो सकता है? सूत्र रूप में, विषय प्रवर्तन के रूप में यह सहज रूप से स्थापित किया जा सकता है कि कबीर का काव्य हमारे समाज और हमारे राष्ट्र के लिए पूर्णतः प्रासंगिक है । यद्यपि कबीर को पैदा हुए साढ़े पाँच सौ वर्ष बीतने को हैं, फिर भी कबीर के प्रतिपाद्य की प्रासंगिकता क्षीण नहीं होने पायी है । या यों भी कहा जा सकता है कि धरती पर जब तक मानव पर अत्याचार होते रहेंगे, जाति-धर्म-अर्थ के नाम पर मानव और मानव मूल्यों की घिनौनी हत्याएँ होती रहेंगी, मानव सद्भावना सहज जीने का अभ्यासी नहीं होगा । आदर्श मानव की संकलपना अधूरी रहेगी, तब तक, निस्संदेह, कबीर की वाणी प्रासंगिक रहेगी । ऐसे सन्त कवियों की प्रासंगिकता इस प्रकार अवलोकनीय है -

अ) दार्शनिक दृष्टि से।

आ) सामाजिक दृष्टि से।

इ) नैतिक दृष्टि से।

ई) आर्थिक दृष्टि से।

उ) अभिव्यक्ति की दृष्टि से।

ऊ) दार्शनिक दृष्टि से।

सन्त कबीर अध्यात्म पथ के प्रसन्न पथिक थे। ब्रह्मानुध्यान, ब्रह्मानुचिन्तन तथा उस अकध का भाव- व्यंजन ही उनका सर्वस्व था। अपनी इसी सर्वस्व चेतना को वे समाज में फैला देने के अभिलाषी थे। अवधेय है कि कबीर के समय में ईश्वर के स्वरूप को लेकर नाना मत और नाना धारणाएँ प्रचलित थी, लोग अपने-अपने धर्मानुसार- मतानुसार अकथ ईश्वर का कथन कर रहे थे, अपने ही पूज्य ब्रह्मा की सर्वश्रेष्ठता का बखान-वर्णन कर रहे थें ईश्वर-विषयक इस स्थिति को लक्षित करके कबीर का चित्त व्यथा और विक्षोभ से विचलित हो उठा। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ कि जो ब्रह्मा सर्वदा और सर्वथा एक है, उसको कुरान और पुराण, पोथी और पण्डित, मुल्ला और मौल्वी कैसे-कैसे और किन-किन रूपों में रूपायित करते हैं तथा समपूर्ण समाज का लक्ष्य-भ्रष्ट और विवेक विनष्ट करके अपने-अपने स्वार्थ का सम्पोष्ण और मत का प्रचार करते हैं। इस सन्दर्भ कबीर का अभिमत है कि वह राम (अर्थात् कबीर का राम) हिन्दुओं के राम और मुस्लमानों के खुदा से अलग है उसके प्रकृति स्वरूप को कोई नहीं जानता है -

जस तूं तोहि कोइ न जान, लोग कहै सब आनहि ऑन ।।

चारि वेद चहुं मत का विचार, इति भ्रमि भूलि परयौ संसार।

सुरति सुमृत्ति दोई कौ बिसवास, बाझि परयौ सब आसा पास।।

ब्रह्मादि सनकादिक सुन नर, मैं बुपरौ धूँका मैं का कर।

तिहि तुम्ह तारौ सोई पै तरई, कहै कबीर तॉंतरवोहयौ मरई ।।

कबीर ने सम्पूर्ण समाज को एक राह पर लाने के लिए, मत-मत में एकमत स्थापित करने के लिए ऐसे ब्रह्म की संकलपना की जो सभी जातियों एवं धर्मावलम्बियों को स्वीकार हो। उन्होंने उस ब्रह्म का नाम राम प्रस्तावित किया, लेकिन कबीर के राम वो राम नहीं जो तीनों लोकों में दशरथ सुत के रूप में विख्यात हैं। कबीर के 'राम' निर्गुण-निराकार हैं, वाणी और व्यंजना से ऊपर है, सर्वत्र व्याप्त और सबसे न्यारा है, वह तो केवल ध्यानगम्य व अनुभव गम्य है-

निरगुण राम निरगुण राम जपहु रे भाई।

अविगति की गति लखी न जाई।

चार वेद जाकै सुकृत नौ व्याकरनॉ मरम न जॉनॉ ।।

चारि वेद जाकै गरड समॉनॉ, चरन कवल कवॉलॉ नहीं जॉनॉ ।।

कहै कबीर जाकै थेदै नौही, निज जन बैठे हरि की छाहीं ।।

फिर भी, उसके नाना नाम हैं। वही राम है और वही रहीम है, वही अल्लाह है और वही भगवान है। उसी परमसत्ता से मोटी महीन सारी सत्ताएँ स्वरूपित आकारित हुई हैं, उसी परमात्मा से सारी आत्माएँ निकली हैं। समस्त जीवों में वही परमतत्व नाना रूपों में विद्यमान है। ऐसे व्यापक-विशिष्ट परमत्तव के माध्यम से कबीर ने सम्पूर्ण समाज और संसार को यह ज्ञान दिया कि सभी लोगों का ईश्वर एक है। उसके नाम पर विद्वेष और निग्रह, कलह और कोलाहल अज्ञानता का बोधक है। कबीर उस अपरम्पार के अनन्त नामों और अनन्त गुणों को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं –

अलह अलख निरंजन देव, किहि विधि करौं तुम्हारी सेव ।।

विश्न सोई जाको विस्तार, सोई कृस्न जिनि कीयौ संसार ।।

गोव्यंद ते ब्रह्मड गहै, सोई राम जे जुगि जुगि रहै ।।

अलह सोई जिनि उमति उपाई, दस वर खोलै सोई खुदाई ।

लख चौरासी रब परवरै, सोई करीम जे एती करै ।

गोरख सोई ग्यॉन गमि गहै, महादेव सोई मन को लहै ।

सिध सोई जो साधै इती, नाथ सोई जो विभुवन जती ।।

सिद्ध साधु पैकंबर हूवा, जपै सु एक भेष है जूवा ।

अपरम्पार का ननाउ अनंत, कहै कबीर सोई भगवन्त ।।

कबीर ने धार्मिक विद्वेष, धार्मिक संघर्ष तथा धार्मिक भेदभाव का कारण ईश्वर की सगुणता को स्वीकार किया है। चूँकि सगुण ईश्वर को लोग नाना रूपों में स्थापित करते हैं, नाना शारीरिक धर्मों से जोड़ते है। नाना साधनों से उपाजते और भजते है, इसीलिए नाना बुद्धि, अनेक भेदों, अनेक रूपों, अनेक अवस्थाओं- अवधारणाओं को उत्पन्न करती है। वास्तव में, यही अनेकता, अनेक भेदभावों को, अनेक मतों-पंथों को अनेक दृष्टियां-दर्शनों को पैदा करती है और व्यक्ति नाना भेद में फँसकर उलझकर, उनमें आसक्त होकर जीवन के मूल मर्म को भूल जाता है। वह अपनी सारी चेतना बाह्य क्रियाव्यापरों में केन्द्रित कर देता है और इन्ही के माध्यम से जीवन की सत्यता का साक्षात्कार करना चाहता है। वस्तुतः उनकी यह चाहना-कामना धोखा है। कबीर को इस धोखे का पूरा ज्ञान था, इसीलिए उन्होंने बाह्याचारों के स्थानपर आन्तरिक उपासना को प्रमुखता प्रदान की। कबीर ने सर्वत्र बाह्याडम्बरों, बाह्याचारों को मिथ्या मानकार पूजा-पाठ, जप-तप, नमाज -अजाना, तीर्थ-स्नान, छापा - माला-तिलक आदि-आदि को व्यर्थ करार दिया। मन्दिर-मस्जिद को एक बताया तथा भाँति-भाँति के बाहरी उपादानों से ईश्वर का साक्षात्कार असम्भव कहा। कबीर ने उस ब्रह्म को काया काशी में, अन स-अयोध्या में, मन-मथुरा में दिल द्वारका में दर्शन करने का परामर्श दिया -

मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जॉणि ।

दसवों द्वारा बेहुरा, तामै जोति पिछॉणि ।।

तथा अन्तस- अनुभूति के पथ को और अधिक प्रशस्त-निरापद बनाते हुए कबीर ने उपदेश दिया कि संसारिक भ्रम को तज कर, अंहकारहीन बनकर, आत्मतत्व-बोध से मुक्त होकर भक्ति करने वाला भक्त भगवान के समान हो जाता है-

ते हरि आवेहि किहि कॉमॉ, जे नहीं चीन्है आतम रॉमॉ ।।

थोरी भगति बहुत अंहकारा, ऐसे भगता मिलैं अपारा ।

भाव न चीन्हैं हरि गोपाला, जनिक अरहट कै गलि माला ।

कहै कबीर जिनि गया अभिमाना, सो भगता भगवन्त समॉना ।।

जहाँ भाँति-भाँति की उपासना-प्रणालियाँ मानव-मानव में अन्तर उत्पन्न करती है, वहीं माया भी नर और नारायण के मध्य भेद डालती है। वही जीव को ब्रह्म की समीपता प्राप्त नहीं होने देती है। माया अपनी मोहिनी सूरत के पाश में जीव को फॅसाये रहती है। जो व्यक्ति गुरु की शरण में पहुँच जाता है और कृपा का सम्बल प्राप्त कर भगवान की अराधना करता है, उसकी भक्ति में माया बाधा नहीं डालती। गुरू की इसी विलक्षण सामर्थ्य का अनुभव करके कबीर ने उसमें ईश्वर तत्व का समावेश किया है, इतना ही नहीं कहीं-कहीं तो वे गुरू की उदारता से परम भावुक होकर उसे नारायण से अधिक महत्व देते हुए दिखाई पड़ते है। क्योंकि उनकी अकम्प आस्था है कि गुरू ही ज्ञानदाता है, वही शब्द-वाणों से ईश्वर के प्रति प्रणय और विरह पैदा करता है, वही ईश्वरीय सत्ता की आनन्दमयी प्रतीति कराता है।

इस प्रकार कबीर ने अपने दार्शनिक चिन्तन के माध्यम से सर्वस्वीकार्य ब्रह्मोपासना को प्रस्तावित किया है और इस ब्रह्मोपासना को समस्त सुखों तथा सद्भावों का विधायक-नियामक माना है।

हम वासी उस देश को, जाति वरन कुल नाहिं ।

शब्द मिलावा होय रहा, देह मिलावा नांहि ।।

आ) सामाजिक दृष्टि से

साहित्यकार अपने साहित्य में बसता है और साहित्य में समाज का निवास है, इसीलिए समाज, साहित्यकार और साहित्य को अलग-अलग करके देखा नहीं जा सकता है। तीनों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। जिस समाज में साहित्यकार का शारीरिक और मानसिक विकास होता है, साहित्य, साहित्यकार प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः अपने साहित्य में समाज के भिन्न-भिन्न सरोकारों को ही शब्दायित करता है।

यद्यपि कबीर ज्ञानमार्गी सन्त थे, उनका लक्ष्य आध्यात्मिक जगत का भावना और वर्णन था, लेकिन उन्होंने अपनी सारग्राही दृष्टि से संसार और समाज में व्याप्त भाँति-भाँति के आचारिक और मानसिक विकारों को विनष्ट करके आदर्श मानव और आदर्श समाज की संरचना ही कबीर की कामना थी। कबीर की इसी कामना और साधना के कारण समीक्षकों ने उन्हें समाज-सुधारक की भी संज्ञा प्रदान की है। अवधेय है कि कबीर समाज-सुधारक भले ही न हो, लेकिन वह अच्छे समाजद्रष्टा तथा सच्चे वक्ता अवश्य थे। उनका यह भी विश्वास था कि सामाजिक व्यवस्थाएँ और परम्पराएँ मानवीय एकता की विनाशक है। इसी धारणा के कारण सन्त प्रवर कबीर ने अविवेकी सामाजिक व्यवस्थाओं और परम्पराओं का तिरस्कार किया। कबीर मनुष्य को मनुष्य मानते हैं। वे मानव के जाति धर्म को स्वीकार नहीं करते, इसीलिए वे आदमी आदमी के बीच विद्यमान भेद को मिटाना चाहते हैं। उल्लेख है कि कबीर ने सभी को एक ही परम स्रष्टा का तत्व स्वीकार किया है। इसी स्वीकारभावना के कारण कबीर ने यह माना है कि जातीय बन्धन, जातीय व्यवस्था, आर्थिक स्थिति सब लौकिक लोक की दी हुई है। समाज के ठेकेदारों ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए समाज में ऐसा वर्ग-

भेद फैलाया है। कबीर ने इस वर्ग भेद में भागीदार ब्राह्मणों, हिन्दुओं-मुसलमानों आदि की तीव्र भर्त्सना करके एक जाति, एक वर्ग, एक धर्म को प्रस्तावित किया। वह जाति, वह वर्ग, वह धर्म ईश्वर का है -

अव्वल अल्लह नूर उपाया कुदरत के सब बंदे।

एक नूर ते सब जग उपज्या कौन भले कौन मंदे।।

लोगा भरमि न भुलहु भाई।

खालिक खलक खलक महिं खालिकु पूरा रहयो सब ढ़ाई।।

माटी एक अनेक भाँति करि साजी साजन हारे।

ना कुछ पोच माटी के भॉणे ना कुछ पोच कुँमारे।।

सन्त कबीर तत्ववेता थे, इसीलिए उन्होंने उसी को सत्य स्वीकारा जिसका उन्होंने साक्षात्कार कर लिया। इसी धारणा के कारण कबीर ने अनेक स्थानों पर आत्मज्ञान-तत्वज्ञान हीन पण्डित और पुस्तक की व्यर्थता का प्रतिपादन किया है।

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोइ।

एकै आखिर पीव का, पढ़ै सु पंडित होइ।।

समाजोत्कर्ष की दृष्टि से कबीर का योगदान अनोखा है। उन्होंने अपनी अक्खड-फक्कड बानी से हिन्दुओं और मुसलमानों में व्याप्त विद्रोह और संघर्ष को शान्त करने का प्रयास किया दोनों के थोथो दम्भ अहंकार और आचार पर प्रहार मिया, ब्राह्मणों के वर्ग को चकनाचून करते हुए ब्राह्मण-शूद्र को बराबर बताया। नाना धर्मों नाना मतों- नाना सम्प्रदायों की तात्विक विवेचना करते हुए सर्वधर्म समन्वय की स्थापना करके उत्कृष्ट मानवतावादी कवि-विचारक-सन्त के रूप में अपनी प्रशंसनीय छवि अंकित की। कहने की आवश्यकता नहीं है कि कबीर ने बाह्यचारों की मिथ्या का प्रतिपादन कर, बाह्याडम्बरों को दिखावा बताकर, ब्राह्मण- शूद्र तथा हिन्दू-मुसलमान में एक ही प्रभुता का कथन कर समाज का बड़ा उपकार किया है। इस प्रकार कबीर ने ऐसे समाज का स्वरूप प्रदान किया जिसमें न कोई शूद्र हो, न हिन्दू और न कोई मुसलमान, न कोई धनवान है और न कोई निर्धन और न उस समाज का कोई मन्दिर-मस्जिद जाता है, न व्रत और रोजे रखता है, न काबा - काशी जाता है, न छापा माला-तिलक धारण करता है तीर्थाप्न और न तीर्थो में स्नान ही करता है, वह सब में और सभी जगह अपने निर्गुण प्रिय की निराली लाली का भावन करता है उसी लाली की लालिमा के कारण उसे प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक जीव अतिप्रिय लगता है क्योंकि सभी जीवों की आत्मिक-तात्विक एकता ही कबीर का वरेण्य है-

लाली मेरे लाल की, जित देखों तिल लाल।

लाली देखन में गई, मैं भी भई निहाल।।

इ) नैतिक दृष्टि से

कबीर काव्य का मूल स्वर आचारिक और मानसिक निर्मलता है। उन्होंने आन्तरिक पवित्रता के प्रभाव को भावित करके ही सारा साहित्य रचा है। चूँकि कबीर तत्वद्रष्टा सन्त थे, इसीलिए उन्होंने बाह्य साधना के स्थान पर अन्तर-

साधना पर बल दिया और अन्तर- साधना की सिद्धि नैतिकता से स्वीकारी। उल्लेखनीय यह है कि नैतिकता कोई सभ्यता नहीं है जो सीखकर-देखकर धारण की जा सके। नैतिकता तो हमारी आन्तरिक चेतना है और यही चैतन्य भावधारा कबीर के चित्त का मूल मर्म है।

कबीर की नैतिक चेतना के अनेक आयाम हैं। प्रेम, दान, दया, अहिंसा, सत्संगति, सदाचार, सत्यता, पतिव्रता, परोपकार, अपरिग्रह, अस्तेय, क्षमा, शौच, निन्दात्याग, अभिमानहीनता, कर्म आदि नीति के पक्ष है । कहने की आवश्यकता नहीं है कि कबीर की कविता मानव-जीवन की आनन्दमयी आचार-संहिता है, इसीलिए वह मानव को तत्वज्ञान देती है कि ऊँचे कुल में जन्म महत्वपूर्ण नहीं है, वरन् ऊँचा कर्म माननीय है -

ऊँचे कुल क्या जनमियाँ, जे करणी ऊँच न होइ।

सोवन कलस सुरे भर्या, साधूँ निंद्या सोइं ।।

कबीर का संदेश है कि कर्म परमार्थ केन्द्रित होना चाहिए, क्योंकि परमार्थ से बड़ा धर्म और पुण्य दूसरा नहीं है। इसी के लिए ही तो तरूवर, सरोवर, सन्त और मेध ने रूप धरा। सन्त कबीर ने नीति को और स्पष्ट करने के लिए संगति, निष्ठा, प्रेम, सद्भाव, कथनी-करनी की एकता आदि नीति-मूलक तत्वों का सविस्तार वर्णन किया है।

सार रूप में अवधेय है कि कबीर की नैतिक चेतना सद्भावना और सदाचार का सन्देश देती है। वह मानवीय चित्त को आत्मविश्वास से आनन्दित करती है, क्योंकि कबीर की बानी में भावुकता की दीनता-हीनता नहीं है, वरन् उसमें सहज आत्मविश्वास का समावेश है। यह आत्मविश्वास सबल और स्वस्थ समाज के लिए बड़ा उपकारक है। वास्तव में कबीर की नैतिक भावना ओढ़ी हुई चीज नहीं है, वरन् वह उनके चित्त का व्यक्त प्रकाश है। वह भावना मंगलविधायिनी ही नहीं मानवता विधायिनी भी है। सचमुच, कबीर की नीति में आदर्श नागरिकता के समस्त तत्व समाहित हैं। इस प्रकार, वह हमें आदर्श नागरिकता की शिक्षा देती है।

ई) आर्थिक दृष्टि से

यद्यपि कबीर के सोच विचार का संसार ईश्वर का संसार था, फिर भी उन्होंने लोक की दगध-दाहकता को अनदेखा नहीं किया। उन्होंने लौकिक पीठिका पर ही ईश्वरीय संसार का प्रासाद रचा। ध्यान देने योग्य है कि लोक में आर्थिक व्यवस्था की अपनी विशिष्ट महत्ता और अनिवार्यता है। वह हमारे जीवन के नाना संदर्भों को प्रभावित करने के साथ उसे रूपान्वित भी करती है। कबीर अर्थ की इस महत्ता और वाव्तविकता से परिचित थे, इसीलिए उन्होंने भगवान से, उत्यन्त विनत हो, जीविका के लिए प्रार्थना की है। कबीर को यह साफ तौर से मालूम था कि भूख की पीड़ा बड़े-बड़े सन्तों को भी अपने पथ से विचलित कर देती है, इसलिए किसी भी कार्य सिद्धि हेतु 'रोटी' की निश्चिन्तता सर्वथा अपेक्षित है। इस भावसत्य को कबीर के इस पद में भावित किया जा सकता है -

भूखै भगति न कीजै। यह माला अपनी लीजै ।।

हौ मॉगो संतन रेनां। मैं नाही किसी का देना ।।

माधव कैसी बनी तुम संगै। आपि न देउ बहु मंगे ।।

दुइ सेर माँगौ चूना। पाव घीउ संग लूना ।।

अधसेर मांगौ दाले। मोको दोनों बखत जिवा ले ।।

खाट माँगौ चौपाई। सिरहाना और तुलाई ।।

ऊपर कौ माँगौ सींधा। तेरी भगति करै जनु बींधा ।।

कबीर जहाँ अर्थ की अनिवार्यता से परिचित थे, वहीं वे उसकी दूषणता को भी जानते थे। उन्हें मालूम था कि धन सामाजिक विषमता का कारण है। यह धन, यह अर्थ नाना प्रकार के अनर्थों को पैदा करता है, निर्धन को मानहीन बना देता है -

निर्धन आदर कोई न देई। लाख जतन करै ओहु चित न धरेई ।।

जौ निर्धन सरधन के जाई। आगै बैठा पीठ फिराई ।।

जौ सरधन निर्धन कै जाई। दीया आदर लिया बुलाई ।।

निर्धन सरधन दोनों भाई। प्रभु की कला न मेटी जाई ।।

कह कबीर निर्धन है सोई। जाकै हिरदै नाम न होई ।।

इतना ही नहीं, अर्थभाव व्यक्ति को अपनी सन्तानों को भी बेचने पर विवश करता है। इस संताप जनक स्थिति से बचने के लिए कबीर अपने प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु, इतना धन तो दे ही दीजिए जिससे परिवार और साधु की सेवा हो सके -

सांई इतना दीजिए, जितना कुटुम्ब समाय।

ता मैं भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाय ।।

विचारणीय है कि कबीर ने जीवन निर्वाह के लिए तो धन की अनिवार्यता मानी है, लेकिन वे धन-संग्रह को उचित नहीं मानते है। इसी भावना के कारण जब उन्हें यह ज्ञात होता है कि उनका पुत्र धन-सम्पदा के चक्कर में पड़ा है तब उन्हें बड़ा आघात लगता है, क्योंकि वे तो अर्थ संग्रह को बड़ा पाप मानते हैं। कबीर ने धन को अनित्य मानते हुए धन-संग्रह करने वाले व्यक्तियों की बड़ी कदर्थना की है -

आसा जीवै जग मरै, लोग मरे मरि जाइ।

सोइ मूवै धन सँचते सो उबरे जा खाइ ।।

कबीर सो धन संचिए, जो आगै नँ होइ।

सीस चढ़ाए पोटली, ले जात न देख्या कोइ ।।

पहले कथित अर्थ विषयक अनिवार्यता तथा संग्रह के माध्यम से स्पष्ट हो जाता है कि कबीर शताब्दियों पहले अर्थ की जो व्यावहारिक रूपरेखा समाज को दी थी, वह आज भी चरितार्थ होती है। सरकार, समाज और संविधान की भाषा में वह काला धन, सफेद धन, आयकर की चोरी आदि भिन्न-भिन्न रूपों में व्यक्त विवृत्त हो रहा है।

उ) अभिव्यक्ति की दृष्टि से

अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी कबीर की प्रासंगिकता को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। उल्लेखय है कि अभिव्यक्ति का मूल मर्म सहज-निर्बोध प्रेषणीयता है। कबीर की चेतना अभिव्यक्ति के इसी मूल मन्त्र को लेकर व्यक्त

हुई है। अभिव्यक्ति की दृष्टि से कबीर का एक ही उद्देश्य था- वह था -अपने दृष्टिकोण का, अपने विचार का प्रतिपादन और उस प्रतिपादन का सहज सम्प्रेषण। लोक जिस शैली से, जिस भाषा से, जिन शब्दों से अभिभूत हो, वे सब कबीर को सहज ग्राह्य-स्वीकार्य थे। कबीर का सारा ज्ञान लोक सापेक्ष अनुभवजनित था और वे अपने ज्ञान को अपने तक सीमित रखना चाहते थे, इसीलिए उन्हें सहज सम्प्रेषण के माध्यमों की तलाश थी और वह वही तलाश उनकी सहज भाषा के रूप में रूपित हुई है।

कबीर की भाषा जैसी सहज और जनतान्त्रिक है, वैसी ही उनकी अभिव्यंजना की अन्य भंगिमाएँ भी सहज है। कबीर को किसी भी भाषा के शब्दों से परहेज नहीं है, बशर्ते वह सामान्य-जन की समझ में आ जाये। कबीर ने कहीं पर भी अभिव्यक्ति - उपादानों का साथास व्यवहार नहीं किया है। अभिव्यक्ति के सारे उपादान लोक और वह भी अतिसाधारण गवई-गॉव से लिये गये हैं। कबीर का यह कथन उनकी लोक आस्था और लोक-सम्प्रकता का प्रस्फुट व्यंजक है।

कबिरा संस्कृत कूप जल, भाषा बहता नीर।

भाषा सतगुरू सत्य है, संतमत गहर गंभीर ।।

चूंकि कबीर भक्त थे, सन्त थे, विचारक थे, धार्मिक नेता उपदेष्टा थे, वे अपनी बात को बिना लाग-लपेट के कहना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने लोक-सापेक्ष भाषा-शैली में अपने वक्तव्य को जनता के सामने रखा है। वास्तव में, कबीर का यह जनतान्त्रिक दष्टिकोण आज के युग में अत्यन्त उपयोगी है। निःसंदेह कबीर की सम्पूर्ण कविता प्रासंगिक है। व्यक्ति के लिए, समाज के लिए, राष्ट्र के लिए, साहित्य के लिए तथा मानवता के उत्थान के लिए कबीर का योगदान बार-बार विचारणीय, भावनीय, उल्लेखनीय एवं सराहनीय है।

9.4. सारांश

सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि- रूप में कहा जा सकता है कि कबीर की 'बानी' केवल उपदेशमूलकता के लिए ही सराहनीय नहीं है, वरन् उनमें काव्यशिल्प के अनेकों उपादानों का सुन्दर तथा प्रभावशाली संयोजन देखा जा सकता है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि कबीर की कविता अपने काल में भले ही कम उपयोगी रही हो, लेकिन आज तो बड़ी प्रासंगिक है। शताब्दियों पहले कबीर ने जिस भावनात्मक एकता के लिए जाति धर्म विहीन मानवता की कामना की थी, वही कामना आज हमारी राष्ट्रीय कामना है, राष्ट्रीय संवैधानिक व्यवस्था है। सूत्र रूप में, कबीर काव्य की प्रासंगिकता इस प्रकार से पुनः भावनीय- विचारणीय है कि -

1. कबीर का काव्य किसी धर्म, किसी सम्प्रदाय, किसी जाति विशेष का आख्यान नहीं है। वास्तव में वह जाति धर्म निरपेक्षता की महावाणी है। स्वतन्त्रता के बाद हम जिस धम निरपेक्षता की आवश्यकता अनुभव कर रहे है, और उस अनुभव को व्यावहारिक बनाने के लिए अनेक व्यवस्थाएं प्रदान कर रहे हैं, सन्त कबीर शताब्दियों पहले हमें उस व्यवस्था की जानकारी दे गये थे।

2. कबीर की वाणी नैतिकता से ओतप्रोत है। वह हमें शारीरिक और मानसिक परिष्कार की शिक्षा देती है। आधुनिक शब्दावली में कहना चाहें तो कह सकते हैं कि कबीर की कविता नैतिक शिक्षा की कविता है। वह हमें आदर्श नागरिकता का पाठ पढ़ाती है।

3. कबीर ने अर्थ संग्रह की निंदा करते हुए उसे त्याज्य बताया है, साथ ही साथ अर्थ से उत्पन्न अनर्थों की भी व्यंजना की है। इस प्रकार, कबीर की कविता में हमारे संविधान की अर्थगत नीतियों का संकेतक रूप यत्र-तत्र देखने को मिलता है।

4. भाषा की दृष्टि से भी कबीर की प्रासंगिकता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। अवधेय है कि कबीर का मुख्य प्रयोजन था सहज निर्बाध सम्प्रेषण, अभिव्यक्ति के उपादानों के प्रति उनकी कोई विशिष्ट प्रतिबद्धता नहीं थी। कबीर की इसी उदारता के कारण उनके काव्य में किस्म-किस्म के शब्द व्यवहृत हुए हैं जो कबीर की भाषिक उदारता और एकता को स्वरूपित करते हैं। वास्तव में, कबीर का शब्द विधान, उनका भाषा व्यवहार भाषायी विवाद की समाप्ति का प्रेरक बन सकता है।

9.5. बोध प्रश्न

1. कबीर का साहित्यिक विचारधाराओं में उलटवासियों के बारे में लिखिए।

2. कबीर के प्रासंगिकता विचारधाराओं के बारे में विस्तार रूप से बताइए।

9.6. सहायक ग्रंथ

1. कबीर- हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

2. कबीर ग्रंथावली- संपादक- श्यामसुंदर दास, लोक-भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

3. भारतीय चिंतन परंपरा- डॉ. के. दामोदरन।

4. कबीर वाणी- डॉ. पारस नाथ तिवारी।

5. कबीर एक नयी दृष्टि- रघुवंशी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

6. विचार-विमर्श- चन्द्रबली पांडे, हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

डॉ. सूर्य कुमारी. पी.

10. कबीर के साहित्य में प्रयुक्त कुछ पारिभाषिक शब्द

10.0. उद्देश्य

पिछले इकाइयों में हम कबीर की जीवन एवं व्यक्तित्व, निर्गुण भक्ति एवं कबीर और कबीर का साहित्यिक विचारधाराओं के बारे में जान चुके हैं। अब इस पाठ में विशेषकर कबीर के साहित्य में प्रयुक्त कुछ पारिभाषिक शब्दों के बारे में विस्तार रूप से जानना ही इस पाठ का मुख्य उद्देश्य है।

रूपरेखा

10.1. प्रस्तावना

10.2. अजपा जाप

10.3. अनहदनाद

10.4. उनमन

10.5. निरंजन

10.6. सुरति-निरति

10.7. सहज-शून्य

10.8. नाद-बिन्दु

10.9. औंधा कुआँ

10.10. सारांश

10.11. बोध प्रश्न

10.12. सहायक ग्रंथ

10.1. प्रस्तावना

अजपा जाप में दो शब्द हैं- अजपा और जाप। यहाँ पर 'अजपा' जाप का विशेषण नहीं हैं, वरन् वह संज्ञा पुल्लिंग है और तांत्रिकों का हंस नामक मंत्र है जिसका जप श्वास-प्रश्वास के साथ चलता रहता है। 'गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह' में इस मंत्र (हंस) के स्वरूप और महत्व के विषय में कहा गया है कि साधक 'ह' ध्वनि के साथ श्वास बाहर निकालता है और 'स' ध्वनि के साथ श्वास भीतर खींचता है। इस क्रिया से जीव प्रति पल 'हंस-हंस' करते हुए इस मन्त्र का जाप करता रहता है। यह गायत्री मंत्र मोक्षप्रदायी है और समस्त विद्या ज्ञान और जप में सर्वश्रेष्ठ भी हैं -

हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः।

हंसहंसेत्ययं मन्त्रं जीवों जपति सर्वदा ।।

अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदायिनी ।

अस्याः संकल्पमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।

अनया सद शी विद्या अनयसा सद शों जपः ।

अनया सद शं ज्ञानं न भूतं न भविष्यति ।।

-गोरक्ष शिद्धान्त संग्रह

भक्ति भेदों में जप का, 'सुमरिन का महत्व सर्वोपरि है । इसी भावसत्य को भावित करके गोस्वामी जी ने बड़े विश्वास के साथ घोषित किया था कि 'भाव कुभाव अनख आलस हूँ । नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ ' लेकिन जब यह जत स्थूल -आडम्बर बन जाता हैं, तब बड़ा अमंगलमकारी हो जाता है । चूँकि साधना की ह्सोन्नमुखता के कारण यह श्रेष्ठ कर्म भी क्षरित हो गया, जप केवल आडम्बर बन गया, इसलिए नाथों ने इनका विरोध करते हुए मानसिक जप 'अजपा जाप' को प्रस्तावित और व्यवहृत किया । चूँकि कबीर भी आडम्बर - विरोधी थे, इसीलिए उन्होंने इसको बड़ी प्रसन्नता के साथ अंगीकार किया ।

10.2. अजपा जाप

सन्त कबीरदास ने अपनी अनेक साखियों में इस 'अजपा जाप' की महत्ता का वर्णन किया हैं । उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि व्यक्ति यदि साधक अजपा जाप के द्वारा साधना की सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त कर लेता है । अर्थात् वह (आत्म तत्त्व) परमतत्त्व के स्वरूप में लीन हो जाता है । इस स्थिति को इन साखियों के द्वारा समझा जा सकता हैं -

सुरति समानी निरति मैं, अजपा माहैं जाप ।

लेख संमाना अलेख मैं, यौं आया माहैं आप ।।

तथा-

मेरा मन सुमिरै राम कूँ, मेरा मन रामहिं आदि ।

अब मन रामहिं है रहया, सीस नवखौं काहि ।।

तूँ तूँ करता हूँ भया, मुझ मैं रही न हूँ ।

बारी फेरी बलि गई, जित देखों तित हूँ ।।

अजयाजाप की इसी श्रेष्ठता के कारण कबीर 'मालाजाप' का विरोध करते हैं । वे जानते हैं कि अजयाजाप ही निरन्तर और निर्विरोध चल सकता है । दूसरे प्रकार के जप से तो अनेक प्रकार की विघ्न बाधाएँ है । अपनी एक शाखा में उन्होंने कहा है कि मन की माता (अजयाजाप) से ही संसासर प्रमाणित होता हैं -

माला पहरें मनुमुषी, ताथे कछू न होइ ।

मन माला को फरताँ, जुग उजियारा सोइ ।।

वास्तव में, अजयाजाप ईश्वर की आराधना की उत्कृष्ट अवस्था है। यह साधन और आडम्बर निष्पक्ष हैं, लेकिन प्रीति- स्मृति और चित की स्थिरता साक्षेप है। साधन हीन होकर शूल की साधना कोई संकल्प व्रती अनन्त असाधारण साधक ही कर सकता है। कबीर ऐसे ही साधक संत थे।

10.3. अनहदनाद

अनहद या अनाहद का बहुशः प्रयोग कबीर साहित्य में मिलता है। कबीर ने भी इसका अनेक बार प्रयोग किया है। 'अनहद' या 'अनाहद' अनाहत का तद्भव है। 'आ' उपसर्गयुक्त 'हन्' धातु से 'क्त' प्रत्यय होने पर आहत शब्द और उसका 'ना समास में 'न' लोप हो जाने पर अनाहत शब्द बना है। जिसका कोशगत अर्थ है जिस पर आघात न हुआ हो। कबीर साहित्य में इसका प्रयोग इसी अर्थ में हुआ है।

योग में शब्द के दो भेद आहत और अनाहत बताये गये है। आहत को ही बैखरी वाणी (शब्द) कहा गया है। आहत शब्द वे शब्द हैं जो उच्चारण अवयवों के संसर्ग संघर्ष के परिणामतः उच्चारित होते हैं और अनाहत वे शब्द है जो उच्चारण अवयवों के घात प्रतिघात के बिना ही सुनायी पड़ते है। आहत शब्द तो सभी सुनते हैं -सुन सकते हैं, लेकिन अनाहत शब्द (अनहद नाद) योगी साधक ही सुन पाता है। जब तक व्यक्ति सांसारिक प्रपंचों में लिप्त रहता हैं। तब तक उसे अनहद नाद नहीं सुनायी पड़ता है, लेकिन जब वह अपनी चित्रवृत्तियों को सांसारिक प्रपंचों से विमुख करके अन्तर्मुखी बना देता है तब वह बड़ी स्पष्टता के साथ अनहदनाद सुनने लगता है।

डॉ. राजदेव सिंह ने लिखा हैं कि उन्मनी अवस्था में पहुँचने पर यही अनाहत नाद शंख, दुंदुशी, मेघगर्जन आदि के ऊँचे स्वर की तरह सुनाई पड़पने लगता है। यह अनाहत नाद या शब्द देशकाल की सीमाओं से अतीत है। न इसका आदि है न अन्त। इसके ठीक विपरीत आहत शब्द हैं जो पैदा होता है और फिर विलीन हो जाता है। स्पष्ट है कि अनाहत नाद असीम है और आहत नाद ससीम।

अनहदनाद कुण्डलिनी जागरण के पश्चात् सुनायी पड़ता है। पहले यह नाद स्थूल होता है, फिर सूक्ष्य हो जाता है। साधक का चित सूक्ष्यनाद का श्रवण करता है। इस श्रवण से मन की सारी चंचलता नष्ट हो जाती है, चित एकाग्र हो जाता है। 'अनहदनाद' के परिप्रेक्ष्य में जहाँ तक कबीर का प्रश्न हैं, उसके बारे में उल्लेखनीय हैं कि सन्त कबीर योग की इस प्रक्रिया से अज्ञात नहीं थे। उन्होंने अपने अनेक पदों में 'अनहदनाद' की अनुभूति की चर्चा की है। एक जगह कहते हैं कि जब राशि (इड़ा) और सूर्य (पिंगला) का योग होता हैं तब सुषुम्ना नाड़ी खुलती हैं और कुण्डलिनी चक्रों का भेदन करती है, वह शून्य में समाविष्ट होती हैं। तभी अनहद नाद सुनायी पड़ता है। यथा-

ससि हरि सूर दूर दूरंतर, लागी जोग जुग तारी।

उलटे पवन चक्र षट बेधा, मेर डंड सरपूरा ।।

गगन गरजि मन सुंनि समाँनाँ, बाजै अनहद तूरा।

कुछ पंक्तियाँ और विचारणीय हैं जिसमें कबीर दास ने विचित्रनाद (अनहदनाद) का निरूपण किया है। उन्होंने लिखा है कि अनहदनाद में चित्त की अनुरक्ति से तृष्णाओं से मुक्ति मिल जाती हैं।

अवधू ग्यान लहरि धुनि मांडी रे।

सबद अतीत अनाहद राता, इहि विधि त्रिष्णाँ षाँडी ।।

ऐसे ही भाव से युक्त यह साखा भी देखिए -

अनहद बाजै नीभर थरै, उपजै ब्रह्म गियान।

अविगति अंतरि प्रगटै लागै प्रेम धियान।।

10.4. उनमन

उनमनि, उनमनी या उनमन संस्कृत के उन्मनसी (उत्+मनस्+ड़ीय्) शब्द से बना है। इसका सामान्य अर्थ है - अन्यमनस्क, संसार से उदासीन, निर्लिप्त। यानि मन की वह दशा जब वह सांसारिक विषयों से पराङ्मुख होकर ईश्वरोन्मुख हो जाती हैं, उनमन दशा होती है। 'द भोग प्रदीपिका' में इसे मनोन्मनी अवस्था कहा गया हैं -

एकं सृष्टिमयं बीजं, एका मुद्रा च खेचरी।

एको देनो निरालम्बः, एकावस्था मनोन्मनी।।

वहीं पर यह भी बताया गया है कि उन्मन दशा में वायु का संचरण अन्दर की ओर होता हैं, मन चंचलता रहित होकर स्थिर हो जाता है। वास्तव में मन की यही अवस्था मनोन्मनी अवस्था हैं -

मारूते मध्ये संचारे, मनः स्थैर्य प्रजायते।

यो मनः सुस्थिरी भावः सैवावस्था मनोन्ममी।।

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने भी इस शब्द पर विचार किया है। उन्होंने लिखा है कि यह शब्द उस अवस्था की ओर निर्देश करता है जब मन और प्राण दोनों एक हो जाते हैं और इसके फलस्वरूप स्थिरता आ जाती हैं।

कबीर ने भी उन्मनी अवस्था पर विचार किया हैं। कबीर के अनुसार वही योगी है। जो उन्मनी दशा को प्राप्त कर लेता हैं - 'सो जोगी जो धरै उन्मनी ध्यान' इसी संदर्भ में कबीर ने उन्मनी अवस्था का हृदयहारी वर्णन किया है। कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं जिसमें कबीर ने बताया हैं कि परमात्मा की प्राप्ति उन्मनी स्थिति में ही हो सकती हैं -

बाहरि षोजत जनम गँवाया,

उनमनीं ध्यानें घट भीतरि पाया।

एक उदाहरण और देखिए जिसमें उन्मन अर्थात् भागवती चेतना का सुन्दर निरूपय कबीर ने किया है।

अवधु मेरा मन मतिवारा।

उनमनि चढ़ा मगनरस पीवैं, त्रिभूवन भया उजिआरा।

पूरा मिला तबै सुख उपज्यौ, तन की तपनि बुझानी।

कहै कबीर भवबंधन छूटै, जोतिहि जोति समानी।।

एक साखी और द्रष्टव्य हैं जिसमें ईश्वरीय मिलन का संकेत हैं-

मन लागा उन्मन सो, उनमन मनहिं विलग।

लौंन विलंगा पानियां, पानी लौंन विलग।।

10.5. निरंजन

निर्+अंजन से निरंजन शब्द बनता है, जिसका अर्थ हैं अंजन रहित। अब प्रश्न है कि अंजन क्या है? तो अंजन का अर्थ है-काजल, स्याही, रात, माया, विकार आदि। इस प्रकार, निरंजन का अर्थ हुआ मायारहित, विकार रहित। वास्तव में, यह नाम नामरूपगुणादि लौकिक साधनों के द्वारा अग्राह्य परमतत्व ब्रह्म का बोधक हैं। इस संदर्भ में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत भी अवलोकनीय है। वे कहते हैं कि मध्य युग के योग, मंत्र और भक्ति के साहित्य में निरंजन शब्द का बारम्बार उल्लेख मिलता है। नाथ- पन्थ में भी निरंजन शब्द खूब परिचित है। साधारण रूप में निरंजन शब्द निगुर्ण ब्रह्म का और विशेष रूप में शिव का वाचक हैं।

निरंजन का साक्षात्कार बहुत बड़ी साधना का सुफल होता है। यह साक्षात्कार गुरु कृपा के बिना सम्भव नहीं है। पद्मपुराणान्तर्गत कपिल गीता में कहा गया हैं कि -

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।

तस्मिन्मध्यें स्थितं तत्वं प्रदर्शयति सद्गुरुः॥

तारकं च भवेद् ब्रह्मा दण्डकं विष्णुरूच्चेत।

निरंजनस्तवतीत उत्पतिस्थितिकारणम्।

दुर्लभो विषयत्योगों दुर्लभंतत्वदर्शनम्॥

दुर्लभा सहजावस्था सद्गुरोः करूणा बिना॥

- गोरक्ष सिद्धान्त-संग्रह, पृ-33

'गोरख बानी' में थी निरंजन को परिभाषित किया गया है। वहाँ उसे नाम-रूप-उपाधि से परे सर्वव्यापी तत्व बताया गया है-

उदै न अस्त राति न दिन, सरबे सचराचर भावन भिन।

सोई निरंजन डाल न मूल, सब व्यापीक सूषम न स्थूल॥

कबीर दास ने निरंजन को सबसे न्यारा बताया है और कहा है कि कोई विशिष्ट साधक ही अंजन (माया) से मुक्त होकर निरंजन (परमात्मा) से लग पात है-

राँम निरंजन न्यारा रें,

अंजन सकल पसारा रे॥

कहै कबीर कोई बिरला जागै, अजंन छाड़ि निरंजन लागे।

निरंजन को कबीर ने सारतत्त्व माना है। कवि ने सर्वव्यापक भी माना हैं-

अंजन अलय निरंजन सार,

यहै चीन्हि नर करहुँ विचार॥

अंजन अत्तपत्ति बरतने लोई, बिमा निरंजन मुक्ति न होई ।।

अंजन आवैं अंजन जाइ, निरंजन सब घट रहयौ समाई ।।

जोग ध्याँन तप सबै विकार, कहै कबीर मेरे राम अधार ।।

10.6. सुरति-निरति

डॉ. राजदेव सिंह ने 'सुरति' को स्वरूपित करते हुए लिखा हैं कि सुरति शब्द संत-साहित्य का अतिपरिचित और पग-पग पर प्रयुक्त होने वाला शब्द है। परिस्थिति -भेद से यह कई अर्थ भी देता है –

1. स्मृति, याद।

2. श्रवण-विषय।

3. स्मृति शास्त्र।

4. अपने सच्चे स्वरूप की स्मृति।

5. परम प्रिय से अपने सम्बन्ध की स्मृति अर्थात् 'सो हमस्मि' की वृत्ति का स्मरण या उदय।

6. सुरत, अर्थात् स्त्री पुरुष, शक्ति-शक्तिमान, माया-ब्रह्म, प्रिय-प्रिया की केलि-क्रिडा।

7. प्रेम, आसक्ति, अनुरक्ति।

8. सुन्दर रति या परमात्मा विषयक रति, चिन मुख प्रेम, क्योंकि सामान्य स्त्री पुरुष की जड़ोन्मुख अर्थात् स्थूल शारीरिक सुषमाओं एवं आकर्षणों से उत्थित प्रेम अनुभूति रति है और सत् चित्-चित् आनन्द रूप परमप्रिय के प्रति उत्थित प्रेम उक्त लौकिक एवं जड़ोन्मुख रति से विशिष्ट होने के कारण सुरति है।

9. सूरत (अरबी), रूप, आकृति, शक्ल।

10. ध्यान।

डॉ. राजदेव सिंह के अतिरिक्त अन्य विद्वानों ने भी सुरति-निरति पर विचार किया हैं। इन विद्वानों में डॉ. सम्पूर्ण निन्द डॉ. पीताम्बर दत्त बड़ावाता, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, परशुराम चतुर्वेदी, राहुल सांकृत्यामन आदि का नाम लिया जाता है। डॉ. सम्पूर्णनिन्द सुरति को श्रोत का तद्भव रूप मानते हैं। वे इसका अर्थ चित्रवृत्तियों का प्रवाह कहते हैं। डॉ. बड़थ्वाल सुरति को स्मृति से जोड़ते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी मानते हैं कि 'सुरति' मूल रूप में स्मरण या स्मृति ही है, पर यह स्मृति अन्तर में बैठे हुए किसी परम् प्रियतम् की हैं।

'सुरति' शब्द पर डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने बिल्कुल ठीक विचार किया है। उनका विचार हैं कि 'सुरति' की व्युत्पत्ति को लेकर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं, किन्तु इसके तात्पर्य को लेकर विशेष मतभेद नहीं है। सभी विद्वान यह स्वीकार करते हैं कि 'सुरति' अन्तर्मुखी चित्तवृत्ति ही हैं। चित्तवृत्ति सांसारिक विषयों के प्रति-प्रभावित है वह जब ईश्वरोन्मुख हो जाती है। तो उसे 'सुरति' कहते हैं। 'श्रुतिया श्रवण वृत्ति का अन्तर्मुखी होना चिन्तवृत्ति का अन्तर्मुखी होना ही है।

जहाँ तक सुरति के साथ निरति का सम्बन्ध है, उस बारे में ज्ञातव्य हैं कि 'निरति' शब्द निऋति' से बना है जिसका अर्थ है शून्य या आनन्द पद। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी मानते हैं कि सारे बाह्य भ्रमजाल से निरत होकर अन्तर्मुख होने की प्रवृत्ति का नाम ही 'निरति' है। परशुराम चतुर्वेदी मानते हैं कि शब्द एवं सुरति का मिलकर एक हो जाना ही निरति है। सुरति और निरति का एक प्रकार से और अर्थ किया जाता है। सुरति शब्द 'सु' उपसर्ग पूर्व रम् धातु से निर्मित है। 'रम्' शब्द के दो अर्थ -रमण करना, रूक जाना हैं। सुतराम् रति सुरति है और वृत्तियों की चंचलता जिसमें रूक जायं। नितराम् रति निरति है। नितराम् का अर्थ है। पूर्ण रति। इस प्रकार सुरति' आनन्दायी रति और निरति पूर्ण रति का वाचक है। आनन्दायि ही पूर्ण रति की संज्ञा प्राप्त करती है। सुरति के बाद की दशा है निरति; यह साधना की चरम अवस्था हैं।

कबीर दास के साहित्य में 'सुरति निरति' का प्रयोग हुआ हैं। दोनों एक साक्ष्य प्रयुक्त हैं। जहाँ-जहाँ ये प्रयोग में आये हैं, वहाँ-वहाँ ये साधना की चरम अवस्था की ही प्रतीति कराते हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

कबीर दास के साहित्य में 'सुरति निरति' का प्रयोग हुआ हैं। दोनों एक साक्ष्य प्रयुक्त हैं। जहाँ-जहाँ ये प्रयोक में आये हैं, वहाँ-वहाँ ये साधना की चरम अवस्था की ही प्रतीति कराते हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

सुरति समांणी निरति मैं, निरति रही निरधार।

सुरति निरति परचाभया, तब घूले स्वयं दुवार॥

तथा -

सुरति समाँणी निरति मैं, अजषा माँहै जाप।

लेख समाँणाँ अलेख मैं, मूँ आषा माँहे आप।।

10.7. सहज-शून्य

कबीर आदि सन्तों के यहाँ सहज-शून्य शब्द का प्रयोग मिलता हैं। शून्यवाद के प्रवर्तन का श्रेय बौद्ध नागार्जुन को जाता है जिनका समय ईसा की दूसरी शताब्दी माना जाता है। उन्होंने शून्य का प्रयोग परमतत्व के लिए किया था। शून्य को बाद में बौद्धों ने सहज कहना शुरू कर दिया। सिद्धों और नाथों के यहाँ इस शब्द का प्रयोग समान रूप से मिलता है। सिद्ध सरहपाद को सहज साधना का प्रवर्तक बताया गया है। दोनों शब्दों का अर्थ प्रयोग इस प्रकार हैं-

'सह जायेत इति सहजः'

अर्थात् जो जीव के साथ उत्पन्न हो, वह सहज है। जीव की नैसर्गिक और मौलिक विशेषताएँ सहज मानी गयी हैं। लेकिन संत साहित्य में यह शब्द इस रूप में प्रयुक्त नहीं हुआ है। वहाँ पर शब्द इस रूप में प्रयुक्त नहीं हुआ है। वहाँ पर यह पारिभाषिक शब्द के रूप में व्यवहृत हुआ है।

डॉ. धर्मवीर भारती ने डॉ. प्रबोधचन्द्र बागची के मत को उद्धृत करते हुए कहा है कि वे 'सहज' शब्द को 'ताओ' शब्द का अनुवाद मानते है। यह प्राचीन चीनी धर्म का मूल सिद्धान्त है। 'भोग' नाम के किसी चीनी आचार्य ने दक्षिण भारत में आकर काया की अमरता का और गुह्य साधना करना शुरू किया था। उसी से 'सहज' शब्द ग्रहण किया गया। 'विष्णु पुराण' में 'सहज सिद्धि' का उल्लेख है, जो स्वभावतः प्राप्त सिद्धि के अर्थ में प्रयुक्त है और आगे चलकर बौध्दों ने कहा कि सहज प्रज्ञा के उपाय और आगे चलकर बौध्दों ने कहा कि सहज प्रज्ञा के उपाय और

सहगमन से उत्पन्न तत्त्व सहज है। बौद्ध दर्शन में ही 'शून्य' और करूणा को परस्पर पूरक बताते हुए दोनों का ऐक्य धोतित करने के लिए भी सहज शब्द का प्रयोग किया था (शशिकला पाण्डेय, संत साहित्य की पारिभाषिक शब्दावली, पृ.304 से)

'सुंनि' शून्य का तद्भव रूप है जिसका अर्थ है -खाली, रिक्त, निर्जन, आकाश, ब्रह्म आदि। संत-साहित्य में शून्य ब्रह्मा का वाचक है। संतों ने शून्य शब्द सिद्धों से ग्रहण किया है और सिद्धों ने बौद्ध दर्शन से। बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन तो शून्यवाद के प्रवर्तक ही थे। उन्होंने वर्णनातीत पदार्थ को शून्य माना है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत इस सन्दर्भ में विशेष उल्लेखनीय है। वे लिखते है कि नाथ पंथी लोग अपने सबके ऊपरी सहस्रार चक्र को 'शून्य चक्र' कहते हैं। उनके मत से जब जीवात्मा नाना प्रकार की यौगिक क्रियाओं द्वारा इस चक्र में पहुँचता हैं तो वह समस्त द्वन्द्वों से ऊपर उठता है और केवल रूप में विराजता है। यह शून्यावस्था हैं जिसमें आत्मा को और किसी प्रकार की अनुभूति नहीं होती। न सुख की, न दुःख की, न राग की, न द्वेष की, न हर्ष की, न अमर्ष की; इन समस्त द्वन्द्वों से रहित केवल अवस्था को शून्यावस्था कहना अनुचित नहीं है।

कबीर ने सहज और शून्य को परमतत्त्व के पर्याय के रूप में प्रयोग किया है। द्रष्टव्य हैं -

हिंडोलनाँ तहाँ झूलै आतम राँम।

सहज सुंनि कौ नेहरौ, गगन मंडल सिरमौर।

दोऊ कुल हम आगरी, जो हम फूलैं हिंडोल।।

अन्यत्र भी पद में कबीर ने सहज-शून्य की अवस्था का विस्तार से वर्णन किया हैं। वे कहते हैं -

कदली पुहुप दीप परकास। दिया पंकज महिं लिया निवास।।

द्वादस दल अभिअंतर मंत। जहाँ पउढ़े स्त्री कवलाकंत।।

अरघ उरधबिच लाइलै अकास। सुनि मंडल महिं कदि परमासु।।

जहाँ सूरज नाहीं चंद। आदि निरंजन करै आनंद।।

जो ब्रहमांड पिंडि सो जानु। मानसरोवर करि असनानु।।

सोहं हंसा ताकौ जाप। ताहि न लिय पुनि अस पाप।।

अमिलन मिलन घाम नहि छाँहा। दिवस नराति कछू है ताहाँ।।

हरियाँ टरै न आवै जाइ। सहज सुन्ति महि रहयो समाइ।।

कबीर ने सहज को लक्षित करके कई साखियां लिखी हैं। इनसे सहज के स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है। कुछ साखियाँ द्रष्टव्य हैं -

सहज सहज सबकौ कहैं, सहजन चीन्हैं कोइ।

जिन सहजैं विषियोतजी, सहज कही जै सोई।।

सहज सहज सबकै रहे, सहज न चीन्हे कोइ।

पांचू राखै परसती, सहज कही जै सांई।

इतना ही नहीं, कबीर ने सहज समाधि (सन्तो, सहज समाधि भली) को भली माना है और उसी को जोगी बताया हैं जिके चिन्त में सहज भाव हैं -

सो जोगी जाकै सहज भाइ, अमल प्रीति की भीख खाइ ।।

ग्याँन मेथली सहज भाइ, बंक मालि कौ रस खाइ ।।

10.8. नाद-बिन्दु

'नाद-बिन्दु' तन्त्र-शास्त्र के शब्द हैं। कबीर आदि सन्तों ने इनका ग्रहण तन्त्र शास्त्र से ही किया है। तन्त्र-शास्त्र में बताया गया है कि शिव परमतत्त्व है। शिव से शक्ति का, शक्ति से नाद का और नाद से बिन्दु का उदय हुआ है -

निर्गुणः सगुणश्चेति शिवों ज्ञेयः सनातनः।

निर्गुणः प्रक तोन्यः सगुणः सकलः स्मृतः ।।

सच्चिदानन्द विभावात्सकलारत्परमेश्वरात्।

आसीत् शक्तिस्ततो नादो नादात् बिन्दु समुद्भवः ।।

शिव शक्ति, शक्ति और नाद और नादत या बिन्दु के उक्त सम्बन्धों को ध्यान में रखकर आर्चाय हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा था कि सीधी भाषा में यों समझाया गया है कि निर्गुण शिव विशुद्ध चैतन्य है और सगुण उपाधि युक्त। उपाधि युक्त चैतन्य से उपाधि युक्त शक्ति उत्पन्न होती है। इन दोनों के संयोग से विश्व में जो एक विक्षोभ होता हैं, वहीं नाद है और उस विक्षोभ का क्रियाशील का क्रियाशील होना ही बिन्दु हैं। डॉ. राम चन्द्र तिवारी इस विषय में लिखते हैं कि नाद और बिन्दु शिव और शक्ति से ही उत्पन्न होने वाले तत्व हैं। शिव और शक्ति से ही सम्पूर्ण विश्व का अविभाव हुआ हैं अतः यह समय ब्रहमाण्ड नाद बिन्दू रूप ही हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि कबीर आदि सारे सन्त नाम बिन्दू के स्वरूप और रहस्य से सम्पूर्ण परिचित थे। वे यह थी जानते थे कि नाद बिन्दू रूप इसी शरीर से गोविन्द को जाना जा सकता हैं-

नादाहि व्यंद कि व्यंवहि नाद,

नादहिं व्यंद मिलै गोब्यंद ।।

तथा

नाद ब्यंद की नाव री, राँमनाम कनिहारप।

कहै कबीर गुँण गाइ ले, गुर गँभि उतरौ पार ।।

10.9. औंधा कुआँ

सन्त साहित्य में दसवें द्वार या ब्रह्म रूध्र का व्यापक प्रयोग मिलता है। कबीर के यहाँ भी यह शब्द अधिकता से प्रयुक्त है। इसी के लिए औंधा-कुआँ, उरध कूप, अधो कूप, उलटा कुआँ आदि शब्दों का व्यवहार मिलता है।

आँधा-कुआँ की स्थिति के बारे में हठयोग साधना में कहा गया हैं कि शरीर के ऊपरी भाग, जिसे ब्रह्माण्ड कहा जाता है, एक छेद हैं जिसे ब्रह्माण्ड रून्ध्र या कूप कहते हैं, उसका मुख नीचे की और रहता है। यही आँधा-कुआँ है। इसी में अमृत का वास है। साधक सुषुम्ना मार्ग से कुण्डलिनी के द्वारा इस औंधे कुएँ में झरने वाले अमृत का पान करता है।

कबीर ने भी इस औंधे कुएँ की चर्चा एक साखी में की हैं। वे कहते हैं -

आकासे मुखि आँधा कुवाँ, पातासे पनिहारि।

ताका पाँणी को हंसा पीवै, बिरला आदि विचारि॥

अर्थात् आकाश में ब्रह्मरूध्र औंधे कुएँ की तरह है और पाताल (मूलाधार) में पनिहारिन (कुण्डलिनी) हैं। ऐसे कुएँ का पानी (अमृत रस) कोई विरला साधक ही पान कर सकता हैं।

10.10. सारांश

इस इकाई में सन्त कबीरदास ने अपनी अनेक साखियों में इस 'अजपा जाप' की महत्ता का वर्णन किया हैं। कबीर ने अपने पदों में 'अनहदनाद' की अनुभूति की चर्चा की है। कुछ पंक्तियाँ और विचारणीय हैं जिसमें कबीर दास ने विचित्रनाद (अनहदनाद) का निरूपण किया है। उन्होंने लिखा है कि अनहदनाद में चित्त की अनुरक्ति से तृष्णाओं से मुक्ति मिल जाती हैं। इसके अलावा निरंजन का साक्षात्कार बहुत बड़ी साधना का सुफल होता है। यह साक्षात्कार गुरु कृपा के बिना सम्भव नहीं है। आगे यह भी बताते हैं कि कबीर दास के साहित्य में 'सुरति निरति' का प्रयोग को सुविस्तार रूप से बता या गया है। उन्होंने शून्य का प्रयोग परमतत्व के लिए किया था। इसके अलावा नद-बिन्दु, औंधा कुआँ जैसे अनेक प्रकार के पारिभाषिक शब्दों को इस इकाई में सुविस्तार रूप में उदाहरण के सहित विश्लेषण किया गया है।

10.11. बोध प्रश्न

1. सन्त कबीर दास के पारिभाषिक शब्दावलियों को उदाहरण सहित विश्लेषण कीजिए।

2. इन पर टिप्पणी लिखिए।

    1. अनहदनाद
    2. उनमन
    3. निरंजन
    4. सुरति-निरति
    5. सहज-शून्य
    6. नाद-बिन्दु
    7. औंधा कुआँ

10.12. सहायक ग्रंथ

1. कबीर की विचार धारा गोविन्द त्रिगुणायत, साहित्यनिकेतन, कानपुर।

2. सन्तों की सांस्कृतिक संसुति डॉ. राज रतन पाण्डेय, उपकार प्रकाशन, दिल्ली।

3. कालजयी कबीर - सम्पादक हर महेंद्र सिंह बेदी, गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी, अमृतसर।

4. कबीर साहित्य की परख परशुराम चुतर्वेदी, भारती भण्डार, इलाहाबाद।

5. कबीर हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

6. कबीर व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धांत सरनाम सिंह शर्मा, भारतीय शोध संस्थान, गुलाबपुरा।

7. संतों राह दुओं हम दीठा सम्पादक भगवानदेव पाण्डेय, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

8. आधुनिक कबीर डॉ. राजदेव सिंह, लोक भारती, इलाहाबाद।

9. कबीर समग्र प्रथम खण्ड, द्वितीय खण्ड प्रो. युगेश्वर हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी।

10. कबीर दर्शन रामजी लाल सहायक, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

डॉ. सूर्य कुमारी. पी.

11. गुरुदेव कौ अंग

11.0. उद्देश्य

कबीर के ग्रंथ साखी, सबद, रमैनी बहुमूल्य हैं। उनमें कबीरदास ने भक्ति भावना का सार, समाज की स्थिति, लोगों की आलोचना पद्धति, आडम्बरताएँ, अन्धविश्वासों के बारे में बताया है। साखी में रचित अंशों हम इस द्वितीय खण्ड में पढ़ेंगे। इस इकाई में गुरुदेव कौ अंग के बारे में प्रतिपादित गुरु की महिमा, शिक्षण पद्धति, दोहों के संदर्भ व्याख्या आदि के बारे में पढ़ेंगे।

रूप रेखा

11.1. प्रस्तावना

11.2. गुरुदेव कौ अंग का मूल-भाव

11.3. कबीर की 'गुरुदेव कौ अंग' के आधार पर शिक्षण प्रक्रिया की विवेचना

11.4. गुरुदेव कौ अंग'संदर्भ सहित व्याख्या

11.5. सारांश

11.6. बोध प्रश्न

11.7. सहायक ग्रंथ

11.1. प्रस्तावना

गुरुदेव कौ अंग" में कबीर दास जी ने गुरु की महिमा का गुणगान अपने दोहों के माध्यम से किया है। इन दोहों में बताया गया है कि शिष्य को यदि सच्चा गुरु मिल जाता है तो ऐसा गुरु उसे ज्ञान रूपी चक्षु देकर इस संसार सागर से पार करने में सहायता करता है। सच्चे गुरु के कारण ही शिष्य को अपने भीतर स्थित उस परमब्रह्म का ज्ञान होता है।

पाठ का सारांश पहले पद में कबीर ने परमात्मा को सृष्टि के कण-कण में देखा है, ज्योति रूप में स्वीकारा है तथा उसकी व्याप्ति चराचर संसार में दिखाई है। इसी व्याप्ति को अद्वैत सत्ता के रूप में देखते हुए विभिन्न उदाहरणों के द्वारा रचनात्मक अभिव्यक्ति दी है। कबीरदास ने आत्मा और परमात्मा को एक रूप में ही देखा है। गुरु ही हैं जो भीतर से हाथ का सहारा देकर, बाहर से चोट मार-मारकर और गढ़-गढ़ कर शिष्य की बुराई को निकालते हैं। गुरु समान दाता नहीं, याचक शीष समान। तीन लोक की सम्पदा, सो गुरु दीन्ही दान॥ भावार्थ:- गुरु के समान कोई दाता नहीं और शिष्य के सदृश याचक नहीं।

11.2. गुरुदेव कौ अंग का मूल-भाव

भारतीय संत परंपरा में औ4 विशेषकर निर्गुण भक्ति परंपरा में संतों द्वारा गुरु को विशेष महत्व दिया गया है। इस अंग में कबीर ने भी गुरु की महत्ता का वर्णन किया है। वह बताते हैं कि गुरु के समान कोई नहीं है। उनके समान अपना हितौषी और सगा कोई नहीं है। इसलिए मैं अपना तन-मन और सर्वस्व गुरु को समर्पित करता हूँ।

जो एक ही क्षण में अपनी कृपा से मनुष्य को देवता बनाने में समर्थ है , उनकी महिमा अनंत है। इसे वही समझ सकता है , जिसके ज्ञान रूपी चक्षु खुल गए हैं। गुरु की कृपा जिस व्यक्ति पर होती है , उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। यहाँ तक कि कलयुग में व्याप्त पाप और दुष्कर्मों का प्रभाव भी उस पर नहीं पड़ता।

गुरु ही अपने शिष्य के आमदार ज्ञान रूपी ज्योति जलाने में समर्थ है। गुरु ही सच्चा शूरवीर है। गुरु के द्वारा ज्ञान पप्राप्त होते ही मनुष्य सांसारिक माया-बंधनों से मुक्ता हो जाता है। ऐसा गुरु मुश्किलों से प्राप्त होता है परंतु यदि दुर्भाग्यवश किसी व्यक्ति को कोई विद्वान गुरु प्राप्त नहीं होता तो ऐसे मनुष्य की कभी भी मुक्ति नहीं हो सकती। बल्कि वह गुरु तो अपने साथ अपने शिष्य को भी लेकर डूब जाता है।

केवल गुरु का मिलना पर्याप्त नहीं है , बल्कि शिष्य के शुद्ध अंतः करण की भी उतनी ही आवश्यकता है। शिष्य का हृदय विशुद्ध होना चाहिए। क्यों कि यदि शिष्य के हृदय में कोई विकार भाव है तो गुरु कि कृपा होने पर भी शिष्य को कओई विशेष लाभ नहीं होता है।

अपनी इसी विशेषता के कारण गुरु का स्थान भगवान के स्थान के समान है , अर्थात गुरु और भगवान एक समान है। जिन लोगों के पास कोई सच्चा गुरु नहीं होता , वे लोग कितनी भी तप साधना कर ले , उन्हें इसका कोई लाभ नहीं मिलता।

सभी प्रकार से समर्थ गुरु मिलने पर ही समस्त सांसारिक और मानसिक दु:ख नष्ट हो पाते हैं। और आत्मा पवित्र और निर्मल होकर प्रभु भक्ति में रम जाती है। इस प्रकार गुरु की महिमा अंम्त और निर्वचनीय है।

11.3. कबीर की 'गुरुदेव कौ अंग' के आधार पर शिक्षण प्रक्रिया की विवेचना

मध्यकालीन दौर के होते हुए भी कबीर अपने आधुनिक विचारों के कारण आज भी स्मरणीय हैं। अपनी साखियों एवं पदों में अपनी क्रांतिधर्मिता के कारण कबीर उस समय भी उतने ही प्रासंगिक थे जितने कि आज हैं या यह कहना ज्यादा उचित होगा कि कबीर आज के बाजारवाद और उपभोक्तावादी संस्कृति के दौर में जहाँ हर चीज अर्थ केंद्रित हो गयी है वहां उनकी प्रासंगिकता और बढ़ जाती है, आज स्थितियां और भी गंभीर हो गयी हैं। भक्तिकाल के उस समाज में सामाजिक कुरीतियाँ, पाखण्ड, धार्मिक अन्धविश्वास और जातिगत भेदभाव फैला हुआ था। कबीर ने इन सब का विरोध किया और बिना किसी डर के अपनी बात कही। जो आधुनिकता हम उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में देखते हैं वह कबीर के यहाँ हमें बहुत पहले दिखाई पड़ती है। 'गुरुदेव कौ अंग' में भी कबीर जिन विचारों को लेकर सामने आते हैं वह एक आदर्श स्थिति है।

कबीर का मत सतगुरु की तलाश में रहा है, वे इस जगत में गुरु को राह दिखाने वाला मानते हैं। उनके लिए गुरु सत्य की ज्योति है जो अंधकार से प्रकाश की ओर लाने में और पुरातन को नवीन बनाने में एकनिष्ठता रखता है। कबीरएक जगह कहते हैं कि –

तोरा मोरा मनवा कैसे एक होय रे।
तूँ कहता कागद की लेखी मैं कहता आँखन की देखी॥

अर्थात प्रत्यक्ष ज्ञान की जो महत्ता है वह शास्त्र पढ़ लेने से नहीं हो सकती है इसी को कबीर ने 'आँखन देखी" कहा है, वर्तमान समाज में यही पक्ष गुरु-शिष्य परम्परा में होना चाहिए केवल किताबी ज्ञान की अपेक्षा हमें समाज के लौकिक ज्ञान की ओर देखना चाहिए जो व्यावहारिक हो।

कबीर निरक्षर थे लेकिन उनके सांसारिक ज्ञान में विराटता थी। वे गुरु-महिमा और उसके प्रति अगाध श्रद्धा का भाव दिखाते हुए ही यह भी कहते हैं कि

"सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार।
लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावणहार॥"

जबकि आज की शिक्षा-व्यवस्था में कहीं न कहीं शिष्य के लिए गुरु-महिमा का वही अर्थ नहीं रह गया है। लोग लोभ लालच के भाव से ही आज अपने सम्बन्धों को निभा रहे हैं। कहना न होगा कि कबीर जिस गुरु की बात करते हैं वह 'आध्यात्मिक गुरु' हैं साथ ही, इन सब के मध्य वे ऐसे सूत्र देते हैं जिसमें शिक्षण प्रक्रिया के तत्व को ढूंढ लेना मुश्किल नहीं है।

"गुरु कुम्हार शीष कुंभ है, गढ़ गढ़ काढै खोट।
भीतर हाथ सहारि दे , बाहर बाहै चोट॥"

यानी तात्पर्य यह है कि सच्चा गुरु शिष्य को एक घड़े की तरह तराशता है। जिस प्रकार एक कुम्हार घड़े बनाते समय कच्ची मिट्टी को बड़ी ही चतुराई से तराशता है वैसे ही एक गुरु शिष्य के मन मस्तिष्क को तराशता है। उसे अपने विचारों से मनुष्यता का पाठ पढाता है ताकि वह सच्चे अर्थ में मनुष्य बन सके। शिष्य उस कच्ची मिट्टी की भांति ही होता है जिसे गुरु तराशता है।

कबीर शास्त्र जनित ज्ञान का विरोध करते हैं। आज के समय में देखा जाय तो जिस शास्त्र जनित ज्ञान की बात की जा रही है, कबीर किसी भी दृष्टि से उस विचारधारा के पैरोकार नजर नहीं आते। कबीर शास्त्र से ज्यादा जीवनानुभव से सीखने पर बल देते हैं। आज शिक्षा व्यवस्था का बाजारीकरण हो गया है। गुरु की जगह शिक्षक ने और शिष्य की जगह छात्र ने ले लिया है। बदलते परिवेश में जिस तरह से लोग सिमटते जा रहें है उसी तरह गुरु, शिष्य जैसे शब्दों का भी अर्थ संकोच हो गया है। शिक्षा के व्यवसायीकरण ने शिक्षा को अप्राप्य बना दिया है ऐसे में एक बहुत बड़ा तबका शिक्षा से वंचित रह जाता है जिसके उन्मूलन के लिये सरकार को शिक्षा को मौलिक अधिकार की श्रेणी में रखना पड़ता है फिर भी स्थिति चिंतनीय है। आज की व्यवस्था में संबंधों का जो बदलाव आया है उसने गुरु–शिष्य के संबंधों को भी बदल कर रख दिया है। कबीर जिस गुरु की बात करते हैं वैसा गुरु इस दौर में मिलना मुश्किल है साथ ही जिस तरह का समर्पण भाव हम शिष्य में खोजते या चाहते हैं वह भी आज के दौर में मिलना मुश्किल है।

कबीर का यह दोहा आज के दौर में कितना सटीक जान पड़ता है –

जाका गुरु भी अंधला, चेला खड़ा निरंध।
अंधा अंधा ठेलिया, दुन्यूं कूप पडंत॥

गुरु का काम है स्वयं आगे चलकर शिष्य का मार्गदर्शन करना। कबीर यहाँ व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि जिसका गुरु स्वयं अज्ञानी है उसका शिष्य तो घोर अज्ञानी होगा ही जब एक अंधा दूसरे अंधे को मार्ग दिखाता हुआ चलता है तो दोनों कुँए में गिर पड़ते हैं, अर्थात भवसागर में पड़े रहकर नष्ट हो जाते हैं। आज के सन्दर्भ में इस दोहे पर दृष्टिपात करें तो देख सकते हैं कि शिक्षकों और छात्रों की एक लम्बी फेहरिश्त हमें दिख जाती है जहाँ दोनों चाटुकारिता के शिकार हैं। इस चाटुकारिता के कारण शिक्षक और छात्र दोनों एक-दुसरे को छलते हुए नजर आते हैं। छद्म आस्था लिए छात्र की अवसरवादिता इस दौर में बढती ही जा रही है। ऐसे में कबीर जिस गुरु की बात करते हैं और एक शिष्य में जिस समर्पण भाव की वकालत करते हुए नजर आते है वह आज के परिवेश में विरले ही मिलते हैं।

कबीर की दृष्टि में गुरु 'गोविन्द' से भी बढ़कर है क्योंकि –

'हरि रुंठे गुरु ठौर है , गुरु रूंठे नहिं ठौर।'

कबीर गुरु को ही सर्वप्रथम आदर-सम्मान देते हैं और गुरु रूपी प्रकाश से ही मानव जीवन का अंधकार दूर हो सकता है ऐसा मानते हैं। जब वे कहते हैं कि

"सुखिया सब संसार है खाए और सोए।
दुखिया दास कबीर है गाए और रोए॥"

तो इससे उनके विचारों में आधुनिक सभ्यता की मनोवृति का बोध होता है जो संसार को समरसता में देखना चाहता है। कबीर का ज्ञान-मार्ग आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था पर गहरी चोट करता है, हमें आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था को गुरु-शिष्य परम्परा के नि:स्वार्थ बंधन से देखना चाहिए ताकि समाज में भेदभाव की संस्कृति को दूर किया जा सके। जैसा कि कबीर कहते भी हैं –

"नाँ गुर मिल्या न सिष भया, लालच खेल्या डाव।
दुन्यूं बूड़े धार मैं, चढि पाथर की नाव॥"

कबीर कहते हैं एक सच्चे गुरु और एक सच्चे शिष्य का होना जरूरी है, उनमें नि:स्वार्थ भावना होनी चाहिए क्योंकि स्वार्थ रहित गुरु शिष्य का सम्बन्ध ही समाज के लिए बेहतर हो सकता है। आज के समय में हम देखते हैं कि छात्र अपने स्वार्थ हित देख कर एक ऐसे गुरु की तलाश करता है जो उसे ज्यादा लाभ पहुंचा सकता है, ठीक उसी प्रकार गुरु भी अपने शिष्यों की संख्या बढ़ाना चाहता है जिससे स्वार्थ हित सध सके और व्यावसायिक कारोबार चल सके। इस तरह शिक्षा एक व्यापार का माध्यम बनता जा रहा है और अंत में जो हमें देखने को मिलता है वह यह कि छात्र एक बनावटी चकाचौंध की दुनिया में भटकता रहता है। साथ ही, कबीर शिष्य के स्वभाव पर बात करते हुए कहते हैं कि -

कबीर की प्रासंगिकता इस बात से स्पष्ट हो जाती है कि उन्हें हम वर्तमान दौर में भी शिक्षा जैसे विषयों से जोड़कर देख रहे हैं क्योंकि आज का पूरा शिक्षातंत्र बाजारीकरण जैसे मूल्यों और रोजगार आदि से जुड़ गया है जिस कारण उसमें भक्तिकालीन परम्परा का बोध और गुरु-शिष्य की आदर्श भावना नहीं रह गई है। इन सब बातों के आधार से ही

आधुनिक समय में भक्तिकालीन संत कवि कबीरदास का भावबोध झलकता है जिसमें हमें आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था को गुरु-शिष्य परम्परा के निःस्वार्थ बंधन से देखना चाहिए ताकि समाज में भेदभाव की संस्कृति को दूर किया जा सके। आज की आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था में जो स्वार्थ भावना और गुरु के प्रति आस्था का प्रश्न व्यावसायिक तौर तरीकों में दीखता है वह सब नहीं होना चाहिए। यहीं से गुरु-शिष्य की परम्परा और शिक्षा-व्यवस्था की नवीन पहल की शुरुआत होती है। हमें इस दौर में कबीर के 'गुरुदेव कौ अंग' से आधुनिक दृष्टि में शिक्षा-व्यवस्था को समझने का मौका मिलता है, वर्तमान में इसी से गुरु-शिष्य परम्परा के आदर्श को आगे बढ़ाने में मदद मिलेगी जैसा कि हम उनके दोहों में देखते हैं। कबीर इस रूप में ही गुरु-शिष्य परम्परा की भारतीय जमीन पर खड़े नजर आते हैं।

11.4. गुरुदेव कौ अंग के दोहों की व्याख्या

कबीरदास रचित गुरुदेव कौ अंग के कुछ महत्वपूर्ण दोहों की व्याख्या कर रहे हैं। जो प्रतियोगी परीक्षाओं की दुष्टि से अति महत्वपूर्ण है। तो चलिए समझते है :

दोहा : 1 **सतगुरु सवांन को सगा , सोधी सईं न दाति।**
हरिजी सावां न को हितू , हरिजन सईं न जाति ॥

शब्दार्थ : सवांन = समान ; सोधी = साधु ; सई = समान ; दाति = दाता ; हरिजन = प्रभु-भक्त

प्रस्तावना : यह कबीर दास की रचना हैं। कबीरदास भक्ति काल के संत कवि हैं। वे निर्गुण भक्ति-शाखा के श्रेष्ट कवि हैं। वे पढे-लिखे नहीं थे। परंतु सज्जन-संगत्य और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उन्होंने रचनायें की हैं। उनकी रचनाओं का संकलन 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध है। बीजक के तीन भाग हैं – (1) साखी (2) सबद और (3) रमैनी। सखियों में दोहे हैं। इनमें उपदेश प्रद बातें मिलती हैं। 'सबद' में बाह्याडंबरों के प्रति उनका तीव्र आक्रोश मिलता है। 'रमैनी' में उनके सिद्धांतों का विशद रूप देखते हैं। उनकी भाषा सधुक्कड़ी कही जाती है।

अर्थ/व्याख्या :

संसार में सतगुरु के समान कोई अपना त हितैषी नहीं है। प्रभु की खोज करने वाले साधु के समान कोई दाता नहीं है। क्योंकि गुरु अपना समस्त ज्ञान अपने शिष्य पर उड़ेल देता है।

ऐसे दयालु प्रभु के समान हमारा कोई हितौषी नहीं है। और प्रभु-भक्तों के समान कोई जाति नहीं है। प्रभु का जो भक्त होता है , वही सभी मनुष्यों में श्रेष्ठ होता है।

दोहा : 2 **बलिहारी गुरु आपणौ , द्यौं हाड़ी के बार।**
जिनि मानिष तैं देवता , करत न लागी बार ॥

शब्दार्थ : आपणौ = अपने ; हाड़ी = शरीर

प्रस्तावना : यह कबीर दास की रचना हैं। कबीरदास भक्ति काल के संत कवि हैं। वे निर्गुण भक्ति-शाखा के श्रेष्ट कवि हैं। वे पढे-लिखे नहीं थे। परंतु सज्जन-संगत्य और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उन्होंने रचनायें की हैं। उनकी रचनाओं का संकलन 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध है। बीजक के तीन भाग हैं – (1) साखी (2) सबद और (3) रमैनी।

सखियों में दोहे हैं। इनमें उपदेश प्रद बातें मिलती हैं। 'सबद' में बाह्याडंबरों के प्रति उनका तीव्र आक्रोश मिलता है। 'रमैनी' में उनके सिद्धांतों का विशद रूप देखते हैं। उनकी भाषा सधुक्कड़ी कही जाती है।

अर्थ/व्याख्या : कबीर दास जी *कह* रहे हैं कि मैं अपने शरीर को अपने गुरु के ऊपर बार-बार न्योछावर करता हूँ। मैं उन पर बलि-बलि जाता हूँ , जिन्होंने मुझे अत्यंत अल्प समय में ही मनुष्य से देवता बना दिया है।

दोहा : 3 **सतगुर की महिमा, अनँत, अनँत किया उपगार।**
लोचन अनँत उघाड़िया, अनँत दिखावणहार॥3॥

शब्दार्थ : लोचन अनंत = प्रज्ञाचक्षु ; अनंत = ब्रह्मा

प्रस्तावना : यह कबीर दास की रचना हैं। कबीरदास भक्ति काल के संत कवि हैं। वे निर्गुण भक्ति-शाखा के श्रेष्ट कवि हैं। वे पढे-लिखे नहीं थे। परंतु सज्जन-संगत्य और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उन्होंने रचनायें की हैं। उनकी रचनाओं का संकलन 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध है। बीजक के तीन भाग हैं – (1) साखी (2) सबद और (3) रमैनी। सखियों में दोहे हैं। इनमें उपदेश प्रद बातें मिलती हैं। 'सबद' में बाह्याडंबरों के प्रति उनका तीव्र आक्रोश मिलता है। 'रमैनी' में उनके सिद्धांतों का विशद रूप देखते हैं। उनकी भाषा सधुक्कड़ी कही जाती है।

अर्थ/व्याख्या : इस में कबीरदास जी कह रहे हैं कि सतगुरु कि महिमा अपरंपार है। उन्होंने मेरे ऊपर महान उपकार किया है। उन्होंने मेरे ज्ञान के चक्षु खोल दिए हैं। दिव्य दृष्टि प्रदान कर दी है , जिसके कारण उस अनंत ब्रह्म के दर्शन हो गए ।

दोहा : 4 **राम नाम के पटतरै, देबे कौ कुछ नाहिं।**
क्या ले गुर सन्तोषिए, हौंस रही मन माहिं॥4॥

शब्दार्थ : पटतरै = बदले में ; संतोषिए = संतुष्ट करूँ ; हौस = प्रबल इच्छा

प्रस्तावना : यह कबीर दास की रचना हैं। कबीरदास भक्ति काल के संत कवि हैं। वे निर्गुण भक्ति-शाखा के श्रेष्ट कवि हैं। वे पढे-लिखे नहीं थे। परंतु सज्जन-संगत्य और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उन्होंने रचनायें की हैं। उनकी रचनाओं का संकलन 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध है। बीजक के तीन भाग हैं – (1) साखी (2) सबद और (3) रमैनी। सखियों में दोहे हैं। इनमें उपदेश प्रद बातें मिलती हैं। 'सबद' में बाह्याडंबरों के प्रति उनका तीव्र आक्रोश मिलता है। 'रमैनी' में उनके सिद्धांतों का विशद रूप देखते हैं। उनकी भाषा सधुक्कड़ी कही जाती है।

अर्थ/व्याख्या :कबीरदास जी कह रहे हैं कि गुरु ने राम-नाम का जो अमूल्य मंत्र दिया है। उसके बदले में मेरे पास देने के लिए कुछ नहीं है। क्यों कि उस राम-नाम के सम्मुख सभी वस्तुएं तुच्छ है। फिर भला मैं ऐसा क्या देकर मेरे गुरुदेव को संतुष्ट करूँ। यही प्रबल इच्छा मेरे मन में ही रह जाती है।

दोहा : 5 **सतगुर की महिमा, अनँत, अनँत किया उपगार।**
लोचन अनँत उघाड़िया, अनँत दिखावणहार ॥3॥

शब्दार्थ : साछ = साक्षी ; बाछ = रक्षक

प्रस्तावना : यह कबीर दास की रचना हैं। कबीरदास भक्ति काल के संत कवि हैं। वे निर्गुण भक्ति-शाखा के श्रेष्ट कवि हैं। वे पढे-लिखे नहीं थे। परंतु सज्जन-संगत्य और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उन्होंने रचनायें की हैं। उनकी रचनाओं का संकलन 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध है। बीजक के तीन भाग हैं – (1) साखी (2) सबद और (3) रमैनी। सखियों में दोहे हैं। इनमें उपदेश प्रद बातें मिलती हैं। 'सबद' में बाह्याडंबरों के प्रति उनका तीव्र आक्रोश मिलता है। 'रमैनी' में उनके सिद्धांतों का विशद रूप देखते हैं। उनकी भाषा सधुक्कड़ी कही जाती है।

अर्थ/व्याख्या :मैं सतगुरु पर प्राण-प्रण से न्योछावर हूँ। एवं अपने हृदय को साक्षी करके कहता हूँ कि कलयुग अर्थात माया-मोह जैसे प्रपंच मुझसे लड़ व जूझ रहे हैं। पापों का और मन का संघर्ष चल रहा है , किंतु मेरे गुरुवर इतने शक्तिशाली हैं कि वह मेरी रक्षा कर रहे हैं। अतः पाप-पुंज मुझे परास्त नहीं कर सकते।

विषय : इसमें मानवीकरण अलंकार प्रस्तुत हुआ है।

दोहा : 6 **सतगुर लई कमाँण करि, बाँहण लागा तीर।**
एक जु बाह्यां प्रीति सूँ, भीतरि रह्या सरीर॥6॥

शब्दार्थ : कमाँण = धनुष ; बाँहण लागा = बरसाने लगा

प्रस्तावना : यह कबीर दास की रचना हैं। कबीरदास भक्ति काल के संत कवि हैं। वे निर्गुण भक्ति-शाखा के श्रेष्ट कवि हैं। वे पढे-लिखे नहीं थे। परंतु सज्जन-संगत्य और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उन्होंने रचनायें की हैं। उनकी रचनाओं का संकलन 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध है। बीजक के तीन भाग हैं – (1) साखी (2) सबद और (3) रमैनी। सखियों में दोहे हैं। इनमें उपदेश प्रद बातें मिलती हैं। 'सबद' में बाह्याडंबरों के प्रति उनका तीव्र आक्रोश मिलता है। 'रमैनी' में उनके सिद्धांतों का विशद रूप देखते हैं। उनकी भाषा सधुक्कड़ी कही जाती है।

अर्थ/व्याख्या : सतगुरु ने हाथ में धानुष धरण कर लिया और तीरों की वर्षा करने लगे अर्थात अपने शिष्य को ज्ञान के उपदेश देना प्रारंभ कर दिया। इन बाणों में से एक बण (प्रेम का बाण) इस प्रकार प्रेमपूर्वक चलाया , जिसने अंतर हृदय को भेदकर घर कर लिया। हृदय की गहराई तक वह बाण समस्त अंधकार रूपी अवरणों को भेदकर गया है। इसलिए यह हृदय में जाकर रह गया , यह बाण था- प्रेम का।

विषय : रूपक अतिशयोक्ति अलंकार (केवल उपमान पक्ष धनुष बाण का उल्लेख होने से)

दोहा : 7 **सतगुर साँवा सूरिवाँ, सबद जू बाह्या एक।**
लागत ही में मिलि गया, पढ़ा कलेजै छेक ॥7॥

शब्दार्थ : सूरिवाँ = सूरमा , वीर ; बाह्या = मारा ; मैं = अहंकार

प्रस्तावना : यह कबीर दास की रचना हैं। कबीरदास भक्ति काल के संत कवि हैं। वे निर्गुण भक्ति-शाखा के श्रेष्ट कवि हैं। वे पढे-लिखे नहीं थे। परंतु सज्जन-संगत्य और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उन्होंने रचनायें की हैं। उनकी रचनाओं का संकलन 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध है। बीजक के तीन भाग हैं – (1) साखी (2) सबद और (3) रमैनी।

सखियों में दोहे हैं। इनमें उपदेश प्रद बातें मिलती हैं। 'सबद' में बाह्याडंबरों के प्रति उनका तीव्र आक्रोश मिलता है। 'रमैनी' में उनके सिद्धांतों का विशद रूप देखते हैं। उनकी भाषा सधुक्कड़ी कही जाती है।

अर्थ/व्याख्या : सदुरु ही सच्चा सूरमा है , शूरवीर हैं। जिस प्रकार रणभूमि में सुर अपने विरोधी पक्ष को बाण वर्षा से परास्त कर देता है। उसी प्रकार उस सतगुरु रूपी शूरवीर ने उपदेश का बाण चलाया।

दोहा : 8 सतगुर मार्‌या बाण भरि, धरि करि सूधी मूठि।
अंगि उघाड़ै लागिया, गई दवा सूँ फूंटि ॥8॥

शब्दार्थ : मार्‌या = मारा ; भरि = पूर्ण शक्ति से ; दवा = दावाग्नि

प्रस्तावना : यह कबीर दास की रचना हैं। कबीरदास भक्ति काल के संत कवि हैं। वे निर्गुण भक्ति-शाखा के श्रेष्ट कवि हैं। वे पढे-लिखे नहीं थे। परंतु सज्जन-संगत्य और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उन्होंने रचनायें की हैं। उनकी रचनाओं का संकलन 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध है। बीजक के तीन भाग हैं – (1) साखी (2) सबद और (3) रमैनी। सखियों में दोहे हैं। इनमें उपदेश प्रद बातें मिलती हैं। 'सबद' में बाह्याडंबरों के प्रति उनका तीव्र आक्रोश मिलता है। 'रमैनी' में उनके सिद्धांतों का विशद रूप देखते हैं। उनकी भाषा सधुक्कड़ी कही जाती है।

अर्थ/व्याख्या : सदुरु ने साधक के ऊपर यह उपदेश पूर्ण शक्ति से खींचकर एवं मूठ को लक्ष्य करके सीधा मारा, जिससे दावाग्नि सी फूट पड़ी है। समस्त वासना, माया आदि जल- जल कर क्षार होने लगे। साधक शरीर के वस्त्र , माया आदि आवरण उतारकर फेंकने लगा। अर्थात उसका वस्तुस्थिति अर्थात प्रभु से साक्षात्कार हो गया है।

दोहा : 9 हँसै न बोलै उनमनी, चंचल मेल्ह्या मारि।
कहै कबीर भीतरि भिद्या, सतगुर कै हथियार॥9॥

शब्दार्थ : उनमनी = योग की उन्मन दशा ; भेद्या = भेद दिया

प्रस्तावना : यह कबीर दास की रचना हैं। कबीरदास भक्ति काल के संत कवि हैं। वे निर्गुण भक्ति-शाखा के श्रेष्ट कवि हैं। वे पढे-लिखे नहीं थे। परंतु सज्जन-संगत्य और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उन्होंने रचनायें की हैं। उनकी रचनाओं का संकलन 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध है। बीजक के तीन भाग हैं – (1) साखी (2) सबद और (3) रमैनी। सखियों में दोहे हैं। इनमें उपदेश प्रद बातें मिलती हैं। 'सबद' में बाह्याडंबरों के प्रति उनका तीव्र आक्रोश मिलता है। 'रमैनी' में उनके सिद्धांतों का विशद रूप देखते हैं। उनकी भाषा सधुक्कड़ी कही जाती है।

अर्थ/व्याख्या : योग की उन्मन दशा का वर्णन कबीरदास जी करते हैं। मन की चंचल वृतियों को समाप्त कर सतगुरु के उपदेश (प्रेम का) ने हृदय में भेद्य दिया। जिसका परिणाम यह दशा है , जिसमें शीशी ना बोलता है और ना हँसता है अर्थात सांसरिक हास-विलास से विरक्त हो गया।

दोहा : 10 गूँगा हूवा बावला, बहरा हुआ कान।
पाऊँ थै पंगुल भया, सतगुर मार्‌या बाण॥10॥

शब्दार्थ : पाऊँ थै = पैरों से ; पंगुल = पंगु या लंगड़ा

प्रस्तावना : यह कबीर दास की रचना हैं। कबीरदास भक्ति काल के संत कवि हैं। वे निर्गुण भक्ति-शाखा के श्रेष्ट कवि हैं। वे पढे-लिखे नहीं थे। परंतु सज्जन-संगत्य और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उन्होंने रचनायें की हैं। उनकी रचनाओं का संकलन 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध है। बीजक के तीन भाग हैं – (1) साखी (2) सबद और (3) रमैनी। सखियों में दोहे हैं। इनमें उपदेश प्रद बातें मिलती हैं। 'सबद' में बाह्याडंबरों के प्रति उनका तीव्र आक्रोश मिलता है। 'रमैनी' में उनके सिद्धांतों का विशद रूप देखते हैं। उनकी भाषा सधुक्कड़ी कही जाती है।

अर्थ/व्याख्या : सतगुरु के उपदेश का बाण लगते ही गूंगा , पागल और कानों से बहरा हो गया। वह अपनी वाणी और कानों का प्रयोग फालतू के वाद-विवाद में नहीं करता है। उनके कान भी प्रेम-भक्ति पर चर्चा के अतिरिक्त आँय विषयों के लिए बहरे हैं एवं सांसरिक प्रयत्न से विरत होने के कारण लंगड़ा हो गया है। ऐसी विशेष स्थिति के कारण ही उसे पागल बताया गया है।

दोहा : 11 पीछे लागा जाइ था, लोक वेद के साथि।
आगै थैं सतगुर मिल्या, दीपक दीया हाथि॥11॥

शब्दार्थ : दीपक = ज्ञान की ज्योति

प्रस्तावना : यह कबीर दास की रचना हैं। कबीरदास भक्ति काल के संत कवि हैं। वे निर्गुण भक्ति-शाखा के श्रेष्ट कवि हैं। वे पढे-लिखे नहीं थे। परंतु सज्जन-संगत्य और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उन्होंने रचनायें की हैं। उनकी रचनाओं का संकलन 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध है। बीजक के तीन भाग हैं – (1) साखी (2) सबद और (3) रमैनी। सखियों में दोहे हैं। इनमें उपदेश प्रद बातें मिलती हैं। 'सबद' में बाह्याडंबरों के प्रति उनका तीव्र आक्रोश मिलता है। 'रमैनी' में उनके सिद्धांतों का विशद रूप देखते हैं। उनकी भाषा सधुक्कड़ी कही जाती है।

व्याख्या :

यहाँ कबीर दास जी कह रहे हैं कि मैं तो संसार में वेद-विहित मार्ग का अनुकरण करता हुआ था। परंतु आगे रास्ते में मुझे मेरे गुरुदेव मिल गए। उन्होंने मेरे हाथ में ज्ञान रूपी दीपक रख दिया। उसके प्रकाश में , मैं अपना पद स्वयं खोजता हुआ अपने लक्ष्य अर्थात परम ब्रह्म तक पहुँच गया।

विषय : इसमें सांगरूपक एवं रूपक-अतिशयोक्ति अलंकार आया है।

दोहा : 12 दीपक दीया तेल भरि, बाती दई अघट्ट।
पूरा किया बिसाहूणाँ, बहुरि न आँवौं हट्ट॥12॥

शब्दार्थ : अघट्ट। = कभी घटने न वाली , बिसाहूणाँ = क्रय-विक्रय; हट्ट = बाजार

प्रस्तावना : यह कबीर दास की रचना हैं। कबीरदास भक्ति काल के संत कवि हैं। वे निर्गुण भक्ति-शाखा के श्रेष्ट कवि हैं। वे पढे-लिखे नहीं थे। परंतु सज्जन-संगत्य और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उन्होंने रचनायें की हैं। उनकी रचनाओं का संकलन 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध है। बीजक के तीन भाग हैं – (1) साखी (2) सबद और (3) रमैनी। सखियों में दोहे हैं। इनमें उपदेश प्रद बातें मिलती हैं। 'सबद' में बाह्याडंबरों के प्रति उनका तीव्र आक्रोश मिलता है।

'रमैनी' में उनके सिद्धांतों का विशद रूप देखते हैं। उनकी भाषा सधुक्कड़ी कही जाती है।

व्याख्या : इसमें कबीरदास जी कह रहे हैं कि मेरे सतगुरु ने मुझे प्रेम रूपी तेल से भरा दीपक देकर , कभी घटने न वाली बाती अर्थात ज्ञान वर्तिका से युक्त दीपक मुझे दिया है। इसके प्रकाश से संसार रूपी बाजार में , मैंने अपने कर्मों का समस्त क्रय-विक्रय समस्त रीति लिया है।

अतः मैं इस संसार रूपी बाजार में अब नहीं आऊँगा अर्थात इस ज्ञान ज्योति (प्रकाश) द्वारा , मैं जीवन मुक्त हो जाऊँगा। इसका अर्थ है कि मुझे दोबारा इस संसार में जन्म नहीं लेना पड़ेगा।

विषय: सांगरूपक एवं रूपक-अतिशयोक्ति अलंकार है।

दोहा : 13 **ग्यान प्रकास्या गुर मिल्या, सो जिनि बीसरि जाइ।**
जब गोबिंद कृपा करी, तब गुर मिलिया आइ ॥13॥

शब्दार्थ : जिनि = नहीं ; बिसरि = छोड़ना

प्रस्तावना : यह कबीर दास की रचना हैं। कबीरदास भक्ति काल के संत कवि हैं। वे निर्गुण भक्ति-शाखा के श्रेष्ट कवि हैं। वे पढे-लिखे नहीं थे। परंतु सज्जन-संगत्य और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उन्होंने रचनायें की हैं। उनकी रचनाओं का संकलन 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध है। बीजक के तीन भाग हैं – (1) साखी (2) सबद और (3) रमैनी। सखियों में दोहे हैं। इनमें उपदेश प्रद बातें मिलती हैं। 'सबद' में बाह्याडंबरों के प्रति उनका तीव्र आक्रोश मिलता है। 'रमैनी' में उनके सिद्धांतों का विशद रूप देखते हैं। उनकी भाषा सधुक्कड़ी कही जाती है।

व्याख्या : कबीर दास जी कह रहे कि मेरे गुरुदेव से भेंट होने पर मेरे हृदय में ज्ञान का प्रकाश हो गया है। ऐसे ज्ञान स्वरूप सच्चे सद्गुरु से विमुख नहीं होना चाहिए अर्थात उनका साथ नहीं छोड़ना चाहिए। यह मुझ पर मेरे प्रभु की ही कृपा है कि गुरुदेव मुझे मिल गए अर्थात भगवान की क्रूप से ऐसे गुरु मिले हैं।

विशेषता : यहाँ विशेष बात यह है कि सच्चे सद्गुरु की प्राप्ति के लिए कबीर कबीर दास जी भगवान जी की कृपा को आवश्यक मानते हैं।

दोहा : 14 **"कबीर गुर गरबा मिल्या, रलि गया आटै लूँण।**
जाति पाँति कुल सब मिटै, नांव धरोगे कौण ।।"

शब्दार्थ : गुर = गुरु ; गरवा = गौरवमय ; लूँण = नमक

प्रस्तावना : यह कबीर दास की रचना हैं। कबीरदास भक्ति काल के संत कवि हैं। वे निर्गुण भक्ति-शाखा के श्रेष्ट कवि हैं। वे पढे-लिखे नहीं थे। परंतु सज्जन-संगत्य और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उन्होंने रचनायें की हैं। उनकी रचनाओं का संकलन 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध है। बीजक के तीन भाग हैं – (1) साखी (2) सबद और (3) रमैनी। सखियों में दोहे हैं। इनमें उपदेश प्रद बातें मिलती हैं। 'सबद' में बाह्याडंबरों के प्रति उनका तीव्र आक्रोश मिलता है। 'रमैनी' में उनके सिद्धांतों का विशद रूप देखते हैं । उनकी भाषा सधुक्कड़ी कही जाती है ।

व्याख्या : यहाँ पर कबीर कहते हैं कि एक बार गुरु के गले लगाने से शिष्य की जाति-पाति कुल सब मिट जाता है। एक

गुरु के लिए वह जाति–पाति, कुल ,गोत्र से ऊपर महज एक शिष्य रह जाता है। एक गुरु के लिए उसके सभी शिष्य एक समान हैं। किन्तु आज के परिप्रेक्ष्य में ऐसे गुरु का मिल पाना बहुत मुश्किल है। आज अधिकांश शिक्षक राजनीतिक संबंधों को साधने के चक्कर में दोहरे मापदंड अपनाते हैं जिसका खामियाजा अक्सर छात्रों को चुकाना पड़ता है। आज जाति का प्रश्न इतना हावी हो गया है कि छात्र और शिक्षक के संबंधों का निर्णय जाति-साम्य पर ज्यादा निर्भर करने लगा है ।

भाव यह है कि अब मेरा गुरुदेव के ज्ञान-स्वरूप के साथ ऐक्यता स्थापित हो गया है। अब इसे अलग नहीं किया जा सकता।

दोहा : 15 **जाका गुर भी अंधला, चेला खरा निरंध।**
अंधै अंधा ठेलिया, दून्यूँ कूप पड़ंत ॥15॥

शब्दार्थ : अंधला = अंधा , मूर्ख ; खरा = पूर्ण रूप से ; निरंध = मूर्ख ; कूप = कुआँ ।

प्रस्तावना : यह कबीर दास की रचना हैं। कबीरदास भक्ति काल के संत कवि हैं। वे निर्गुण भक्ति-शाखा के श्रेष्ट कवि हैं। वे पढे-लिखे नहीं थे। परंतु सज्जन-संगत्य और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उन्होंने रचनायें की हैं। उनकी रचनाओं का संकलन 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध है। बीजक के तीन भाग हैं – (1) साखी (2) सबद और (3) रमैनी। सखियों में दोहे हैं। इनमें उपदेश प्रद बातें मिलती हैं। 'सबद' में बाह्याडंबरों के प्रति उनका तीव्र आक्रोश मिलता है। 'रमैनी' में उनके सिद्धांतों का विशद रूप देखते हैं। उनकी भाषा सधुक्कड़ी कही जाती है।

व्याख्या : यहाँ कबीर दास जी कह रहे हैं कि गुरु योग्य होना चाहिए। जिस शिष्य का गुरु अंधा है अर्थात अज्ञान है। और शिष्य भी पूर्ण रूप से अंधा और मूर्ख है तो वे दोनों लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकेंगे।

अंधा अंधे को , बिना देखे ही ठेल-ठेलकर मार्ग पर बढ़ाएगा तो परिणाम भी वैसा ही होगा कि दोनों ही कुएं में गिरेंगे अर्थात पाटन रूपी कुएं में गिर पड़ेंगे। इसलिए हमारा गुरु ज्ञानी और योग्य होना चाहिए।

दोहा : 16 **नाँ गुर मिल्या न सिष भया, लालच खेल्या डाव।**
दुन्यूँ बूड़े धार मैं, चढ़ि पाथर की नाव॥16॥

शब्दार्थ : शिष = शिष्य ; बुड़े = डूब गए ; पथर = पत्थर ,अज्ञान ।

प्रस्तावना : यह कबीर दास की रचना हैं। कबीरदास भक्ति काल के संत कवि हैं। वे निर्गुण भक्ति-शाखा के श्रेष्ट कवि हैं। वे पढे-लिखे नहीं थे। परंतु सज्जन-संगत्य और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उन्होंने रचनायें की हैं। उनकी रचनाओं का संकलन 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध है। बीजक के तीन भाग हैं – (1) साखी (2) सबद और (3) रमैनी। सखियों में दोहे हैं। इनमें उपदेश प्रद बातें मिलती हैं। 'सबद' में बाह्याडंबरों के प्रति उनका तीव्र आक्रोश मिलता है। 'रमैनी' में उनके सिद्धांतों का विशद रूप देखते हैं। उनकी भाषा सधुक्कड़ी कही जाती है।

व्याख्या : यहाँ अर्थ यह है कि न तो सदुरु ही ज्ञानी मिला और ना ही शिष्य वास्तविक परिभाषा में शिष्य है अर्थात ज्ञान का अभिलाषी ही न था। दोनों ही गुरु और शिष्य ज्ञान के नाम पर लालच का भाव खेलते रहे। वे एक-दूसरे को

धोखे में रखते रहे और दोनों इस प्रकार तट (लक्ष्य) तक पहुँचने से पहले ही मंझधार में डूब गए। और अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सके क्यों कि वह पत्थर कि नाव के सहारे सागर पार करेंगे तो बीच में ही डूब जाएँगे। अतः अज्ञान के सहारे संसार रूपी सागर पार नहीं कर पाएँगे।

विशेष : उपमा अलंकार दिया है।

दोहा :17 चौसठ दीवा जोइ करि, चौदह चन्दा माँहि।
तिहिं धरि किसकौ चानिणौं, जिहि घरि गोबिंद नाहिं॥17॥

शब्दार्थ : जोइ करि = जलाकर प्रकाशित करके ; चानिणौं = चहेता

प्रस्तावना : यह कबीर दास की रचना हैं। कबीरदास भक्ति काल के संत कवि हैं। वे निर्गुण भक्ति-शाखा के श्रेष्ट कवि हैं। वे पढे-लिखे नहीं थे। परंतु सज्जन-संगत्य और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उन्होंने रचनायें की हैं। उनकी रचनाओं का संकलन 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध है। बीजक के तीन भाग हैं – (1) साखी (2) सबद और (3) रमैनी। सखियों में दोहे हैं। इनमें उपदेश प्रद बातें मिलती हैं। 'सबद' में बाह्याडंबरों के प्रति उनका तीव्र आक्रोश मिलता है। 'रमैनी' में उनके सिद्धांतों का विशद रूप देखते हैं। उनकी भाषा सधुक्कड़ी कही जाती है।

व्याख्या : कबीर दास जी कह रहे हैं कि यदि कोई अपने हृदय में चौसठ कलाओं की ज्योति जला कर प्रकाशित कर ले। चंद्रमा की चौदह कलाओं के समान प्रकाशपूर्ण चौदह विधाओं का भव्य प्रकाश , उज्जवल प्रकाश , प्रकाशित कर ले – अर्थात पूर्ण ज्ञानी हो जाए किंतु यदि वह मंदिर प्रभु-भक्ति के अभाव में अंधकार में हो तो वह किसी का भी चहेता अर्थात किसी को भी अच्छा नहीं लगेगा। भाव यह है कि मनुष्य-जीवन की सार्थकता भगवान की प्राप्ति में ही है।

विशेष :

i)कबीर यहाँ ज्ञान और भक्ति को पोषित करते दिखाई दिए हैं और भक्ति को ज्ञान के ऊपर मानते हैं। **ii)**चौदह कलाओं के कहने से कबीर पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव दिखाई देता है।

दोहा : 18 निस अधियारी कारणैं, चौरासी लख चंद।
अति आतुर ऊदै किया, तऊ दिष्टि नहिं मंद॥18॥

शब्दार्थ : एनआईएस = रात , अज्ञान ; ऊदै किया = उदित किया , प्राप्त किया ; मंद = मूर्ख

प्रस्तावना : यह कबीर दास की रचना हैं। कबीरदास भक्ति काल के संत कवि हैं। वे निर्गुण भक्ति-शाखा के श्रेष्ट कवि हैं। वे पढे-लिखे नहीं थे। परंतु सज्जन-संगत्य और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उन्होंने रचनायें की हैं। उनकी रचनाओं का संकलन 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध है। बीजक के तीन भाग हैं – (1) साखी (2) सबद और (3) रमैनी। सखियों में दोहे हैं। इनमें उपदेश प्रद बातें मिलती हैं। 'सबद' में बाह्याडंबरों के प्रति उनका तीव्र आक्रोश मिलता है। 'रमैनी' में उनके सिद्धांतों का विशद रूप देखते हैं। उनकी भाषा सधुक्कड़ी कही जाती है।

व्याख्या : कबीर कहते हैं कि मिझे अपने अज्ञान के अंधकार के कारण बार-बार चौरासी लाख योनियों में भटककर उनकी यातना सहनी पड़ी और तब बड़ी मुश्किल से मनुष्य की योनि में आया हूँ। मूर्ख की फिर भी आँख नहीं खुलती। वह फिर भी कुमार्ग की ओर ही बढ़ रहा है।

दोहा : 19 भली भई जू गुर मिल्या, नहीं तर होती हाँणि।
दीपक दिष्टि पतंग ज्यूँ, पड़ता पूरी जाँणि॥19॥

शब्दार्थ : नहीं तर = अन्यथा ; पूरी जाँणि = सर्वस्व समझकर

प्रस्तावना : यह कबीर दास की रचना हैं। कबीरदास भक्ति काल के संत कवि हैं। वे निर्गुण भक्ति-शाखा के श्रेष्ट कवि हैं। वे पढे-लिखे नहीं थे। परंतु सज्जन-संगत्य और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उन्होंने रचनायें की हैं। उनकी रचनाओं का संकलन 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध है। बीजक के तीन भाग हैं – (1) साखी (2) सबद और (3) रमैनी। सखियों में दोहे हैं। इनमें उपदेश प्रद बातें मिलती हैं। 'सबद' में बाह्याडंबरों के प्रति उनका तीव्र आक्रोश मिलता है। 'रमैनी' में उनके सिद्धांतों का विशद रूप देखते हैं। उनकी भाषा सधुक्कड़ी कही जाती है।

व्याख्या : यहाँ साधक कह रहा है कि अच्छा हुआ जो मुझे गुरुदेव मिल हाए अन्यथा मुझे तो बहुत बड़ी भारी हानि होती। जिस प्रकार से शलभ दीपशिखा को सर्वस्व जान कर उस पर जल मरता है , उसी प्रकार मैं भी सांसरिक माया-मोह को सर्वस्व मान कर , कीड़े-पतंगे की तरह जलकर नष्ट हो जाता।

विशेष : द्वितीय पंक्ति में उपमा अलंकार दिया है।

दोहा : 20. माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवै पड़ंत।
कहै कबीर गुर ग्यान थैं, एक आध उबरंत॥20॥

शब्दार्थ : भ्रमि भ्रमि = मंडरा-मंडरा कर ; इवै = उसी पर

प्रस्तावना : यह कबीर दास की रचना हैं। कबीरदास भक्ति काल के संत कवि हैं। वे निर्गुण भक्ति-शाखा के श्रेष्ट कवि हैं। वे पढे-लिखे नहीं थे। परंतु सज्जन-संगत्य और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उन्होंने रचनायें की हैं। उनकी रचनाओं का संकलन 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध है। बीजक के तीन भाग हैं – (1) साखी (2) सबद और (3) रमैनी। सखियों में दोहे हैं। इनमें उपदेश प्रद बातें मिलती हैं। 'सबद' में बाह्याडंबरों के प्रति उनका तीव्र आक्रोश मिलता है। 'रमैनी' में उनके सिद्धांतों का विशद रूप देखते हैं। उनकी भाषा सधुक्कड़ी कही जाती है।

व्याख्या : यह माया रूपी दीपक पर मानव पंतगा मंडरा-मंडरा कर उसी दीपक के प्रकाश पर गिर कर नष्ट होता है और कबीर कहते हैं कि इस माया दीपक के आकर्षण से कोई एकाध विरले ही गुरु से ज्ञान कर बच पाते हैं। कोई विशेष व्यक्ति ही , जिसको सच्चा गुरु मिलता है , वही इस दीपक की लौ से बच सकता है। केवल सच्चे गुरु का ज्ञान ही उसे बचा सकता है।

दोहा : 21 **सतगुर बपुरा क्या करै, जे सिषही माँहै चूक।**
भावै त्यूँ प्रमोधि ले, ज्यूँ वंसि बजाई फूक॥21॥

टिप्पणी: ख-प्रमोदिए। जाँणे बास जनाई कूद।

शब्दार्थ : बपुरा = बेचारा ; चूक = कमी ।

प्रस्तावना : यह कबीर दास की रचना हैं । कबीरदास भक्ति काल के संत कवि हैं । वे निर्गुण भक्ति-शाखा के श्रेष्ट कवि हैं । वे पढे-लिखे नहीं थे । परंतु सज्जन-संगत्य और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उन्होंने रचनायें की हैं । उनकी रचनाओं का संकलन 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध है । बीजक के तीन भाग हैं – (1) साखी (2) सबद और (3) रमैनी । सखियों में दोहे हैं । इनमें उपदेश प्रद बातें मिलती हैं । 'सबद' में बाह्याडंबरों के प्रति उनका तीव्र आक्रोश मिलता है । 'रमैनी' में उनके सिद्धांतों का विशद रूप देखते हैं । उनकी भाषा सधुक्कड़ी कही जाती है ।

व्याख्या : यदि शीशी में ही त्रुटि है तो बेचारा ज्ञानी गुरु भी क्या कर सकता है । चाहे उसे किसी प्रकार से समझा दो किंतु सब यों ही क्षण में बाहर निकल जाता जैसे वंशी में फूँक क्षणभर रहकर बाहर निकल जाती है और वह बाँसुरी फिर काष्ठ अर्थात निर्जीव (शिष्य पक्ष में मूढ़) रह जाती है ।

विशेष : दृष्टांत अलंकार है ।

दोहा :22 **संसै खाया सकल जुग, संसा किनहुँ न खद्ध।**
जे बेधे गुर अष्षिरां, तिनि संसा चुणि चुणि खद्ध॥22॥

टिप्पणी: ख-सैल जुग।

शब्दार्थ : संसै = संशय , भ्रम, अष्पिरां = अक्षर ज्ञान

प्रस्तावना : यह कबीर दास की रचना हैं । कबीरदास भक्ति काल के संत कवि हैं । वे निर्गुण भक्ति-शाखा के श्रेष्ट कवि हैं । वे पढे-लिखे नहीं थे । परंतु सज्जन-संगत्य और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उन्होंने रचनायें की हैं । उनकी रचनाओं का संकलन 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध है । बीजक के तीन भाग हैं – (1) साखी (2) सबद और (3) रमैनी । सखियों में दोहे हैं । इनमें उपदेश प्रद बातें मिलती हैं । 'सबद' में बाह्याडंबरों के प्रति उनका तीव्र आक्रोश मिलता है । 'रमैनी' में उनके सिद्धांतों का विशद रूप देखते हैं । उनकी भाषा सधुक्कड़ी कही जाती है ।

व्याख्या :माया के भ्रम ने समस्त जगत को विनष्ट किया है किंतु इस भ्रम को कोई नहीं नष्ट कर पाया । गुरु- ज्ञान की वाणी से प्रभावित जो लोग थे उन्होंने इस माया- भ्रम को चुन- चुनकर नष्ट कर दिया ।

विशेष : I इसमें मानवीकरण से सजीवता आ गई हैं ।

II. अलंकार से वस्तु ध्वनित है व्यंग्य है – 'शिष्य की परमतत्व ज्ञता' ।

दोहा : 23 **चेतनि चौकी बैसि करि, सतगुर दीन्हाँ धीर।**
निरभै होइ निसंक भजि, केवल कहै कबीर॥23॥

शब्दार्थ : चेतनि = ज्ञान ; निराभै होइ = निर्भय होकर ।

प्रस्तावना : यह कबीर दास की रचना हैं। कबीरदास भक्ति काल के संत कवि हैं। वे निर्गुण भक्ति-शाखा के श्रेष्ट कवि हैं। वे पढे-लिखे नहीं थे। परंतु सज्जन-संगत्य और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उन्होंने रचनायें की हैं। उनकी रचनाओं का संकलन 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध है। बीजक के तीन भाग हैं – (1) साखी (2) सबद और (3) रमैनी। सखियों में दोहे हैं। इनमें उपदेश प्रद बातें मिलती हैं। 'सबद' में बाह्याडंबरों के प्रति उनका तीव्र आक्रोश मिलता है। 'रमैनी' में उनके सिद्धांतों का विशद रूप देखते हैं। उनकी भाषा सधुक्कड़ी कही जाती है।

व्याख्या : कबीरदास कहते हैं कि चेतना (ज्ञान) की चौकी पर बैठ कर सद्गुरु ने धैर्य प्रदान किया और उपदेश दिया कि निर्भय और निःशंक होकर प्रभु को भजो।

दोहा : 24. "सतगुर मिल्या त का भयाँ, जे मनि पाड़ी भोल।
पासि बिनंठा कप्पड़ा, क्या करै बिचारी चोल ।।"

शब्दार्थ : भ्रमि भ्रमि = मंडरा-मंडरा कर ; इवै = उसी पर

प्रस्तावना : यह कबीर दास की रचना हैं। कबीरदास भक्ति काल के संत कवि हैं। वे निर्गुण भक्ति-शाखा के श्रेष्ट कवि हैं। वे पढे-लिखे नहीं थे। परंतु सज्जन-संगत्य और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उन्होंने रचनायें की हैं। उनकी रचनाओं का संकलन 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध है। बीजक के तीन भाग हैं – (1) साखी (2) सबद और (3) रमैनी। सखियों में दोहे हैं। इनमें उपदेश प्रद बातें मिलती हैं। 'सबद' में बाह्याडंबरों के प्रति उनका तीव्र आक्रोश मिलता है। 'रमैनी' में उनके सिद्धांतों का विशद रूप देखते हैं। उनकी भाषा सधुक्कड़ी कही जाती है।

व्याख्या : कबीर दोहे के माध्यम से यह दिखाना चाहते हैं कि एक सच्चा सतगुरु मिल भी जाए जो आज के समय में हमें राह दिखा सकता है तो भी शिष्य का मन मलिन होतो वह गुरु-ज्ञान का महत्त्व नहीं आँक पाएगा। यदि धूल में पड़कर कपड़ा ही मैला हो गया हो तो उसे रंगने वाली मजीठ लता भी बेचारी क्या कर सकती है ? कबीर अन्यत्र भी ज्ञान-साधना की सफलता के लिए योग्य शिष्य की आवश्यकता पर बल देते हुए कहते हैं – **"सतगुरु बहुरा क्या करै, जे सिषही मांहे चूक।"**

दोहा : 25 बूड़े थे परि ऊबरे, गुर की लहरि चमंकि।
भेरा देख्या जरजरा, (तब) ऊतरि पड़े फरंकि॥25॥

टिप्पणी: ख-जाजरा। इस दोहे के आगे ख प्रति में यह दोहा है-
कबीर सब जग यों भ्रम्या फिरै ज्यूँ रामे का रोज।
सतगुर थैं सोधी भई, तब पाया हरि का षोज ॥

शब्दार्थ : परि = पर , परन्तु ; भेड़ा = बेड़ा ; जरजरा = जीर्ण-शीर्ण ; फरंकि = तुरन्त , तत्क्षण।

व्याख्या : हम तो इस भवसागर में डूबने को ही थे कि गुरु – कृपा की एक लहर ने हमें पार लगा दिया। उस गुरु कृपा के द्वारा ही हमने देखा कि जिस वेदशास्त्र आदि के बेड़े से हम संसार –सागर पार करना चाहते थे ; वह तो जीर्ण –शीर्ण

है , अतः हम उससे तत्क्षण कूद पड़े और प्रभु –भक्ति का संबल ग्रहण किया। भाव यह है कि केवल गुरु –कृपा से ही भवसागर पार किया जा सकता है।

विशेष :'गुरु की लहरि चमकि' में रूपकतिशयोक्ति है। उपमेय ज्ञानधर है।'मेरा देखा जरजरा' में भी यही अलंकार है।

दोहा : 26 **गुरु गोविन्द तौ एक है, दूजा यह आकार।**
आपा मेट जीवत मरै, तो पावै करतार॥26॥

प्रस्तावना : यह कबीर दास की रचना हैं। कबीरदास भक्ति काल के संत कवि हैं। वे निर्गुण भक्ति-शाखा के श्रेष्ट कवि हैं। वे पढे-लिखे नहीं थे। परंतु सज्जन-संगत्य और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उन्होंने रचनायें की हैं। उनकी रचनाओं का संकलन 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध है। बीजक के तीन भाग हैं – (1) साखी (2) सबद और (3) रमैनी। सखियों में दोहे हैं। इनमें उपदेश प्रद बातें मिलती हैं। 'सबद' में बाह्याडंबरों के प्रति उनका तीव्र आक्रोश मिलता है। 'रमैनी' में उनके सिद्धांतों का विशद रूप देखते हैं। उनकी भाषा सधुक्कड़ी कही जाती है।

व्याख्या : सद्गुरु और गोविंद (परमात्मा) वास्तव में एक है और यदि अंतर है तो आकाश का (शरीर, नाम, रूप, उपाधि, आदि का) यदि कोई अपनी अस्मिता (अस्तित्व) को नष्ट कर जीते ही मर जाये (जीवनमुक्त हो जाये) तो उसे परमात्मा कि प्राप्ति हो सकती है।

दोहा : 27 **कबीर सतगुर नाँ मिल्या, रही अधूरी सीप।**
स्वांग जती का पहरि करि, घरि घरि माँगै भीष॥27॥

शब्दार्थ : सरल है।

प्रस्तावना : यह कबीर दास की रचना हैं। कबीरदास भक्ति काल के संत कवि हैं। वे निर्गुण भक्ति-शाखा के श्रेष्ट कवि हैं। वे पढे-लिखे नहीं थे। परंतु सज्जन-संगत्य और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उन्होंने रचनायें की हैं। उनकी रचनाओं का संकलन 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध है। बीजक के तीन भाग हैं – (1) साखी (2) सबद और (3) रमैनी। सखियों में दोहे हैं। इनमें उपदेश प्रद बातें मिलती हैं। 'सबद' में बाह्याडंबरों के प्रति उनका तीव्र आक्रोश मिलता है। 'रमैनी' में उनके सिद्धांतों का विशद रूप देखते हैं। उनकी भाषा सधुक्कड़ी कही जाती है।

व्याख्या : कबीरदास कहते हैं कि यदि सद्गुरु की प्राप्ति नहीं हुई और शिक्षा (उपदेश) भी अधूरी रह गयी तो शिष्य-साधक साधू का बनावटी वेश पहन कर घर-घर भिक्षा माँगने का कार्य करता है। कबीर की दृष्टि में यह बनावटी आचरण मिथ्या और निंदनीय है , क्योंकि इस आवरण में प्रभु का साक्षात्कार नहीं प्राप्त हो सकता।

विशेष : 'स्वांग' जती का पहरि करि' में एक व्यापक बिम्ब थोड़े शब्दों में मूर्तिमान हो गया है।

दोहा : 28 **सतगुर साँचा सूरिवाँ, तातै लोहिं लुहार।**
कसणो दे कंचन किया, ताई लिया ततसार॥28॥

टिप्पणी: ख-सतगुर मेरा सूरिवाँ।

शब्दार्थ : तातै = तत्प ; लोहिं = लोहा ; लुहार = लोहे का कार्य करने वाला।

प्रस्तावना : यह कबीर दास की रचना हैं। कबीरदास भक्ति काल के संत कवि हैं। वे निर्गुण भक्ति-शाखा के श्रेष्ट कवि हैं। वे पढे-लिखे नहीं थे। परंतु सज्जन-संगत्य और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उन्होंने रचनायें की हैं। उनकी रचनाओं का संकलन 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध है। बीजक के तीन भाग हैं – (1) साखी (2) सबद और (3) रमैनी। सखियों में दोहे हैं। इनमें उपदेश प्रद बातें मिलती हैं। 'सबद' में बाह्याडंबरों के प्रति उनका तीव्र आक्रोश मिलता है। 'रमैनी' में उनके सिद्धांतों का विशद रूप देखते हैं। उनकी भाषा सधुक्कड़ी कही जाती है।

व्याख्या : कबीरदास कहते हैं कि यदि सद्गुरु सच्चा शूरवीर है जो शिष्य रूपी लोहे को साधना रूपी आग में तपाकर जैसा चहता है वैसा बना देता है। कबीरदास कहते हैं कि सोनार जिस प्रकार कसौटी पर कसकर सोने की सुद्धता का मूल्यांकन करता है। वैसे ही सद्गुरु साधना की कसौटी पर साधक-शिष्य को कसकर उसके भीतर विहित तत्वसार को सुरक्षित करता है।

विशेष : I रूपक अलंकार है।

II वस्तु से व्यतिरेक अलंकार ध्वनित है।

दोहा : 29 थापणि पाई थिति भई, सतगुर दीन्हीं धीर।
कबीर हीरा बणजिया, मानसरोवर तीर॥29॥

शब्दार्थ : थापणि = शीशी रूप में अपनी स्थापना ; बणजिया = वाणिज्य , व्यापार।

प्रस्तावना : यह कबीर दास की रचना हैं। कबीरदास भक्ति काल के संत कवि हैं। वे निर्गुण भक्ति-शाखा के श्रेष्ट कवि हैं। वे पढे-लिखे नहीं थे। परंतु सज्जन-संगत्य और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उन्होंने रचनायें की हैं। उनकी रचनाओं का संकलन 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध है। बीजक के तीन भाग हैं – (1) साखी (2) सबद और (3) रमैनी। सखियों में दोहे हैं। इनमें उपदेश प्रद बातें मिलती हैं। 'सबद' में बाह्याडंबरों के प्रति उनका तीव्र आक्रोश मिलता है। 'रमैनी' में उनके सिद्धांतों का विशद रूप देखते हैं। उनकी भाषा सधुक्कड़ी कही जाती है।

व्याख्या : सद्गुरु ने धैर्य दिया जिससे प्रभु में प्रेम स्थिर हो गया। अब कबीर मानसरोवर रूपी चेतना के तीर-ज्ञान रूपी हीरे का व्यापारी बन गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि उसकी सारी वृत्तियाँ अंतर्मुखी बन गयी है।

विशेष : मनः साधना की महत्ता प्रकट की गई है।

टिप्पणी: इसके आगे ख प्रति में यह दोहा है-

कबीर हीरा बणजिया, हिरदे उकठी खाणि।
पारब्रह्म क्रिपा करी सतगुर भये सुजाँण॥

दोहा : 30 निहचल निधि मिलाइ तत, सतगुर साहस धीर।
निपजी मैं साझी घणाँ, बांटै नहीं कबीर॥30॥

शब्दार्थ : निहचल निधि = ब्रह्म ; तत = आत्मा ; घणाँ = बहुत से।

प्रस्तावना : यह कबीर दास की रचना हैं। कबीरदास भक्ति काल के संत कवि हैं। वे निर्गुण भक्ति-शाखा के श्रेष्ट कवि हैं। वे पढे-लिखे नहीं थे। परंतु सज्जन-संगत्य और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उन्होंने रचनायें की हैं। उनकी

रचनाओं का संकलन 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध है। बीजक के तीन भाग हैं – (1) साखी (2) सबद और (3) रमैनी। सखियों में दोहे हैं। इनमें उपदेश प्रद बातें मिलती हैं। 'सबद' में बाह्याडंबरों के प्रति उनका तीव्र आक्रोश मिलता है। 'रमैनी' में उनके सिद्धांतों का विशद रूप देखते हैं। उनकी भाषा सधुक्कड़ी कही जाती है।

व्याख्या : सद्गुरु ने साधना को साहस और धैर्य से युक्त करके जीवात्मा रूपी तत्व को परमात्मा रूपी विधि में मिला दिया। इस मिलन से प्राप्त आनन्द को बाँटने के लिए अनेक साझीदार हो गये , लेकिन कबीर उए बाँट नहीं सकते। कारण यह है कि आनन्द अनुभूति का विशय है। उसका केवल अनुभव किया जा सकता है। वह कथन से परे है।

विशेष : I रूपक अलंकार से अमूर्त को मूर्त किया गया है।

II दूसरी पंक्ति में व्यापक क्रिया - बिम्ब आकर्षक है।

11.5.सारांश

"गुरुदेव कौ अंग" में कबीर दास जी ने गुरु की महिमा का गुणगान अपने दोहों के माध्यम से किया है। इन दोहों में बताया गया है कि शिष्य को यदि सच्चा गुरु मिल जाता है तो ऐसा गुरु उसे ज्ञान रूपी चक्षु देकर इस संसार सागर से पार करने में सहायता करता है। सच्चे गुरु के कारण ही शिष्य को अपने भीतर स्थित उस परमब्रह्म का ज्ञान होता है। अपने अनुयायियों को धर्म की सही दिशा देते रहते थे। वे कहते थे - 'कहैं कबीर बिचारि के जाके बरन न गाँव। निराकार और निरगुणा है पूरन सब ठांव ॥' उनकी मान्यता थी कि ईश्वर प्राप्ति के लिए सतगुरु की कृपा प्राप्त करना आवश्यक है। सतगुरु ही ऐसा मल्लाह है, जो शिष्य को भवसागर से पार लगा देता है- 'गुरु की करिए वन्दना भाव से बारम्बार।

कबीर की साखियाँ यह संदेश देती हैं कि हमें साधु-संतों की जाति न पूछकर उनसे ज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिए। किसी को अपशब्द नहीं कहने चाहिए। मन को एकाग्र करके ईश्वर की भक्ति करनी चाहिए पाखंड़ों का रास्ता नहीं अपनाना चाहिए। रोज की तरह जब रामानंदाचार्य स्नान के लिए सीढिय़ां उतर रहे थे, तभी गलती से कबीरदास के ऊपर उनका पैर पड़ गया और उनके मुंह से निकल गया 'राम राम'। इस पर कबीर दास जी उठ खड़े हुए और कहा कि यह शब्द 'राम राम' ही मेरा गुरुमंत्र है और आप मेरे गुरु हैं। राम नाम के मंत्र ने ही कबीरदास को संत कबीर में बना दिया। कबीर की प्रासंगिकता इस बात से स्पष्ट हो जाती है कि उन्हें हम वर्तमान दौर में भी शिक्षा जैसे विषयों से जोड़कर देख रहे हैं क्योंकि आज का पूरा शिक्षातंत्र बाजारीकरण जैसे मूल्यों और रोजगार आदि से जुड़ गया है जिस कारण उसमें भक्तिकालीन परम्परा का बोध और गुरु-शिष्य की आदर्श भावना नहीं रह गई है। इन सब बातों के आधार से ही आधुनिक समय में भक्तिकालीन संत कवि कबीरदास का भावबोध झलकता है जिसमें हमें आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था को गुरु-शिष्य परम्परा के निःस्वार्थ बंधन से देखना चाहिए ताकि समाज में भेदभाव की संस्कृति को दूर किया जा सके। आज की आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था में जो स्वार्थ भावना और गुरु के प्रति आस्था का प्रश्न व्यावसायिक तौर तरीकों में दीखता है वह सब नहीं होना चाहिए। यहीं से गुरु-शिष्य की परम्परा और शिक्षा-व्यवस्था की नवीन पहल की शुरुआत होती है। हमें इस दौर में कबीर के 'गुरुदेव कौ अंग' से आधुनिक दृष्टि में शिक्षा-व्यवस्था को समझने का मौका मिलता है, वर्तमान में इसी से गुरु-शिष्य परम्परा के आदर्श को आगे बढ़ाने में मदद मिलेगी जैसा कि हम उनके दोहों में देखते हैं। कबीर इस रूप में ही गुरु-शिष्य परम्परा की भारतीय जमीन पर खड़े नजर आते हैं।

11.6. बोध प्रश्न

1. कबीर दोहे को सप्रसंघ व्याख्या कीजिये।
2. गुरुदेव कौ अंग परिचय दीजिये।
3. कबीर की 'गुरुदेव कौ अंग' के आधार पर शिक्षण प्रक्रिया की विवेचना कीजिये।

11.7. सहायक ग्रंथ

1. कबीर ग्रंथावली, सम्पादक – श्यामसुन्दर दास, वाणी प्रकाशन, संस्करण – 2014
2. कबीर – हजारी प्रसाद द्विवेदी , वाणी प्रकाशन ,2014
3. हिंदी साहित्य का इतिहास -आचार्य रामचंद्र शुक्ल
4. कबीर साहित्य की परख – परशुराम चतुर्वेदी, भारती भण्डार, इलाहाबाद।
5. कबीर – हजारी प्रसाद द्विवेदी राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
6. हिन्दी काव्य में निर्गुण संप्रदाय – पीताम्बर दत्त बडथ्वाल अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ।

डॉ. अन्नदासू सरला देवी

12. बिरह कौ अंग

12.0. उद्देश्य

साखी शब्द संस्कृत के साक्षी शब्द का अपभ्रंश रूप है। इसका अर्थ है चरमदीद गवाह, ऐसा व्यक्ति जिसने घटना को अपनी आंखों से देखा है। कबीर ने स्वयं कहा की साखी को संसार की समस्याओं को सुलझा ने के लिए लिखा गया है। ऐसी ग्रंथ साखी में मनुज के विभिन्न चित्र प्रवृत्तियों के बारे में बताया गया था। बिरह कौ अंग में बताया गया अंश परमात्मा को पाने के लिए विरह मग्न होना चाहिए। जब विरह होता है तब प्रेम की पूर्णता होती है। आत्मा परमात्मा का मिलन विरह के कारण ही मिलते हैं। इसी अंश को इस इकाई में विरह कौ अंग के दोहों के साथ बताया गया है। इस इकाई को पढ़ने के बाद हम साखी के बिरह कौ अंग का भाव, दोहे, भावार्थ को समझ पाएंगे।

रूप रेखा

12.1. प्रस्तावना

12.2. अंग – परिचय

12.3. विरह कौ अंग का मूल-भाव

12.4. विरह कौ अंग - संदर्भ सहित व्याख्या

12.5. सारांश

12.6. बोध प्रश्न

12.7. सहायक ग्रन्थ

12.1. प्रस्तावना

कबीर ने भक्तिपरक दोहों में ईश्वर के प्रति विरह-वेदना को प्रकट किया है। वे कहते हैं कि अपने ईश्वर से बिछड़ने पर जीव (आत्मा) को कहीं भी सुख की प्राप्ति नहीं होती है। न तो उसे दिन में चैन पड़ता है और न ही रात को आराम; न उसे धूप में सुख मिलता है और न ही छाँव में। कबीरदास कहते है कि जिस व्यक्ति के हृदय में ईश्वर के प्रति प्रेम रुपी विरह का सर्प बस जाता है, उस पर कोई मंत्र असर नहीं करता है। अर्थात् भगवान के विरह में कोई भी जीव सामान्य नहीं रहता है। उस पर किसी बात का कोई असर नहीं होता है। भगवान के प्रति विरह भावना व्यक्त किया गया है। पाठ का सारांश पहले पद में कबीर ने परमात्मा को सृष्टि के कण-कण में देखा है, ज्योति रूप में स्वीकारा है तथा उसकी व्याप्ति चराचर संसार में दिखाई है। इसी व्याप्ति को अद्वैत सत्ता के रूप में देखते हुए विभिन्न उदाहरणों के द्वारा रचनात्मक अभिव्यक्ति दी है। कबीरदास ने आत्मा और परमात्मा को एक रूप में ही देखने का विवरण दिया है।

12.2. अंग – परिचय

प्रेम की परिपूर्णता एवं परिपक्वता के लिए विरह आवश्यक माना गया है । विरह के द्वारा ही आत्मा – परमात्मा की ओर और भी दृढ़ता के साथ उन्मुख होती हैं। इसलिए प्रत्येक शाखा के भक्ति काव्य में , चाहे वह सगुण का उपासक हो चाहे निर्गुण का , विरह का विधान किया गया है। प्रस्तुत अंग में कबीर ने भी परमात्मा के प्रभाव में और उसके दर्शन करने की तीव्र उत्कंठा में आत्मा के विरह का वर्णन किया है। कबीर कहते हैं कि उनकी आत्मा क्रौंच पक्षी कि भाँति प्रियतम से मिलने के लिए चीत्कार कर रही है। क्रौंच पक्षी का विरह तो केवल कुछ ही समय का होता है , क्योंकि प्रातःकाल होते ही वे दोनों फिर परस्पर मिल जाते हैं , किन्तु परमात्मा का विरह तो अनंत है। जो जन राम से बिछुड़ जाते हैं , वे उन्हें कभी भी प्राप्त नहीं कर पाते। विरह की इसी अनंतता के कारण आत्मा इतनी दुःखी हो जाती है कि उसे न यो दिन को सुख मिलता है और न रात को , बल्कि स्वप्न में भी उसे सुख की प्राप्ति नहीं होती।

विरहिणी आत्मा अपने प्रियतम परमात्मा से मिलने के लिए बहुत ही आतुर है। वह रात-दिन उसके पथ पर खड़ी हुई उसकी प्रतीक्षा करती रहती है। और प्रत्येक पथिक से उनके आने का समाचार पूछती रहती है। बिना प्रियतम के मिले उसे पलभर के लिए भी चैन नहीं मिलता। विरह के कारण वह इतनी दुर्बल हो गई है कि यदि राम के दर्शन की इच्छा से वह ऊपर उठती भी है तो उससे खड़ा नहीं रहा जाता और शारीरिक दुर्बलता के आधिक्य के कारण उठते ही फिर गिर पड़ती है। उसकी अवस्था मृतप्राय हो गई है और मरने के पश्चात यदि प्रभु की प्राप्ति होगी तो उससे कोई लाभ नहीं होगा, क्योंकि लोहे के टुकड़ों के समाप्त होने के पश्चात यदि पारस पत्थर की प्राप्ति हो तो उसका कोई उपयोग नहीं हो सकता।

विरह का दुःख बड़ा ही अनोखा एवं विलक्षण है , क्योंकि इसमें न तो विरहिणी ही प्रियतम तक जा पाती है और न प्रियतम ही उससे मिलने आता है। इस प्रकार विरहिणी का मन विरह कि तीव्र ज्वाला में जल-जलकर भस्म होता रहता है। इस अवस्था में विरहिणी के पास केवल एक ही उपचार रह जाता है कि वह अपने शरीर को विरहाग्नि में जलाकर भस्म कर दे और अपने धुएँ को स्वर्ग तक पहुँचा दे। हो सकता है , उस धुएँ को देखकर ही दयालु प्रियतम के मन में कुछ करुणा का उद्रेक हो।

विरह कि यह पीड़ा बड़ी ही अद्भुत होती है। इसका चाहे जो उपचार किया जाए , किन्तु इसकी वेदना कम नहीं होती। इसकी वेदना का अनुभव केवल दो ही व्यक्ति कर सकते हैं – एक तो जिसे वेदना हो रही है और दूसरा वह जिसने वेदना दी है। यह विरह उस सर्प के समान है जिसके विश को किसी प्रकार का भी मंत्र नहीं उतार सकता। वस्तुस्थिति तो यह कि राम का वियोगी जीवित ही नहीं रह सकता और यदि रह भी जाए तो वह पागल हो जाता है। इस विरह सर्प के दर्शन को धीरता से सहन करना चाहिए , क्योंकि यदि मन में अधैर्य का भाव आ गया तो प्रेम को क्षति पहुँचेगी और फिर प्रियतम का मिलन असंभव हो जाएगा। वस्तुतः प्रेम क्षेत्र के अनुभव को कोई भुक्तभोगी ही जान सकता है।

12.3.विरह कौ अंग का मूल-भाव

कबीर दास जी कहते है कि विरह के द्वारा ही आत्मा परमात्मा की ओर अधिक दृढ़ता के साथ उन्मुख होती है। इसलिए भक्ति कवि में विरह का विधान किया गया है , चाहे वो काव्य सगुण हो या निर्गुण। "विरह कौ अंग" में भी कबीर ने परमात्मा के प्रभाव में , उसके दर्शन करने की तीव्र उत्कंठ में , आत्मा के विरह का वर्णन किया है।

कबीर दास जी कह रहे है कि उनकी आत्मा क्रौंच पक्षी की तरह अपने प्रियतम से मिलने के लिए चितकर कर रही है। क्रौंच पक्षी तो फिर भी सुबह आपस में मिल जाते हैं। उनकी विरह व्यथा तो कुछ समय के लिए ही रहती है , परंतु परमात्मा से भी बिछुड़ी आत्मा का विरह तो अनंत है , मिटता ही नहीं। अर्थात जो मन प्रभु से बिछड़ जाता है। ऐसे मन प्रभु से कभी मिल ही नहीं पता है। विरह की इसी व्याकुलता के कारण आत्मा इतनी व्याकुल हो जाती है। विरहणी आत्मा अपने प्रियतम परमात्मा से मिलने के लिए व्याकुल है। वह दिन-रात अपने प्रियतम की प्रतीक्षा में पथ पर खड़ी रहती है। अपने प्रियतम के बिना उसे पल भर भी चैन नहीं मिलता है।

आत्मा रूपी विरहिणी अपने प्रियतम के दर्शन के लिए उठती भी है तो फिर गिर पड़ती है। उसकी अवस्था मृतप्राय हो गई है और यदि मरने के बाद प्रभु की प्राप्ति हो भी जाती है तो उससे कोई लाभ नहीं होगा। विरह की यह पीड़ा बड़ी ही अद्भुत होती है। इसका चाहे जो उपचार करो , यह वेदना कम नहीं होती है।

12.4. विरह कौ अंग संदर्भ सहित व्याख्या

दोहा – 1 **रात्यूँ रूँनी बिरहनीं, ज्यूँ बंचौ कूँ कुंज।**
कबीर अंतर प्रजल्या, प्रगट्या बिरहा पुंज॥

शब्दार्थ : रात्यूँ = रात भर ; अंतर = हृदय ; पुंज = समूह

व्याख्या : विवेक के जाग्रत हो जाने पर आत्मा परमात्मा का ज्ञान आत्मा रूपी प्रेमिका का हो गया है। पूर्ण परम ब्रह्म को प्राप्त करने की जुगत में आत्मा क्रोंच (कुञ्ज) पक्षी के समान करूँ पुकार करती है। जैसे क्रोंच पक्षी अपने प्रियतम से बिछड़ कर रुदन करती है वैसे ही आत्मा पूर्ण परमात्मा से अलग होकर करूंन वेदना करती है। विरह का पुंज हृदय में प्रकट हो गया है जिससे वेदना और अधिक बढ़ गई है। अनुप्रास, रूपक और उपमा अलंकार का उपयोग किया गया है। दोहे में विरह का वर्णन प्राप्त होता है।

विशेषता : रूढ मिथ्य का प्रयोग हुआ है। सुमित्रानंदन पंत ने भी कविता की उत्पत्ति के संबंध में इस मिथ्य का प्रयोग किया है।

दोहा – 2 **अबंर कुँजाँ कुरलियाँ, गरिज भरे सब ताल।**
जिनि थे गोविंद बीछुटे, तिनके कौण हवाल॥

शब्दार्थ : अंबर = आकाश ; हवाल ; रक्षक

व्याख्या : आसमान में क्रोंच पक्षी ने अपने प्रिय से बिछड़ने के उपरान्त करूँन वेदना की जिससे विचलित होकर बादल बरसने लगे और गरज बरस कर सम्पूर्ण जलासय को भर दिया है। यदि ऐसी विरह वेदना है तो आत्मा की क्या

दशा होगी जो अपने पूर्ण परम ब्रह्म से बिछड़ गई है। भाव है की क्रोंच की विरह वेदना से बरसात हो जाती है तो आत्मा के परमात्मा से बिछड़ जाने पर तो अवश्य ही इश्वर सुन लेगा।

विशेष : व्यतिरेक आलमकार ध्वनित है।

दोहा – 3 **चकवी बिछुटी रैणि की, आइ मिली परभाति।**
जे जन बिछुटे राम सूँ, ते दिन मिले न राति॥

शब्दार्थ : बिछुटी = बिछुडी ; परभाति = प्रभात,सुबह

व्याख्या : चकवी अपने चकवे से रात को बिछड़ कर सुबह मिल जाती है लेकिन जो जीव अपने हरी/राम से बिछड़ जाते हैं। उनका मिलना इतना सार्थक नहीं हो पाता है। भाव है की आत्मा पूर्ण परम ब्रह्म का ही एक अंश होती है लेकिन जन्मों जन्मों से वह भटक रही होती है। इसकी विरह वेदना अधिक है। इस दोहे में इश्वर से मिलने की व्याकुलता का चित्रण किया गया है।

विशेष : **1.** एक प्रकार से कबीर के इस वियोग का उद्दीपन विभाव – वर्णन है जिस में विरहिणी आत्मा को एक वियुक्तयुग्म का मिलन देखकर अपना मिलना खटकता है।

2. यह विश्वास है कि चकवा और चकवी दिन छिपते ही अलग-अलग होकर एक-दूसरे के विरह में तड़पते हैं और प्रभात में मिल जाते हैं।

दोहा -4 **बासुरि सुख नाँ रैणि सुख, ना सुख सुपिनै माँहि।**
कबीर बिछुट्या राम सूँ ना सुख धूप न छाँह॥

शब्दार्थ : वासुरि = दिन

व्याख्या : परमात्मा से अलग हो चुकी आत्मा को ना तो दिन में सुख मिलता है और नाही रात्री में चैन मिल पाता है। राम वियोगी को सपने में भी सुख की प्राप्ति नहीं हो पाती है। जो जन अपने राम से बिछड़ गए हैं उन्हें धुप और छाँव कहीं भी सुख की प्राप्ति नहीं हो पाती है। भाव है की राम वियोगी की स्थिति पूर्णतः अलग होती है और उसकी विरह वेदना बहुत अधिक व्याकुल कर देने वाली होती है। इस दोहे में विशेशोक्ति और अनुप्रास अलंकार का उपयोग हुआ है।

विशेष : प्रस्तुतालंकार , विप्रलम्भ श्रृंगार।

दोहा : 5 **बिरहनि ऊभी पंथ सिरि, पंथी बूझै धाइ।**
एक सबद कहि पीव का, कब रे मिलैगे आइ॥

शब्दार्थ : ऊभी = खड़ी ;पंथ सिरि = मार्ग के किनारे ; कब रे = कब

व्याख्या : विरहनी मार्ग के किनारे खड़ी (उभी) होकर (पंथ सिरि) आने जाने वालों से उत्कंठा सहित दौडकर (ध्याई) अपने प्रिय के सबंध में पूछती है। वह चाहती है की कम से कम एक शब्द तो उनको कोई बता दे की उसका प्रिय कब

आकर उससे मिलेगा। ऐसी ही स्थिति कुछ आत्मा की है जो अपने पूर्ण ब्रह्म से बिछड़ चुकी है। यहाँ पर आत्मा का परमात्मा से नहीं मिल पाने पर विरह का वर्णन प्राप्त होता है।

विशेषता : प्रस्तुतालंकार । (लौकिक एवं आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना एक ही विभाव के युगपत रूप से ही रही है , अतः यहाँ प्रस्तुत अप्रस्तुत का निर्णय न होने से प्रस्तुतालंकार है ।

दोहा : 6 **बहुत दिनन की जोवती, बाट तुम्हारी राम।**
जिव तरसै तुझ मिलन कूँ, मनि नाहीं विश्राम॥

शब्दार्थ : बाट = प्रतीक्षा ; जिव = प्राण

व्याख्या : हे राम मैं तो बहुत दिनों से तुम्हारी बाट (इन्तजार करना) देख रही थी, मन तो तुमसे मिलने को तड़प रहा है और मन में कहीं भी थोडा सा चैन/विश्राम नहीं है। जीव तुमसे मिलने को तरस रहा है। भाव है की पूर्ण ब्रह्म से बिछड़ चुकी आत्मा अपने मालिक से मिलने को बहुत ही व्याकुल है और उसे कहीं भी चैन नहीं मिलता है।

विशेषता : प्रस्तुतालंकार है । विप्रलम्भ श्रृंगार ।

दोहा 7 **बिरहिन ऊठै भी पड़े, दरसन कारनि राम।**
मूवाँ पीछे देहुगे, सो दरसन किहिं काम॥

शब्दार्थ : मूवा = मरने पर , सोदरसन = सुदर्शन ।

व्याख्या : पूर्ण ब्रह्म से मिलने को व्याकुल बिरहनी अपनी प्रिय से मिलने को खड़ी नहीं हो पाती है और यदि वह खड़ी होती भी है तो क्षीण हो चुकी काया के कारण पुनः गिर पड़ती है। विरहनी को लालसा ही की शायद राम आ गए हैं लेकिन ऐसा नहीं होने पर वह निराश होकर पुनः गिर पड़ती है, उठ उठ कर जमीन पर गिर पड़ती है। वह निरास होकर सोचने लग पड़ती है की शायद राम उसे मरने के उपरान्त ही दर्शन देंगे तो ऐसे दर्शन किस काम के, ऐसे दर्शनों का क्या ओचित्य है। भाव है की यदि प्रबल है तो उसके परिणाम स्वरुप आत्मा को जीवन के रहते हुए ही इश्वर से साक्षत्कार हो जाने चाहिए। यहाँ पर आत्मा का पूर्ण परम ब्रह्म से वियोग का वर्णन प्राप्त होता है।

विशेष : "का वर्षा जब कृषि सुखाने" से तुलना कीजिए ।

दोहा 8 : **मूवाँ पीछै जिनि मिलै, कहै कबीरा राम।**
पाथर घाटा लोह सब, (तब) पारस कौंणे काम॥

शब्दार्थ : मूंवा = मृत्यु ; जिनि = यदि

व्याख्या : यह जीवन रहते जिनको राम नहीं मिल पाते हैं, प्रिय नहीं मिल पाते हैं और यदि मृत्यु के उपरांत उन्हें राम की प्राप्ति होती है तो ऐसे मिलन से क्या लाभ होगा। जब पारस पत्थर जिसके सम्पर्क में लोहा/पत्थर आदि संपर्क में आने पर स्वर्ण में तब्दील हो जाता है तो, पारस पत्थर का क्या लाभ जब पत्थर और लोहा आदि सभी समाप्त ही हो

जाएं। यहाँ पर विरह का वर्णन है की हरी से मिलन तभी लाभदाई होता है जब तक जीवन रहे, मरने के उपरान्त हरी की प्राप्ति से साधना को ओचित्य ही समाप्त हो जाता है।

विशेषता : प्रस्तुतालंकार है। दृष्टांत अलंकार द्वारा वेदना की व्यंजना में मिली है। वियोग श्रृंगार का उत्तम परिपाक है।

दोहा 9 : अंदेसड़ा न भाजिसी, संदेसो कहियाँ।
कै हरि आयां भाजिसी, कै हरि ही पासि गयां॥

शब्दार्थ : अंदेसड़ा = अंदेशा , आशंका ; भाजिसी = नष्ट होता है

व्याख्या : विरहनी का दूत को सन्देश है की अंदेशा तभी भागेगा जब या तो हरी स्वंय मिलने को आ जाएं या तो आत्मा ही हरी के पास चली जाएं, तब तक मिलने का शंसय बना रहेगा। हृदय की पीड़ा और द्वन्द तभी मिट पाता है जब जीव पूर्ण परमात्मा से मिल पाए। इस दोहे में विशेषोक्ति अलंकार का उपयोग हुआ है।

विशेषता : प्रस्तुतालंकार है। विप्रलम्भ श्रृंगार का उत्तम परिपाक हुआ है।

दोहा : 10 आइ न सकौ तुझ पै, सकूँ न तूझ बुझाइ।
जियरा यौही लेहुगे, बिरह तपाइ तपाइ ॥

शब्दार्थ : जियरा = जीव , प्राण ; लेहुगे = लोगे

व्याख्या : आत्मा अपने प्रिय के पास जाने में समर्थ नहीं है और वह अपने प्रिय को भी नहीं बुला सकती है। ऐसा प्रतीत हो रहा है की हमारे प्राण तो तुम्हारे विरह में ऐसे ही तप कर समाप्त हो जाएँगे। भाव है की आत्मा अभी इस लायक नहीं हो पाई है की वह हरी से मिल सके और परमात्मा अभी इसलिए नहीं मिल सकती है क्योंकि माया का पूर्ण समर्पण नहीं हो पाया है जिसका विरह वर्णन यहाँ प्राप्त होता है। इस दोहे में पुनः शक्ति प्रकाश अलंकार का उपयोग हुआ है।

विशेषता : प्रस्तुतालंकार विप्रलंभ श्रृंगार का उत्तम परिपाक।

दोहा : 11 यहु तन जालौं मसि करूँ, ज्यूँ धूवाँ जाइ सरग्गि।
मति वै राम दया, करै, बरसि बुझावै अग्गि॥

शब्दार्थ : मसि = क्षार , राख ; सरग्गि = स्वर्ग ; मति = संभव है ; अग्गि = आग ; विरह = दुःख।

व्याख्या : आत्मा विरह की अग्नि में इतनी दग्ध हो चुकी है की वह सोचती है की विरह में वो अपने तन को जला कर इसकी भस्म बना दे और ऊपर (स्वर्ग) की और आगमन करे, जैसे धुआ ऊपर की और उठता है। हो सकता है की आत्मा के भस्म हो जाने पर जो धुआ उठे उसे देख कर राम विरहनी पर दया कर दे और करुना की बारिश कर दे। विरह की वेदना के कारण जीवात्मा अपने जीवन को समाप्त कर देना चाहती है और चाहती ही की कैसे भी इश्वर से उसकी

मुलाक़ात हो जाए।

विशेषता : यहाँ प्रस्तुतालंकार है तथा वियोग श्रृंगार का उत्तम उदाहरण है। रूपकतिशयोक्ति एवं उत्तम परिपाक है।

दोहा :12 यहु तन जालै मसि करौं, लिखौं राम का नाउँ।
लेखणिं करूँ करंक की, लिखि लिखि राम पठाउँ॥

शब्दार्थ : करंक = अस्थि ; पठाऊँ = भेजूँ

व्याख्या : विरह की अग्नि में जल रही आत्मा चाहती है की, पूर्ण परमात्मा से अलग हो चुकी आत्मा चाहती है की वह अपने शारीर को जला कर इसकी स्याही बना ले और हड्डी की लेखनी बना ले। हो सकता है की इससे प्रशन्न होकर राम मिलने को आ जाए। यहाँ पर इश्वर के प्रति अनन्य भक्ति भाव को प्रदर्शित किया गया है।

विशेषता : प्रस्तुतालंकार है। संबंधातिशयोक्ति , विप्रलम्भ श्रृंगार का परिपाक।

दोहा :13 कबीर पीर पिरावनीं, पंजर पीड़ न जाइ।
एक ज पीड़ परीति की, रही कलेजा छाइ॥

शब्दार्थ : पीर = वेदना ; पिरावनी = कसकपूर्ण ; पंजर = शरीर ; परीति = प्रीति ,प्रेम।

व्याख्या : विरह की वेदना बहुत ही दुखदाई होती है और इसकी पीड़ा शरीर से दूर नहीं होती है। शरीर रूपी पिंजरे से विरह की वेदना दूर नहीं होती है, दर्द बना रहता है। यह पीड़ा कलेजे में स्थाई हो चुकी है, अब पीड़ा हृदय में समा चुकी है। भाव है की विरह वेदना बहुत ही दुखदाई होती है और वह शरीर में स्थाई रूप से अपना घर बना लेती है। यह पीड़ा उपचार से भी दूर नहीं होती है। इस दोहे में अनुप्रास, विरोधाभास और रुप्कातिश्योक्ति अलंकार का उपयोग हुआ है।

विशेष : अर्थ शक्ति – उद्भव वस्तु से व्यतिरेक अलंकार ध्वनित है। विप्रलम्भ श्रृंगार।

दोहा : 14 चोट सतानीं बिरह की, सब तन जर जर होइ।
मारणहारा जाँणिहै, कै जिहिं लागी सोइ॥

शब्दार्थ : सतानीं = व्यथित करती है। जर जर = जीर्ण , कृश ।

व्याख्या :विरह की चोट बहुत संताप देने वाली होती है और इसके प्रभाव में सारा शरीर ही जर्जर हो जाता है। इस पीड़ा को या तो मारने वाला जानता है या फिर इसे भोगने वाला ही इस विषय में जान पाता है।यह विरह की वेदना है की जिसके प्रभाव से सम्पूर्ण शरीर ही क्षीण हो जाता है। इसका वर्णन संभव नहीं है इसे भोगने वाला या तो फिर इश्वर ही इस विषय में जानता है। प्रेम की परिक्वता के लिए विरह भी आवश्यक है।

विशेषता : प्रस्तुतालंकार है। विप्रलम्भ श्रृंगार।

दोहा : 15 कर कमाण सर साँधि करि, खैचि जू मार्‌या माँहि।
भीतरि भिद्या सुमार ह्वै जीवै कि जीवै नाँहि॥

शब्दार्थ : सांधि करि = साधकर ; सुमार = गहरी चोट ।

व्याख्या : भगवान् ने प्रेम का बाण चलाया है और निशाना भी बड़े जतन से साध कर लगाया है। यह बाण उसने पूर्ण रूप से खिंच कर मारा है जो चित्त/हृदय के आर पार हो गया है। इस सुमार (सधी हुई मार) से जीवात्मा जीवन और मृत्यु के मध्य संघर्ष कर रही है, इसका जीना और मरना भी संशय के बीच ही है। इस साखी में अनुप्रास और अन्योक्ति अलंकार का उपयोग हुआ है। भाव है की एक और तो सांसारिकता का आकर्षण है तो दूसरी तरफ हरी मिलन की आस यही द्वन्द है जिसके मध्य में जीवात्मा झूल रही है।

विशेषता : रूपक द्वारा क्रिया-बिम्ब का गठन हुआ है , जिससे विप्रलम्भ के उत्तम परिपाक में सहायता मिल रही है ।

दोहा :16 जबहूँ मार्‌या खैंचि करि, तब मैं पाई जाँणि।
लांगी चोट मरम्म की, गई कलेजा जाँणि॥

शब्दार्थ : जाणि = जान , ज्ञान ; मरम्म = मर्मांतक ; जाँणि = बांधना ।

व्याख्या : गुरु देव ने जब विरह / प्रेम का बाण पूर्ण शक्ति के साथ खींच कर मारा तो मुझे ज्ञान हुआ की मर्म की चोट किसे कहते हैं जो मेरे हृदय के आर पार हो गई। भाव है की गुरु ही इश्वर के आदेश से साधक पर ज्ञान के बाण का प्रहार करता है जिससे उसकी भौतिकता वादी सोच हिलकर रह जाती है। इस साखी में विरोधाभाष और अतिश्योक्ति अलंकार का उपयोग हुआ है।

विशेष : रूपकातिशयोक्ति विप्रलम्भ श्रृंगार के परिपाक में सहायक है ।

दोहा : 17 जिहि सर मारी काल्हि सो सर मेरे मन बस्या।
तिहि सरि अजहूँ मारि, सर बिन सच पाऊँ नहीं॥

शब्दार्थ : सरि = बाण ; सच – सुख , शान्ति ।

व्याख्या : जिस विरह बाण से मैं कल मारी गई थी, कल जिस बाण से मुझपे गुरुदेव ने चोट की है, वह मेरे मन में बस गई है और उससे मेरी आसक्ति भी हो गई है। भाव है की ज्ञान की बाण से साधक का तन मन बिंध गया है। इस दोहे में विरोधाभास अलंकार का उपयोग हुआ है क्योंकि जो बाण चोट पहुंचा रहा है वही प्रिय भी लग रहा है।

विशेष : कैसा विरोधाभास है जो बाण शरीर को बींधता है , वहीं प्रिय लग रहा है , यह कबीर जैसे प्रेमी के लिए ही संभव है ।

दोहा :18 बिरह भुवंगम तन बसै, मंत्रा न लागै कोइ।
राम बियोगी ना जिवै, जिवै त बौरा होइ॥

शब्दार्थ : भुवंगम = साँप ; बौरा = पागल ।

व्याख्या : विरह का सांप/सर्प तन (बाम्बी) में रह रहा है जिसके ऊपर उपचार के लिए कोई मन्त्र काम नहीं कर रहा है। राम का वियोगी जीवित नहीं रह पाता है और यदि वह जीवित भी बच जाता है तो वह पागल के साद्रश्य हो जाता है। जो वियोगी होता है, भक्त होता है, वह इस संसार से प्रथक व्यावहार करता है इसलिए लोग उसे पागल समझते हैं। इस दोहे में सांगरूपक अलंकार का उपयोग हुआ है।

विशेष : **1**. प्रथम चरण में सर्प को पकड़ने की क्रिया से विरह की तुलना है , बांबी में से सर्प को मंत्रबल से निकालकर वशीकृत किया जाता है । **2.** रूपक अलंकार ।

दोहा : 19 **बिरह भुवंगम पैसि करि, किया कलेजै घाव।**
साधू अंग न मोड़ही, ज्यूँ भावै त्यूँ खाव॥

शब्दार्थ : पैसि करि = पैठ कर , प्रवेश कर **;** अंग न मोहडी = विचलित नहीं होते ।

व्याख्या : विरह रूपी सांप/सर्प ने हृदय में प्रवेश करके हृदय में घाव कर दिया है । साधू अपने शरीर को अलग नहीं करता है, मोड़ता नहीं है, बल्कि वह अपने शरीर को विरह के सांप के समक्ष प्रस्तुत कर देता है की जैसे वो चाहे वैसे ही इस तन को खा लें। भाव है की साधक कठोर यातनाओं से विचलित नहीं होते हैं और उनका सामना करते हैं।

विशेष : रूपक अलंकार ।

दोहा :20 **सब रग तंत रबाब तन, बिरह बजावै नित्त ।**
और न कोई सुणि सकै, कै साई के चित्त ॥

शब्दार्थ : रंग = रंग , शिराएँ ; तंतर = पशु चर्म निर्मित तांत जो तंत्री में प्रयुक्त होती है ; बाब = इकतारे के समान तंत्री जिसे जोगी बजाते फिरा करते हैं ।

व्याख्या : शरीर रूपी तंत्रि पर शिराओं रूपी तांतों को विरह नित्य बजाता है । विरह वेदना से है शिरोपरशिराएँ झंकृत रहती हैं । इससे निस्सृत संगीत को कोई तीसरा नहीं सुन सकता । या तो उसे प्रेयतम ही सुन सकते हैं और या मेरा हृदय ही प्रेम क्षेत्र के अनुभव ऐसे हैं जिन्हें भुक्त भोगी ही जन सकते हैं ।

विशेषता : रूपक , विप्रलंभ श्रृंगार

दोहा :21 **बिरहा बिरहा जिनि कहौ, बिरहा है सुलितान ।**
जिह घटि बिरह न संचरै, सो घट सदा मसान ॥

शब्दार्थ : बिरहा = बुरा ; जिनि = मत ; सुलितान = राजा ; मसान = श्मशान ।

व्याख्या : साधक को सीख है की तुम बिरह को बुरा मत समझो/बुरा मत कहो, वह तो राजा के समान उच्च है, जिस घट में बिरह का संचार नहीं होता है वह सदा ही शमशान ही रहता है। शुद्ध और पूर्ण प्रेम के अभाव में विरह अधुरा

रहता है, जिस घट में इश्वर के प्रति विरह का भाव नहीं है वह मुर्दे के समान ही है, यहाँ पर विरह के महत्त्व को समझाया गया है।

विशेष : रूपक अलंकार।

दोहा : 22 **अंषड़ियाँ झाई पड़ी, पंथ निहारि निहारि।**
जीभड़ियाँ छाला पड़्या, राम पुकारि पुकारि॥

शब्दार्थ : अषड़ियाँ = नेत्र ; झांई मन्द।

व्याख्या : विरहनी आत्मा का अपने प्रियतम का राह देखते देखते आँखों के आगे काली झाइयां पड़ने लगी हैं और आँखों के आगे अन्धेरा छाने लगा है। जिव्हा में छाले पड़ गए हैं राम राम पुकारते पुकारते। यहाँ पर विरहनी की उत्कंठा का चित्रण किया गया है की कैसे वह विरह की अग्नि में जल रही है और उसकी मानसिक और शारीरिक स्थिति क्या है।

विशेष : अतिशयोक्ति अर्थ-शक्ति –उद्भव वस्तु से वस्तु ध्वनि। ध्वनित है – 'ईश्वर के प्रेम में तप्त होते रहना अपेक्षित है'।

दोहा :23 **इस तन का दीवा करौं, बाती मेल्यूँ जीव।**
लोही सींचौ तेल ज्यूँ, कब मुख देखौं पीव॥

शब्दार्थ : दीवा = दीपक ; मेल्यूँ = डालूँ ; जीव = प्राण ; लोही = रक्त ।

व्याख्या : इस शरीर रूपी दीपक मैं अपने प्राणों की बाती को प्रज्वलित कर रही हूँ तथा अपने रुधिर रक्त को तेल के रूप में डालकर सींचती रहे। जा जाने कब हरी के दर्शन हो जाएं, पीव का मुख कब देखने को मिल जाए। अपने प्राणों को भी समाप्त कर विरहनी अपने प्रियतम से मिलना चाहती हैं।

विशेष : **1.** औत्सुक्य संचारी की व्यंजना हुई।
2. ईश्वर के मुख को देखने के लिए संभावित योजना के कारण यहाँ संभावना अलंकार है।

दोहा : 24 **नैंना नीझर लाइया, रहट बहै निस जाम।**
पपीहा ज्यूँ पिव पिव करौं, कबरू मिलहुगे राम॥

शब्दार्थ : नैनां = नेत्रों से ; निझर = निर्झर ; जाम = याम , प्रहर (दिन के)।

व्याख्या : अपने पूर्ण परमात्मा से बिछड़ चुकी आत्मा विरह में तड़प रही है और उसके आँखों से निरंतर आसुओं की झड़ी लगी है। रहट के जल पात्र की भाँती उसमे से दिन रात पानी गिर रहा है वह पपीहा की भांति पीव पीव कर रही है, ना जाने उससे प्रियतम कब आकर मिलेंगे।

विशेष : **1.** गंयोत्प्रेक्षा एवं उपमा की संसृष्टि है। **2.** अश्रु सात्विक की व्यंजना हुई है।

दोहा :25 **अंषड़िया प्रेम कसाइयाँ, लोग जाँणे दुखड़ियाँ।**
साँई अपणैं कारणै, रोइ रोइ रतड़िया॥

शब्दार्थ : प्रेम कसाइयाँ = प्रेम की कसौटी पर कसी गई। साई स्वामी , प्रिया ।

व्याख्या : विरह की अग्नि में जलते हुए, आँखें लाल पड गई हैं और सभी को मेरे दुखों के विषय में पता चल गया है। मेरी आँखे मेरे साईं के रो रोकर दुखने चले हैं।

विशेष : विप्रलंभ शृंगार।

दोहा : 26 **सोई आँसू सजणाँ, सोई लोक बिड़ाँहि।**
जे लोइण लोंहीं चुवै, तौ जाँणों हेत हियाँहि॥

शब्दार्थ : सोई =वे ही ; सजणाँ = सज्जनों के लोक ; बिड़ाही = लोक ब्रह्मा अर्थात दुर्जनों के ; लोइण = नेत्र ; लोहीं = रक्त ; चुवै = गिरता है।

व्याख्या : सच्चे हृदय से जो आंसू गिरते हैं और जो अपनों के लिए होते हैं और गैरों के लिए भी अश्रु तो समान रूप से ही गिरते हैं, लेकिन अश्रु को देख कर उसकी भावना का पता लगाना कठिन हैं। लेकिन जिन आंसुओं से लहू गिरता है वही सच्चे आंसू होते हैं। भाव है की सच्चे बिरह की पहचान करना मुश्किल तो होता है लेकिन बिरह के आंसुओं को देखकर बिरह की स्थिति का पता लगाया जा सकता है।

विशेषता : अर्थ शक्ति – उद्भव वस्तु से अलंकार ध्वनि है , व्यतिरेक अलंकार ध्वनित है।

दोहा : 27 **कबीर हसणाँ दूरि करि, करि रोवण सौं चित्त।**
बिन रोयाँ क्यूँ पाइये, प्रेम पियारा मित्त॥

शब्दार्थ : मित्त = मित्र , प्रियतम।

व्याख्या : कबीर साहेब की वाणी है की तुम हंसना बंद कर दो, सुखमय और विलासिता के जीवन को छोड़ दो और रुदन करो, बिरह की अग्नि में जलो। बगैर बिरह की वेदना के तुम अपने प्रियतम को कैसे प्राप्त कर पाओगे। भाव है की सांसारिक सुखो को छोडकर इश्वर से मिलन की अग्नि, बिरह में रहने से ही इश्वर की प्राप्ति संभव हो पाती है। सुखों को छोडकर अपने प्रिय से अलग होने की तड़प में रहना श्रेयकर है।

विशेषता : अनभिप्रेत रुदन को काम्य बताने के कारण यहाँ अनुज्ञा अलंकार है।

दोहा :28 **जौ रोऊँ तो बल घटे, हँसौं तो राम रिसाइ।**
मनही माँहि बिसूरणाँ, ज्यूँ घुंण काठहि खाइ॥

शब्दार्थ : बिसूरणाँ = क्रांदन ; घृंण = धुन ; काठहि = काष्ठ को।

व्याख्या : यदि मैं विरह में रोता हूँ तो मेरी शक्ति क्षीण होती है , हँसता हूँ तो राम को प्रिय नहीं है , क्योंकि बिना मिलन उल्लास क्यों और कैसे ? अब मेरी आत्मा मन ही मन क्रांदन कर मुझे वैसे ही क्षीण करती रहती है जैसे घुन भीतर ही भीतर काष्ठ को काट कर खोखला बना देता है। भाव यह है कि बिरह भीतर ही भीतर सालता रहता है।

विशेष : (1)'हँसौं तो राम रिसाई' द्वारा 'पीड़ित जगत में मनुष्य का हँसना अनुचित है' की वस्तु-ध्वनि है। **(2)** उपमा

दोहा :29 हंसि हंसि कंत न पाइए, जिनि पाया तिनि रोइ।
जो हाँसेही हरि मिलै, तो नहीं दुहागनि कोइ॥

शब्दार्थ : दुहागनि = दुर्भागिनी।

व्याख्या : हंस हंस कर सांसारिक सुखों में लिप्त होकर रहने से हरी की प्राप्ति संभव होती है। जिन जिन ने हरी को प्राप्त किया है वह विरह में रुदन करके ही प्राप्त किया है, उन्होंने विरह को महसूस किया है। यदि विषय वासनाओं में लिप्त होकर जीवात्मा सुखी रहती को कोई भी जीवात्मा दुहागीन नहीं होती और सदा सुहागन ही रहती। आत्मा के दुहागन से अभिप्राय है की जो जीवात्मा हरी का सुमिरन नहीं करती है वह अनेको अनेक योनियों में भटकती ही रहती है, उसकी मुक्ति नहीं होती है।

विशेष : अर्थांतरन्यास।

दोहा-30 हाँसी खेलौ हरि मिलै, तौ कौण सहे षरसान।
काम क्रोध त्रिष्णाँ तजै, ताहि मिलैं भगवान॥

शब्दार्थ : परसान = तलवार।

व्याख्या :हँसते खेलते और विषय वासनाओं में लिप्त रहकर यदि हरी की प्राप्ति संभव हो जाए तो कौन सांन पर चढ़ें ? यदि सुखों से हरी की प्राप्ति संभव हो जाए तो कौन तलवार की धार के समान तीक्ष्ण विरह वेदना को सहन करे। भाव है की हरी की प्राप्ति हेतु बिरह को सहन करना पड़ता है यही भक्ति मार्ग है।

विशेष : तुलना कीजिए – अति तीक्ष्ण प्रेम कौ पंथ महा , तलवार की धार पै धावनौ"।

12.5. सारांश

निर्गुण भक्ति की ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि कबीरदास जी का सम्पूर्ण जीवन धार्मिक आडम्बरों से सतत् विद्रोह का जीवित दस्तावेज है। 'जागरण के अग्रदूत' हिन्दी साहित्य में अक्खड़ एवं फक्कड़ कवि के रूप में विख्यात कबीरदास जी एक क्रांतिकारी ,उपदेशक , सन्त कवि और समाज सुधारक भी थे। ये सिकन्दर लोदी के समकालीन थे। कबीर का अर्थ अरबी भाषा में महान होता है। कबीर पंथी, एक धार्मिक समुदाय जो कबीर के सिद्धांतों और शिक्षाओं को अपने जीवन शैली का आधार मानते हैं।

कबीरदास का लालन-पोषण एक जुलाहा परिवार में हुआ। इन्होंने गुरु रामानंद से दीक्षा ली। कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे। उन्होंने एक कुशल समाज-सुधारक की तरह तत्कालीन समाज में व्याप्त धार्मिक कुरीतियों, मूर्ति-पूजा, कर्मकांड

तथा बाहरी आडंबरों का जोरदार तरीके से विरोध किया।उनका मानना था कि आत्मा और परमात्मा में कोई तात्विक भेद नहीं होता, बल्कि माया का एक झीना सा आवरण होता है जिसे हृदय की शुद्धता एवं पवित्रता से मिटाया जा सकता है। कबीरदास जी ने हिन्दू-मुसलामन ऐक्य का खुला समर्थन किया।

"हिन्दू कहे मोहि राम पियारा, तुरक कहे रहिमाना, आपस में दोऊ लरि मुए, मरम न काहू जाना।"

कबीर के दोहों में गुरु-भक्ति, सत्संग, निर्गुण भक्ति तथा जीवन की व्यावहारिकता आदि विषयों पर ज़ोर दिया गया है।कबीर की वाणी का संग्रह 'बीजक' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके तीन भाग हैं- साखी, सबद और रमैनी।कबीर की भाषा में भोजपुरी, अवधी, ब्रज, राजस्थानी, पंजाबी, खड़ी बोली, उर्दू और फ़ारसी के शब्द घुल-मिल गए हैं। अत: विद्वानों ने उनकी भाषा को 'सधुक्कड़ी', 'पंचमेल खिचड़ी' या 'अकिंचन की खिचड़ी'कहा है।

कबीर ने निर्गुण ब्रह्म की उपासना की है। उनके राम दशरथ पुत्र राम नहीं वरन् घट-घट में बसने वाले राम हैं। दुनिया के हर कण में विद्यमान हैं और उन्हें सच्चे मन और प्रेम से प्राप्त किया जा सकता है। कबीर अपने को राम की बहुरिया मानते हैं जिसका परम कर्त्तव्य है कि वह अपने प्रियतम (ईश्वर) की आराधना करे। कबीर ने भक्तिपरक दोहों में ईश्वर के प्रति विरह-वेदना को प्रकट किया है। वे कहते हैं कि अपने ईश्वर से बिछड़ने पर जीव (आत्मा) को कहीं भी सुख की प्राप्ति नहीं होती है। न तो उसे दिन में चैन पड़ता है और न ही रात को आराम; न उसे धूप में सुख मिलता है और न ही छाँव में।

12.6. बोध प्रश्न

1. विरह कौ अंग –परिचय दीजिये।
2. "बिरह कौ अंग" दोहे को सप्रसंग व्याख्या कीजिये।
3. विरह कौ अंग का मूल-भाव क्या है ?
4. विरह कौ अंग पर एक निबन्ध लिखिए।

12.7. सहायक ग्रन्थ

1. संतों की सांस्कृतिक संसुती – डॉ. राज रतन पाण्डेय, उपकार प्रकाशन, दिल्ली।
2. कबीर मीमांसा – डॉ . रामचन्द्र तिवारी – लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
3. कालजयी कबीर – संपादक – हर महेंद्र सिंह गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी, अमृतसर।
4. कबीर साहित्य की परख – परशुराम चतुर्वेदी, भारती भण्डार, इलाहाबाद।
5. कबीर – हजारी प्रसाद द्विवेदी राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

डॉ . अन्नदासु . सरला देवी

13. परचा कौ अंग

13.0. उद्देश्य

कबीर दास के साखी ग्रंथ में मानव के नाना प्रकार के राग द्वेष ईर्षा स्नेह आदि सहज गुणों को परमात्मा के साथ और परमात्मा में विलीन होने में किस प्रकार सहायक सिध्द होते है- इसके बारे में विस्तृत रूप में परिचय दिया गया है। इस इकाई में साखी के परचा कौ अंग के बारे में व्याख्या सहित अध्ययन करेंगे। इस इकाई को बढ़ने के बाद हम परचा कौ अंग में दिये गये दोहों के बारे में जान पायेंगे।

रूपरेखा

13.1. प्रस्तावना
13.2. परचा कौ अंग – 'अंग परिचय'
13.3 संदर्भ साहिता व्याख्या
13.4. सारांश
13.5. बोध प्रश्न
13.6. सहायक ग्रन्थ

13.1. प्रस्तावना :

कबीर ने परमात्मा को सृष्टि के कण-कण में देखा है, ज्योति रूप में स्वीकारा है तथा उसकी व्याप्ति चराचर संसार में दिखाई है। इसी व्याप्ति को अद्वैत सत्ता के रूप में देखते हुए विभिन्न उदाहरणों के द्वारा रचनात्मक अभिव्यक्ति दी है। कबीरदास ने आत्मा और परमात्मा को एक रूप में ही देखा है। कबीर साहेब जी को शांतिमय जीवन प्रिय था और वे अहिंसा, सत्य, सदाचार आदि गुणों के प्रशंसक थे। अपनी सरलता, साधु स्वभाव तथा संत प्रवृत्ति के कारण आज विदेशों में भी उनका समादर हो रहा है। कबीर साहेब जी सिर्फ मानव धर्म में विश्वास रखते थे। 'पाहन पूजे हरि मिलैं, तो मैं पूजौं पहार। इस इकाई में परचा कौ अंग के दोहों के बारे में विस्तार रूप से जानेंगे।

पारब्रह्म का तेज (सौंदर्य) वाणी का विषय नहीं है | परब्रह्म तो अनुमान एवं उपमा से परे है| अनुमान एवं उपमा के सब साधन तो लौकिक एवं माया के क्षेत्र के हैं| वह केवल साक्षात अपरोक्ष अनुभूति का ही विषय है| वह अगम अगोचर है| मन और बुद्धि के द्वारा अगम्य हैं| परब्रह्म का अनंत प्रकाश ऐसा प्रतीत होता है मानो अनेक सूर्यो की श्रेणियां उदित हो गई हो। गुरु ने जो मार्ग दिखाया है उस पर चलने से अंतःकरण में ही उस दुर्गम अथवा अगम्य तत्व का साक्षात्कार कर सकते है। विशुद्ध चैतन्य माया का आश्रय लेकर बद्ध जीव हो जाता है और पुन: आत्म-बोध (आत्म-परिचय) प्राप्त करके अर्थात जाग जाने पर विशुद्ध चैतन्य हो जाता है| जब साधक अपने अंतःकरण की सुरति-

निरति दोनों अवस्थाओं से पृथक् होकर इनका दृष्टा मात्र रह जाता है तभी उसको इनका वास्तविक परिचय होता है। उसी समय आत्म तत्व पर लगा आवरण हट जाता है और साधक को उस(परमात्मा) का साक्षात्कार होने लगता है।

कबीर कहते हैं कि **आत्मा को परमात्मा का परिचय इस प्रकार हुआ मानो उसे किसी सूर्य की कतार का आभास हो गया हो**। आज आत्मा रूपी बहुरिया परमात्मा रूपी पति के साथ जागी तो उसे इस अनुपम आश्चर्यपूर्ण एकाकार का अभास हुआ।

13.2. परचा कौ अंग – 'अंग परिचय'

परचा का शुद्ध रूप है परिचय। प्रस्तुत अंग में कबीर ने आत्मा और परमात्मा के महमिलन का परिचय देते हुए ब्रह्मा के स्वरूप का परिचय दिया है। उन्होंने बताया है कि परमात्मा अनंत तेज से युक्त है। वह तेज ऐसा प्रतीत होता है मानो असंख्य सूर्यों की सेना ही एक स्थान पर एकत्र हो गयी हो। उस तेज का वर्णन करना अत्यंत कठिन है , कोई उसकी महत्ता का अनुमान भी नहीं लगा सकता। ब्रह्म अगम्य और अगोचर है और जहाँ पर उसका महातेज विदीर्ण होता है , वह स्थान भी अगम्य है। ऐसे तेजस्वी ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन करना शब्दों के सीमित साधन की शक्ति से बाहर है।

कबीर ने फिर बताया है कि बह ब्रह्म कमाल के समान है – ऐसा कमाल जो बिना पानी के ही फूलता-फलता है और मेरा मन-आत्मा भौरे के समान है। जिस प्रकार भ्रमर का कमल के प्रति अनंत अनुराग होता है , उसी प्रकार मेरी आत्मा भी गुरु के अनुराग में तल्लीन है। मेरे हृदय में कमल खिल रहा है। जिसमें ब्रह्म का निवास है। जहाँ सागर , सीप एवं स्वाति नक्षत्र कि बूँद से मोती उत्पन्न नहीं होता। ऐसे शून्य शिखर पर प्रभु के दर्शनानंद रूपी मोती की प्राप्ति होती है। ब्रह्म की प्राप्ति का मार्ग योग-पंथ है जिसका ज्ञान गुण की कृपा से ही होता है। जिन लोगों पर गुरु की कृपा नहीं होती , वे मार्गभ्रष्ट हो जाते हैं और जिन लोगों पर गुरु की कृपा होती है वे सत्पथ पर चलकर मुक्ति प्राप्ति कर लेते हैं। सांसरिक बंधन ब्रह्म प्राप्ति में बाधक है। जब आत्मा इन बंधनों को छोड़कर निस्सीम प्रदेश में प्रवेश कर लेती है , तभी उसे शून्य प्रदेश में अमरूत के समान ब्रम्हानंद की प्राप्ति होती है। जब आत्मा और परमात्मा का मिलन हो जाता तो हृदय के सारे अज्ञानों का समूह एकदम तिरोहित हो जाता है। अतः कबीर कहते हैं कि मेरा चित्त सांसरिक विषयों से उदासीन होकर उन्मत्त अवस्था को प्राप्त हो गया है। पहले जो मन माया के चक्कर में आकर इधर-उधर भटकता रहता था , वह अब सर्वथा निश्चल और संत होकर ब्रह्म से इस प्रकार मिल गया है जिस प्रकार नमक पानी में मिलकर तदाकार हो जाता है।

वस्तुतः आत्मा परमात्मा से मिली भी तो नहीं है, बल्कि उसी का एक रूप है। जिस प्रकार बर्फ की उत्पत्ति पानी से होती है और फिर वह पिघलकर पुनः पानी बन जाता है , इसी प्रकार आत्मा परमात्मा का ही रूप में है जो कुछ दिनों तक काया का आवरण पहने रहने के कारण भिन्न रूप में भासित होता रहता है , किन्तु जब यह आवरण हट जाता है तो अपने उसी महारूप में मिलकर तदाकार हो जाता है। सांसरिक आकर्षण भी आत्मा और परमात्मा के मिलने में सबसे बड़ी बधा होते हैं। जिस प्रकार दलाल क्रय विक्रय करके दूसरे भोले लोगों को अपने चंगुल में फँसाता

रहता है , उसी प्रकार ये आकर्षण भी आत्मा के कर्मों के बंधन में बाँधते रहते हैं। जब तक कर्मों का बंधन है तब तक ब्रह्म की प्राप्ति असंभव है ,और ये बंधन गुरु की कृपा से नष्ट होते हैं। कबीर कहते हैं किसी भाग्य से मिझ पर गुरु की कृपा हुई और पक्षी रूपिणी मेरी आत्मा शून्य प्रदेशी रूपी गगन में उड गई। वन्य प्रदेश में पहुँच कर इस पक्षी ने बिना चोंच के ही सहस्त्रदल से श्रवित अमृत का पान किया। यह पान इतना मधुर था कि इसके सामने संसार के सारे आनंद निस्सार और तुच्छ दिखाई देने लगे। कहने का भाव यह है कि आत्मा कि आत्मा को परमात्मा तक पहुँचने केलिए मूलाधार , स्वाधिष्ठान , पानिपूरक , अनहद , विशुद्ध और आज्ञाचक्र इन छः चक्रों का भेदन करना होता है और जब इडा पिंगला से मिल जाती है और अब पिंगला मूलाधार से अपना कोई सम्बन्ध नहीं रखती , अर्थात मूलाधार चक्र का भेदन कर देती है , तभी प्रभु की प्राप्ति होती है , क्योंकि तब कुण्डलिनी के लिए ब्रह्म नाड़ी का मार्ग खुल जायेगा और वह ब्रह्मरंध्र में पहुँच जायेगी , जहाँ पर शिव का – परम शक्ति का – निवास है और जहाँ पर अलौकिक आनंद की सर्वदा वर्षा होती रहती है।

13.3. संदर्भ साहिता व्याख्या

दोहा :1 कबीर तेज अनंत का, मानी ऊगी सूरज सेणि।
पति संगि जागी सूंदरी, कौतिग दीठा तेणि॥1॥

शब्दार्थ : अनंत = परमात्मा ; सेणि = श्रेणी अथवा सेना ; पति = स्वामी,ब्रह्मा ; जागी = ज्ञान प्राप्त ; सुंदरी = पत्नी अर्थात आत्मा ; दीठा = दृष्टिगत।

व्याख्या : कबीरदास कहते है कि आत्मा को परमात्मा का परिचय इस प्रकार हुआ मानो उसे किसी सूरी की कतार का अभास हो गया हो। आज आत्मा रूपी बहुरूया परमात्मा रूपी पति के साथ जागी तो उसे इस अनुपम आश्चर्यपूर्ण एकाकार का आभास हुआ।

विशेष : अज्ञानरात्रि से केवल आत्मा ही जागती और तब प्रिय-परमात्मा- का संयोग प वह आनंदमय दृश्यावलोकन करती है।

दोहा : 2 कौतिग दीठा देह बिन, मसि बिना उजास।
साहिब सेवा मांहि है, बेपरवांही दास॥2॥

शब्दार्थ : कौतिक = कौतुक, आश्चर्य ; उजास = उजाला , प्रकाश।

व्याख्या : जिस स्वामी-ब्रह्मा-का सौन्दर्य देखा गया वह अशरीरी था , निराकार के सौन्दर्य का ही वह दर्शन करे। (सती तो यह है कि) प्रभु जन-सेवा से ही प्राप्य है , उसमें भक्त भी निश्चिन्त हो जाता है।

विशेष : 1) "साहिब सेवा मांहि" – से तात्पर्य जन-सेवा इसलिए है कि जन-सेवा हि वस्तुतः नारायण सेवा है , मनुष्य उसी का तो अंश है। अंश की सेवा अंशी की हि सेवा है। कबीर का यह दृष्टिकोण अत्यन्त सामाजिक और लोकमंगल की भावना से ओत-प्रोत है।

2) विभावना अलंकार।

दोहा :3 पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान।

कहिबे कूं सोभा नहीं, देख्याही परवान ॥3॥

शब्दार्थ : उनमान = अनुमान ; परवान = प्रमाण।

भावार्थ : उस प्रभु के तेजयुक्त सौन्दर्य को वाणी द्वारा नहीं कहा जा सकता , कहने में उस अनुपम रस की शोभा ही नहीं। उस सौन्दर्य का अनुमान भी कोई नहीं लगा सकता ,वह तो एकमात्र दर्शन का ही विषय है।

विशेष : विशेषोक्ति अलंकार।

दोहा :4 अगम अगोचर गमि नहीं, तहां जगमगै जोति।

जहाँ कबीरा बंदिगी, 'तहां' पाप पुन्य नहीं छोति॥4॥

शब्दार्थ : आगम = अगम्य ; अगोचर = जो दिखाई न दे ; गामि नहीं = जिस तक गति (पहुँच) नहीं है ; छोति = छूत-छात, भेद-भाव

भावार्थ : वह परम-तत्व अगम्य और अगोचर है (साधारण व्यक्तियों के लिए , साधना से तो उसकी प्राप्ति हो ही जाती है)। इसलिए जहाँ उस परमात्मा की ज्योति अपना प्रकाश विकीर्ण करती है वह स्थान भी अगम्य और छुआछात सबकी परिधि से परे है अर्थात सब सब उसका भजन कर सकते हैं।

विशेष : विरोधाभास अलंकार।

दोहा :5 हदे छाड़ि बेहदि गया, हुवा निरंतर बास।

कवल ज फूल्या फूल बिन, को निरषै निज दास॥5॥

शब्दार्थ : हदे = सीमा ,संबंध ; निरषै = सेखाना।

भावार्थ : जब मैं संसार से अपना संबंध विच्छिन्न का निस्सीम की साधना में प्रवृत्त हुआ , तो मैं उसकी सीमा में ही निरंतर रहने लगा अर्थात आत्मा और परमात्मा का मिलन हो गया। वहाँ पहुँच कर मैं ने देखा कि एक कमल बिना मृणाल के भी वहाँ प्रफुल्ल विकास पा रहा है (संसार माया से असंपृक्त ईश्वर का सौन्दर्य मृणाल के कमल का विकास है , जीवात्मा के संदर्भ में भी यह अर्थ लगाया जा सकता है कि इस संसार में माया-जनित आकर्षणों में ही वह आनन्द पता था , किन्तु निस्सीम की सीमा में पहुँचकर बिना इस माया से जुड़े भी वह आनन्द पा रहा है) इसको प्रभु भक्त के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं देखा सकता।

विशेष : "फूल्याफूल बिन"में फूल से तात्पर्य उस कमल मृणाल से ही है , जिसके द्वारा वह अपना जीवन रस ग्रहण करता है। यदि 'फूल' का अर्थ 'फल' ही लगाया जाये तो कमल के खिलने की बात की कोई तुक नहीं बैठती।

दोहा :6 कबीर मन मधुकर भया, रह्या निरंतर बास।
कवल ज फूल्या जलह बिन, को देखै निज दास॥6॥

टिप्पणी : ख-कवल जो फूला फूल बिन

शब्दार्थ : जलह = जल

व्याख्या : कबीर कहते हैं कि मैंने ऐसा कमल (परमात्मा) देखा है जो बिना (माया) के भी , विकसित हो रहा है (आनन्द उठा रहा है) ऐसा अनुपम केवल वही है , अन्य कोई नहीं। मेरा मन उस कमल का प्रेमी भ्रमर हो गया एवं उसके सम्पुट में ही निरंतर निवास करने लगा अर्थात उसी में लीन हो गया।

विशेष : रूपक तथा विभावना की संसृष्टि के साथ परिसंख्या का संकर भी हो गया है , इससे सूक्ष्म को मूर्तिमान कराने में सफलता मिल सकी है।

दोहा :7 अंतरि कवल प्रकासिया, ब्रह्म बास तहां होइ।
मन भवरा तहां लुबधिया, जांणैगा जन कोइ॥7॥

शब्दार्थ : अंतरि = हृदय ; लुबधिया = लुब्धक , लोभी ; जन = भक्त।

व्याख्या : मेरे हृदय के भीतर कमल खिल रहा है अथवा मेरे शरीर के भीतर कमल विकसित हो रहा है। जिस में ब्रह्म का निवास है। मेरा मन रूपी भ्रमर उस कमल रस के पान करने के लिए लालयित हो गया है , इस रहस्य को बिरले भक्त ही जान सकते हैं। (इसका साक्षात्कार कुछ बिरलों को ही होता है)।

विशेष : योग पंथ में शीश में सहस्रदल कमल की स्थिति मनी गई है। योगपंथियों की मान्यता है कि यहीं ब्रह्म का निवास है , जहाँ से निरंतर अमृत स्रावित होता है। इस कमल की स्थिति हृदय में भी मानकर संतों ने वर्णन किया है। 'अन्तर' का अर्थ हृदय लिया जय अथवा 'शरीर के भीतर' प्रत्येक दशा में कबीर का तात्पर्य सहृदल कमल से ही है।

दोहा :8 सायर नाहीं सीप बिन, स्वाति बूँद भी नाहिं।
कबीर मोती नीपजै, सुन्नि सिषर गढ़ माँहिं॥8॥

शब्दार्थ : सायर = सागर ; नीपजै = उत्पन्न होना ; सुन्नि = शून्य।

व्याख्या : कबीरदास कहते हैं कि जहाँ सागर ,सीप एवं स्वाति नक्षत्र की बूँद-मोती की उत्पत्ति का एक भी उपादान नहीं है , ऐसे शून्य शिखर (सहस्रदल कमल के पास ही या उसके भीतर शून्य की स्थिति)पर प्रभु के दर्शनानन्द के मोती उत्पन्न होते हैं।

विशेष : यहाँ विरोधाभास अलंकार है।

दोहा :9 घट माँहे औघट लह्या, औघट माँहैं घाट।
कहि कबीर परचा भया, गुरु दिखाई बाट॥9॥

टिप्पणी: क-औघट पाइया॥

शब्दार्थ : घट = हृदय ; औघट = अटपटा ,विचित्र ; ओघट = अविहित,निषिद्ध पन्थ ; घाट = किनारा, तट ; परचा = मिलन ;बाट = मार्ग।

व्याख्या : कबीरदास कहते हैं कि सदगुरु ने जो मार्ग दिखाया उसी के द्वारा अपने हृदय में उस ब्रह्म के दर्शन हो गये। गुरु द्वारा प्रशस्त यह पन्थ ही है। इसी के द्वारा जिसे (मूर्ख लोगों द्वारा) कुमार्ग (दुर्गम साधना) कहा जाता है , मैंने अपना लक्ष्य (घाट) प्राप्त कर लिया।

विशेष : रूपकतिशयोक्ति द्वारा इस शरीर या संसार को ही घाट कहा गया है। यही घाटत है तथा दूसरा घाट परमतत्व है , जो वस्तुतः अवघट है अर्थात घाट है भी, नहीं भी है ; इसी को विरोधाभास के द्वारा स्पष्ट इया गया है।

दोहा :10 सूर समांणो चंद में, दहूँ किया घर एक।
मनका च्यंता तब भया, कछू पूरबला लेख॥10॥

शब्दार्थ : सुर = पिंगला नडी; घर एक = सुषुम्ना; च्यंता = इच्छित ; पूरबला लेख = पूर्व जन्म के सतकृत्य।

भावार्थ : साधक कबीर कहते हैं कि पिंगला नाड़ी इडा में समा गई और दोनों ने सुषुम्ना नाड़ी को ही अपना घर-मार्ग बना लिया। इन दोनों के एकत्रित होकर सुषुम्ना वास से ही कुण्डलिनी ऊपर ब्रह्माण्ड-सहस्त्रदल- की ओर उन्मुख हुई और सहस्त्रदल तक पहुँच कर अमृत का पान करने लगी। यह मेरा मनचाह हुआ, जो किसी पूर्वजन्म के सुकुत्यों का ही फल है।

विशेष : योग पन्थ की मान्यतानुसार मेरुदण्ड के बायीं ओर इडा , दाहिनी ओर पिंगला और मध्य में सुषुम्ण नाड़ी के मध्य में वज्रा, वज्रा के मध्य में चित्रिणी और चित्रिणी के मध्य में ब्रह्म नाड़ी होती है। इसी ब्रह्म नाड़ी से होकर कुण्डलिनी सहस्त्रदल कमल तक पहुँचती है, किन्तु यह तभी संभव है जब इडा और पिंगला एक होकर सुषुम्णा में प्रवेश करे। यह कबीर का 'च्यंता'है।

दोहा :11 हद छाड़ि बेहद गया, किया सुन्नि असनान।
मुनि जन महल न पावई, तहाँ किया विश्राम॥11॥

शब्दार्थ : हद = सीमा, माया जनित भ्रमयुक्त संसार ; बेहद = सीमाहीन; सुन्नि अस्नान = सहस्त्रदल कमल में अमृत प्राप्ति; महल = अंतःपुर, शून्य या ब्रह्मरन्ध्र।

भावार्थ : कबीर कहते हैं कि जब मैं इस मयाजनित भ्रममय समीप संसार का परित्याग कर निस्सीम ब्रह्म की साधना में प्रवृत्ति हुआ तो मैं शून्य प्रदेश में झरते अमृत से नहा गया , पूर्णतया उस ब्रह्म-रस से सराबोर हो गया। बड़े-बड़े मुनिगण जिस शून्य प्रदेश के निवास के लिए तरसते हैं , उसका मार्ग नहीं पा सकते , वहीं मेरा स्थायी वास हो गया है। अर्थात जो ब्रह्म मुनियों को दुर्लभ है , उसे मैंने प्राप्त कर लिया है।

विशेष : 1) शून्य नागार्जुन तथा असंग से शून्यवाद के रूप में प्रतिष्ठित होकर बौद्धों के प्रबलतम दर्शन की चरम उपलब्धि के रूप में स्वीकृत रहा। सिद्ध-नाथों में यह नेरतम्य की उस स्थित के रूप में स्वीकृत हुआ , जहाँ सारे संकल्प समाप्त हो जाते हैं। तथा मन निर्विकल्प समाधि की अवस्था में पहुँच जाता है। इसी शून्य में सिद्धों ने महसूख या समरसता को पाया था, नाथों ने भी इसमें शिव-शक्ति का मिलन देखा तथा कबीर भी उसी शून्य में स्नान करके 'महासुख' या 'समरसता' की ही बाट कराते दिखाई पड़ते हैं।

2) प्रतिकात्मक प्रयोग तथा रूपकातिशयोक्ति दुष्टव्य हैं।

दोहा :12 देखौ कर्म कबीर का, कछु पूरब जनम का लेख।
जाका महल न मुनि लहैं, सो दोसत किया अलेख॥12॥

शब्दार्थ : दोसत = दोस्त, मित्र, परिचित।

भावार्थ : हे सांसारिक मनुष्यों! कबीर के कुकर्मों एवं पूर्वजन्म के संचित पुण्यों का फल तो देखो कि जिस शून्य महल का मार्ग मुनिगण भी नहीं पते वहाँ पहुँच कर कबीर ने निराकार (ब्रह्म) से मित्रता स्थापित कर ली है, उसी में लय हो गया है (क्यों कि मित्रता का लक्षण है 'दो प्राण एक तन')।

विशेष : 1) पूर्वजन्म की बात यह संकेत करती है कि कबीर हनदु-धर्म के आवागमन को मानते थे, न कि इस्लाम की कयामत तक कब्र में पड़ी रहने वाली आत्मा को। 2) वस्तु से अलंकार ध्वनि है। ध्वनित अलंकार व्यतिरेक है।

दोहा :13 पिंजर प्रेमे प्रकासिया, जाग्या जोग अनंत।
संसा खूटा सुख भया, मिल्या पियारा कंत॥13॥

शब्दार्थ : पिंजर = पिंजडा, अस्थि पिंजड़ा अर्थात शरीर जो पाँच तत्वों को पिंजड़ा है ; खूटा = समाप्त हुआ।

व्याख्या : हृदय में प्रेम के प्रकाशित होने पर आत्मा और परमात्मा का जो प्रिय और प्रेमी का सनातन संबंध है, वह जाग उठा। इस प्रेम भावना के जगने से अज्ञानवश जो भ्रम थे वे नष्ट हो गये , एवं प्रिय-ब्रह्म –मिलन का अमित सुख प्राप्त हुआ।

विशेष : रूपकतिशयोक्ति अलंकार।

दोहा :14 प्यंजर प्रेम प्रकासिया, अंतरि भया उजास।
मुख कसतूरी महमहीं, बांणीं फूटी बास॥14॥

शब्दार्थ : प्यंजर = शरीर ; उजास = प्रकाश ; बस = सुगंधि।

भावार्थ : इस शरीर में प्रभु प्रेम के उदित होने पर हृदय उस प्रेम –ज्योति से द्योतित हो उठा एवं साधक का मिख प्रेम की सुगंध से परिपूर्ण हो गया , जिससे उससे निस्सृत वाणी भी प्रभु –प्रेम की सुगंध से सुगंधित थी। **विशेष :** दृष्टांत अलंकार से प्रेम दशा अधिक प्रभावशाली रूप में व्यंजित हुई है।

दोहा :15 मन लागा उन मन्न सों, गगन पहुँचा जाइ।
देख्या चंदबिहूँणाँ, चाँदिणाँ, तहाँ अलख निरंजन राइ॥15॥

शब्दार्थ : उन मन्न = उन्मना , योग की एक अवस्था जिसमें साधक संसार से विरक्त होकर अंतर्मुखी वृत्ति वाला हो जाता है। गगन = ब्रह्माण्ड शून्य। अलख निरंजन = निराकार ब्रह्म।

भावार्थ : माया जनित आकर्शनॉम से विरक्त मन उन्मनी अवस्था में प्रवृत्त होकर शून्य में जा पहूँचा एवं वहाँ निराकार ब्रह्म के दर्शन किए। उस निराकार का सौंदर्य अद्भुत कांति विकर्ण कर रहा था। वह ऐसा ही था जैसे चंद्रमा के बिना मानों चन्द्र – ज्योत्स्ना छिटक रही हो। भाव यह है कि अशरीरी का भी अनुपम सौंदर्य था।

विशेष : गगन सिद्धों – नाथों से प्राप्त रूढ प्रतीक है।

दोहा :16 मन लागा उन मन सों, उन मन मनहि बिलग।
लूँण बिलगा पाणियाँ, पाँणीं लूँणा बिलग॥16॥

शब्दार्थ : बिलग = पृथक , भिन्न ; लूंण = नमक ; बिलगा = लय हो गया , मिल गया।

व्याख्या : साधक कहता है कि मेरा चित्ता संसारिक विषयों से असंपृक्त होकर उन्मनावस्था में प्रवृत्त हो गया है एवं यह मन की उन्मनावस्था पहले से सर्वथा भिन्न है , पहले तो मन माया के आकर्शनों में भटकता था , अब वह उनसे सर्वथा उपराम हो ब्रह्म प्राप्ति में प्रवृत्त हो गया एवं ब्रह्म से वह इस एकाकार हो गया जिस प्रकार नमक में पानी या पानी में नमक लय हो जाते हैं।

विशेष : दृष्टांत अलंकार है।

दोहा :17 पाँणी ही तें हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ।
जो कुछ था सोई भया, अब कछू कह्या न जाइ॥17॥

शब्दार्थ : पाँणी = पानी, परम तत्व ब्रह्म ; हिम = बर्फ , से निर्मित पदार्थ या वस्तु अर्थात जीव।

व्याख्या : कबीरदास जी आत्मा और ब्रह्म का अद्वैत सम्बंध स्थापित करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार पानी से बर्फ बनती है एवं नष्ट होकर वह पुनः पानी के रूप में परिवर्तित हो जाती है उसी प्रकार जीवात्मा ब्रह्म का ही अंश है और मृत्यु को प्राप्त होने पर पुनः उसी परमात्मा में लय हो जाता है। इस प्रकार तत्व या आत्मा अंततः प्रकृत स्वरूप ग्रहण कर लेता है।

विशेष : निम्नस्थ पद में भी कबीर ने यही भावना व्यक्त कि है -

" जल में कुम्भ में जल है , बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना , इहि तथ कथ्यौ ग्यानी"।

दोहा :18 भली भई जु भै पड्या, गई दशा सब भूलि।
पाला गलि पाँणी भया, ढुलि मिलिया उस कूलि॥18॥

शब्दार्थ : भली भई = अच्छा हुआ। भै = भय ; ढुलि = ढुलक कर।

भावार्थ : यह बड़ा अच्छा हुआ कि सदगुरु की कृपा ने मृत्यु भय से अवगत करा मुझे सांसारिक-माया जनित आकर्शनों से सर्वथा विमुख कर दिया (और मैं साधना मार्ग पर अग्रसर हुआ) जिससे हिम गलकर पानी के यथार्थ रूप में आ निस्सीम ब्रह्म की सीमा में जा कर मिल गया ; अर्थात आत्मा ब्रह्म में लय हो गयी है।

विशेष : दृष्टांत अलंकार है।

दोहा :19 चौहटै च्यंतामणि चढ़ी, हाडी मारत हाथि।
मीरा मुझसूँ मिहर करि, इब मिलौं न काहू साथि॥19॥

शब्दार्थ : चौंहटे = चौराहे , तात्पर्य संसार के बाजार से है। हाड़ी = माया ; मिरा = धार्मिक आचार्य , यहाँ गुरु से तात्पर्य है ; मिहर = कृपा।

व्याख्या : संसार रूपी बाजार के चौराहे पर जीवात्मा रूपी चिंतामणि विक्रय के लिए रखी गई (विक्रय और क्रय कर्मों का है) माया रूपी दलाल ने तभी उस पर हाथ रखना आरम्भ कर दिया अर्थात मयजनित आकर्शनों में उलझाना प्रारम्भ कर दिया। हे गूरुवर ! अब आप मुझ पर कृपा कर इस मायाभ्रम से निकालिए , अब मैं फिर कभी इन प्रपंचों में न पड़ूँगा।

विशेष : रूपकातिशयोक्ति अलंकार। 'हाड़ी' 'अस्थि' से विकसित है , इसे कुछ लोगों ने माया का प्रतीक मानकर , इसे कर्त्ता कारक में माना है तथा 'माया चिंतामणी पर हाथ मार रही है', आठ किय है। इस आठ में यह कल्पना करनी पड़ती है कि माया उसको बुझाना चाहती है , जो मणि के पक्ष में विशेष संगत नहीं है। अधिकरण में इसके प्रयोग को मानने से , बाजार में बिकनेवाली मणि पर हाथ मरने की संगति ठीक बैठ जाती है।

दोहा :20 पंषि उडाणी गगन कूँ, प्यंड रह्या परदेस।
पाँणी पीया चंच बिन, भूलि गया यहु देस॥20॥

शब्दार्थ : पंषि = पक्षी , आत्मा ; प्यंड = पिण्ड ,शरीर ; परदेश = संसार , क्योंकि आत्मा तो उस अलौकिक लोक का वासी है ; पांणी = सहस्त्रदल कमल से निस्तृत अमरूत ; चंच = चोंच।

व्याख्या : पक्षी – रूपिणी आत्मा शून्य प्रदेश रूपी गगन को उद गई एवं साधक का शरीर इसी लोक में रह गया । शून्य प्रदेश में पहुँच कर इस पक्षी ने बिना चोंच (साधन , इंद्रियाँ) के सहस्त्रदल कमल से स्त्रवित अमरूत का पान किया । इस अमृत का पान किय। इस अमृतपान के आनंद के सम्मुख तुच्छ संसारिक आनन्द विस्तृत हो गये।

विशेष : पक्षी , गगन तथा पानी तीनों प्रतीक हैं , सिद्धों – नाथों से ये लिए गए हैं।

दोहा :21 पंषि उड़ानी गगन कूँ, उड़ी चढ़ी असमान।
जिहिं सर मण्डल भेदिया, सो सर लागा कान॥21॥

शब्दार्थ : पंषी = कुंडलिनी , मूलाधार चक्र के नीचे जहाँ मेरुदण्ड का अन्तिम भाग है , वहीं एक त्रिकोणाकृति अग्निचक्र है। इसी अग्निचक्र में स्वयंभू लिंग से साढ़े तीन हाथ की लम्बाई की लिपटी हुई एक सर्पाकार शक्ति रहती है , उसी को कुंडलिनी कहते हैं , साधक प्राणायाम द्वारा उसे जागृत करता है। कुण्डलिनी जागृत होने पर सुषुम्ण के भीतर स्थित ब्रह्म नाड़ी द्वारा षटचक्रों में होते हुए सहस्त्रार में प्रवेश करती है , इसे ही पंखी का 'गगन –उड़न' कहा गया है। कुण्डलिनी का सहस्रार में प्रवेश ही योग की चरमावस्था है।) गगन = शून्य आसमान = ब्रह्माण्ड , सहस्त्रदल कमल के मध्य या उससे ऊपर माना गया है। मण्डल = गगन अर्थात शून्य एवं मूलाधार चक्र केबिच का स्थान जिसमें षट्चक्रों की स्थिति है।

व्याख्या : कुण्डलिनी रूपिणी पक्षी (ब्रह्म नाड़ी में प्रविष्ट हो) शून्य में पहुँच गई। एवं उससे भी बढ़ कर वह ब्रह्मान्ड में (जहाँ प्रभु का निवास है) जा पहुँची। जिस उपदेश से प्रभावित हो षटचक्रों का भेदन किया जाता है , वह उपदेश सद्गुरु ने मुझे प्रदान किय है।

विशेष : 1. पक्षी द्वारा सिद्ध की शुक –गति को बोध कराया जाता है , यहाँ अबीर ने कुण्डलिनी , मन तथा साधक तीनों को एक ही प्रतीक द्वारा बोधगम्य बनाया है , वस्तुतः कुण्डलिनी का सहस्त्रार में पहुँचना , मन की नैरातम्य दशा या निर्विकल्प समाधि की प्राप्तिएवं साधक को सिद्धि मिलना , युगपत रूप से होने वाले व्यापार हैं , अतः कबीर एक प्रतीक के द्वारा तीनों का बोध सरलता से करा सके हैं। (साखी संख्या 20 में भी यही स्थिति है।) **2.** 'सर' में स्लेश का उपयोग करके कबीर ने शाक्तों एवं शैवों में स्वीकृत नाद – बिन्दु की धारणा का चमत्कारपूर्ण उपयोग किय है। वाण की वेधक शक्ति से समन्वित होकर विश्व – व्यापक नाद सजीव हो उठा है तथा अनाहत नाद के रूप में व्यक्त होकर एक सर्वथा नवीन रूप धरण कर सका है।

दोहा :22 सुरति समाँणो निरति मैं, निरति रही निरधार।

सुरति निरति परचा भया, तब खूले स्यंभ दुवार॥22॥

शब्दार्थ : सुरत = प्रभु – प्रेम, इडा ; निरति = संसार से वैराग्य अर्थात प्रभु का ध्यान , पिंगल ; स्यंभदुवार = शंभु का द्वारा , शिव का स्थान , ब्रह्मरंध्र ।

व्याख्या : साधारण अर्थ – साधक की समाधि में प्रभु के प्रेम वास हो जाने पर अर्थात समाधिस्थ अवस्था में प्रभु का ही ध्यान करने से प्रभु की प्राप्ति संभव है । जब प्रभुभक्ति का साधना से सम्बंध हो जाता है तो शंभु (प्रभु) के दर्शन हो जाते हैं।

विशेष : 1. डॉ . पीताम्बर दत्त बडथ्वाल , डॉ . हजारिप्रसाद द्विवेदी तथा डॉ . पारसनाथ तिवारी ने सुरति तथा निरति पर विचार किया है , इन विद्वानों के मतों को ध्यान में रखते हुए अर्थ किया गया है। (विशेष विवरण के लिए योग प्रवाह , कबीर तथा डॉ . तिवारी का लेख देखा जा सकता है।)

2. 'स्यंभ' के स्थान पर डॉ . पारसनाथ तिवारी ने 'सिंभु' पाठ स्वीकार किया है , स्पष्ट है कि इसका विकास 'सिंभु' से है। डॉ . हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'सिंभु' को कदाचित 'सिंह' से विकसित मानकर एक चमत्कार पूर्ण अर्थ किया है – 'सिंह द्वार खुल गया' अर्थ चमत्कार पूर्ण है , किन्तु शब्द के मूल अर्थ को देखते हुए 'शंभु का द्वार' अर्थ ही स्वीकार किया गया है। कबीर ने 'सिंह' के लिए 'स्यंघ' प्रयोग हुआ है , स्यंभ नहीं –

सिव सकती दिसि कौंण जु जौवै , पछिम दिसा उठै धूरि।
जल में स्यंघ जु घर करै , मछली चढ़ै खजूरि॥

दोहा :23 सुरति समाँणो निरति मैं, अजपा माँहै जाप।

लेख समाँणाँ अलेख मैं, यूँ आपा माँहै आप॥23॥

शब्दार्थ : आजपा = मौन ध्यान ; जाप = प्रभु नाम स्नारण ; लेख = साकार ब्रह्म ; आलेख = निराकार ब्रह्म ; आपा = प्रभु , ब्रह्म , परमात्मा ; अप = अपनत्व , आत्मा से तात्पर्य है।

व्याख्या : इडा पिंगला में मिल गई , जिससे नाम स्मरण की ध्वनि शांत हो मौन ध्यान में परिणत हो गई। इस स्थिति में आकर निराकार में समा गया ; अर्थात केवल निराकार ब्रह्म का ही ध्यान रहा , इस प्रकार परमात्मा से आत्मा का मिलन हो गया।

विशेष : यह सखी , सखी सं . 22 की व्याख्या सी प्रतीत होती है । डॉ . पारसनाथ तिवारी ने इसे अपनी संपादित ग्रंथावली में स्थान नहीं दिया है । वस्तुतः 22 तथा 23 दोनों साखियाँ नाथों की विचार – प्रम्पराओं में । या तो दोनों को कबीर की रचना मानना ठीक है , या दोनों को ही नाथों की दें । अजपा जाप का प्रयोग सिद्धों ने नहीं किया है । (देखिए सिद्ध साहित्य एवं चर्यागीत कोष) गोरख नाथ की रचना में इसका प्रयोग मिलता है –

अजपा जपै , सुनि मन धरै , पांचौं इंद्री निग्रह करै ।

ब्रह्म अगिनि में होमैं काया , तास महादेव बदै पाया । (सबदी 18)

दोहा – 24 आया था संसार में, देषण कौं बहु रूप।

कहै कबीरा संत ही, पड़ि गया नजरि अनूप॥24॥

व्याख्या : इस नानारूपात्मक जगत में विविध सांसरिक उपदनों को देखने के लिए ही मेरा जन्म हुआ था , किन्तु कबीरदास जी कहते हैं कि मुझे इस संसार में आकर ब्रह्म के दर्शन हो गये ।

विशेष : बिना यत्न के ईश्वर – प्राप्ति होने से यहाँ प्रहर्षण आलमकर है ।

दोहा – 25 अंक भरे भरि भेटिया, मन मैं नाँहीं धीर।

कहै कबीर ते क्यूँ मिलैं, जब लग दोइ सरीर॥25॥

शब्दार्थ : अंक = गोद , अलिंगन ; जब लग = जब तक ।

व्याख्या : मैं प्रिय से प्रेमविभोर हो कस – कस कर अलिंगन बद्ध हुआ , फिर भी मन में धैर्य नहीं । वह एक प्राण दो तन चाहता , मन तो परमात्मा में एकाकार होना चाहता है , किन्तु कबीरदास जी कहते हैं कि जब दो शरीर हैं तब तक एकाकार कैसे हो सकते हैं ? यह द्वैत ही आत्मा और परमात्मा के मिलन में बाधक है ।

दोहा – 26 सचु पाया सुख ऊपनाँ, अरु दिल दरिया पूरि।

सकल पाप सहजै गये, जब साँई मिल्या हजूरि॥26॥

शब्दार्थ : सच पाया = शान्ति प्रपट हुई ; सुख ऊपनां = सुख उत्पन्न हुआ ; दिल = हृदय ; दरिया पूरि = प्रेम से अपूर्ण उसी प्रकार जैसे नदी जल से ।

व्याख्या : कबीरदास कहते हैं कि – दयालु प्रभु के मिलते ही हृदय की वेदना शांत हुई एवं सुख उत्पन्न हुआ । हृदय उसी प्रकार प्रेम से परिपूर्ण हो गया जिस प्रकार नदी जल से । नदी का जल अपने साथ नाले आदि के गंदे जल को भी बहाकर स्वच्छ कर देना है , उसी प्रकार इस प्रेम – जाल में या प्रेम – सरिता में मेरे समस्त पाप बह गये ।

विशेष : यहाँ प्रस्तुतालंकार है ।

दोहे – 27 धरती गगन पवन नहीं होता, नहीं तोया, नहीं तारा।

तब हरि हरि के जन होते, कहै कबीर बिचारा॥27॥

शब्दार्थ : तोया = जल ; तारा = अग्नि पुंज से तात्पर्य है ।

व्याख्या : कबीरदास कहते हैं कि – इस संसार में सब नश्वर है , अनश्वर तो केवल प्रभु और प्रभु- भक्त हैं। यदि पृथ्वी , आकाश , वायु , जल ,अग्नि आदि पंचभूतों से निर्मित यह सृष्टि विनष्ट हो जाय तो भी प्रभु – भक्तों की स्थिति रहेगी क्योंकि उनकी महिमा अमर है।

विशेष : वस्तु से वस्तु – धवनई है , 'परमात्मा से मिलन की स्थिति' ध्वनित है।

दोहा – 28 जा दिन कृतमनां हुता, होता हट न पट।
हुता कबीरा राम जन, जिनि देखै औघट घट ॥28॥

शब्दार्थ : कृतमनां = कृत्रिम ; हट हाट ; पट = वस्त्र ,किन्तु यहाँ तात्पर्य क्रय – विक्रय या सांसारिक क्रिया – व्यापार से है। औघट = ब्रह्म ; घट = हृदय।

व्याख्या : जब यह माया बंधनों से परिपूर्ण मिथ्या (कृत्रिम) संसार नहीं था , तब न तो यहाँ बाजार था और न क्रय – विक्रय या सांसारिक क्रिया व्यापार (जहाँ व्यक्ति 'ज्यों – ज्यों सुराइयौ चाहत है त्यौं – त्यौं उरइयौ जात') से है। तब भी यहाँ प्रभु भक्त थे , जो हृदय में उस ब्रह्म के दर्शन करते हैं।

विशेष : (1) संकर के अद्वैत के समान संसार को 'मिथ्या' (कृत्रिम) कहा है।

(2) 'हाट न पद – कबीर ने क्रिया व्यापार के लिए केवल पट – वस्त्र के विक्रय को ही चुना , उन जैसे 'मासी कागद चुन छूने वाले संत के लिए यह स्वाभाविक था कि अपने जुलाहे के व्यवसाय से वे शब्दावली और प्रतीक ग्रहण करते।

दोहे – 29 थिति पाई मन थिर भया, सतगुर करी सहाइ।
अनिन कथा तनि आचरी, हिरदै त्रिभुवन राइ॥29॥

शब्दार्थ : थिति = योग कि स्थिति , ध्यानवस्था ; थिर = स्थिर , शान्त ; अनिन कथा = अनन्य कथा , प्रेम-कथा ; तनि = तन , शरीर ; आचारी = आचरण किया।

व्याख्या : सद्गुरु की सहायता से मन योगावस्था में ध्यानावस्थित हो गया , जिससे चित्त शान्त हो गया। इस शरीर ने प्रेम कथा अर्थात प्रेम साधना का आचरण किया , जिससे हृदय में त्रिभुवन पति परमात्मा के दर्शन किये।

विशेष : यहाँ मानसी भक्ति को कबीर ने स्वीकार किया है।

दोहे – 30 हरि संगति सीतल भया, मिटा मोह की ताप।
निस बासुरि सुख निध्य लह्या, जब अंतरि प्रकट्या आप॥30॥

शब्दार्थ : हरि संगति = प्रभु मिलन ; मोह की ताप = व्यर्थ के मोहजनित आकर्षनों की दौड़। सुखनिध्य = सुखनिधि ; आप = स्वयं तत्व अर्थात ब्रह्म।

व्याख्या : प्रभु – मिलन से मेरा चित्त शान्त हो गया एवं संसार के के मायामोह के विविध आकर्शनों की दौड़ समाप्त हो गई। उस ब्रह्म के हृदय में प्रकट होने से मैं रात – दिन आनन्द निधि का सुख प्राप्त करता हूँ।

विशेष : रूपक अलंकार है।

13.4.सारांश

मोती के लिये सागर , सीप और स्वाति नक्षत्र की बंद की आवश्यकता होती है लेकिन यहाँ बिना इन उपादानों के शून्य शिखिर पर परम ब्रह्म रूपी प्रभु के दर्शनां नंद रूपी मोती उत्पन्न हो रहे हैं। विशेष : विभावना अलंकार है। कहि कबीर परचा भया , गुरु दिखाई बाट। "परचा" से अभिप्राय है जीव की पहचान , परिचय। यह कबीर के सिद्धांतों के अध्ययन के लिए आँय सभी अंगों से अधिक महत्वपूर्ण है। इस में कबीर पूर्व प्रचलित सभी संप्रदायों का प्रभाव परिलक्षित होता है। सीधे तौर पर सिद्ध –नाथों के विभिन्न प्रतिकों और मान्यताओं का उपयोग इस अंग की विभिन्न साखियों में मिलता है। कबीर वाणी वैसे भी शास्त्रानुमोदिन न होकर अनुभव गम्य हे। समाज में प्रचलित विभिन्न पद्धतियों के तत्व और व्यावहारिक रूप को पहचान समझ कर कबीर ने जीव जो परिचय प्राप्त , अनुभव किया , उसी को रूप प्रचलित प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया। सुरति , निरंति , रचंम (शंभु) शिव-शक्ति आदि प्रतीकों पर स्पष्ट तौर पर नाथों का प्रभाव है। कबीर ने नाथों –सिद्धों के अतिरिक्त वैष्णवों की मानसी पूजा को भी अपनाया है। वस्तुत कबीर ने 'सार –सार' की गहि दिया , भोथा दिया उड़ाए' सिद्धान्त , विशुद्ध , व्यावहारिक रूप पर बल दिया है। 'परचा कौ अंग' में भी इसी प्रकार का विधान है।

13.5. बोध प्रश्न

1. पारचा कौ अंग परिचया दीजिये।
2. 'पारचा कौ अंग' का सारांश लिखिये।
3. परचका कौ अंग पर कबीरदास के दोहे का सप्रसंग व्याख्या दीजिए।

13.6. सहायक ग्रन्थ

1. संतों की सांस्कृतिक संसुती – डॉ. राज रतन पाण्डेय , उपकार प्रकाशन , दिल्ली।
2. कबीर मीमांसा – डॉ . रामचन्द्र तिवारी – लोक भारती प्रकाशन , इलाहाबाद।
3. कालजयी कबीर – संपादक – हर महेंद्र सिंह गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी , अमृतसर।
4. कबीर साहित्य की परख – परशुराम चतुर्वेदी , भारती भण्डार , इलाहाबाद।
5. कबीर – हजारी प्रसाद द्विवेदी राजकमल प्रकाशन , दिल्ली।
6. हिन्दी काव्य में निर्गुण संप्रदाय – पीताम्बर दत्त बडथ्वाल अवध पब्लिशिंग हाउस , लखनऊ

*****

डॉ. सूर्य कुमारी. पी.

14. माया कौ अंग

14.0. उद्देश्य

'ब्रह्म सत्यं, जगत मिथ्या'—भारतीय दर्शन में संसार को मिथ्या या माया के रूप में देखा गया है। भक्ति में इसी भावना का प्रसार 'कबीर माया पापणीं, हरि सूँ करे हराम' के रूप में हुआ है। माया को अविद्या कहा गया है जो ब्रह्म और जीव को एकमेव नहीं होने देती। माया का सामान्य अर्थ धन-दौलत, भ्रम या इंद्रजाल है। इस चयन में माया और भ्रम के विभिन्न पाठ और प्रसंग देती अभिव्यक्तियों का संकलन किया गया है। इस इकाई में 'माया कौ अंग' के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।

रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना

14.2 अंग - परिचय

14.3 माया कौ अंग- सप्रसंग

14.4 कबीर के माया सबंधी विचार

14.5 सारांश

14.6 बोध प्रश्न

14.7 सहायक ग्रन्थ

14.1. प्रस्तावना

आत्मा और परमात्मा के मिलने में सबसे बड़ी बधा माया होती है। यह नाना रूप धरण करके मनुष्य को ठगती रहती है और उसे ब्रह्म-प्राप्ति से दूर करती रहती है। प्रस्तुत अंग में कबीर ने माया के विविध रूपों का वर्णन किया है। और मनुष्य को चेतावनी दी है कि वह इन रूपों के चक्कर में आये। ये युकाटेक, केची और मोपन में विभाजित हैं। ये तीन माया समूह अब देश में निवास करते हैं। अपने उद्धार के लिए नि:स्वार्थ प्रेम करना सीखना होगा। अतः यदि हम अपना उद्धार चाहते हैं, तो हमें सभी प्रकार की इच्छा-कामनाओं का त्याग कर एक परमात्मा की तरह सभी आत्माओ से नि:स्वार्थ प्रेम करना सीखना होगा, अन्यथा हम मोह रूपी दलदल से कभी भी बाहर निकल नहीं पाएंगे। प्रेम ऊपर उठाता है पर मोह नीचे गिराता है। अर्थात प्रेम में इंसान महान हो जाता है और मोह में पड़ कर गिर जाता है। प्रेम अटूट है कभी भंग नहीं होता, जबकि मोह भंग हो जाता है। मोह में पाने की इच्छा होती है, प्रेम में केवल समर्पण का भाव होता है।

14.2 अंग – परिचय

कबीर ने माया के विविध रूपों का वर्णन करते हुए बताया है कि यह माया पापिनी संसारिक अकरशों का फंदा अपने हाथ में लिए हुए है और प्रयत्न करने पर मनुष्य को इसमें फँसा लेती है। जिस प्रकार वेश्या का पूर्ण

उपयोग कोई भी व्यक्ति नहीं कर पता, उसी प्रकार माया का पूर्ण उपयोग भी कोई व्यक्ति नहीं कर सकता , क्यों कि इसका कार्य तो मनुष्य को सांसरिक बंधनों में फँसा देना ही है। इस प्रकार यह मनुष्य को प्रभु-भक्ति से विमुख कर देती है और उस पर अपना गहरा और कृपा भाव डालती है कि उसे कभी भी राम का नाम लेने की सुधि नहीं आती। जो लोग माया के वशीभूत होकर भी प्रभु-भक्ति करना चाहते हैं, वे वास्तव में ढोंगी हैं , क्योंकि ऊपर से तो वे हरी- भक्ति दिखाई पड़ते हैं , किन्तु उनके हृदय में मायाजन्य अनेक प्रकार के विकार भरे हुए होते हैं। इस माया के विषय-चक्कर से वही व्यक्ति बच पता है , जिस पर गुरु की कृपा होती है और उसी व्यक्ति की यह दासता स्वीकार करती है , अर्थात उसके वश में रहती है। माया संतों की दासी होती है और खड़ी-खड़ी उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा करती रहती है। किन्तु वे इसकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते , बल्कि इसे लातों से और छड़ियों से मारते रहते हैं।

14.3 माया कौ अंग- सप्रसंग व्याख्या

दोहा : 1 **जग हठवाड़ा स्वाद ठग, माया बेसाँ लाइ।**
रामचरण नीकाँ गही, जिनि जाइ जनम ठगाइ ॥1॥

टिप्पणी: ख-में इसके आगे यह दोहा है-

कबीर जिभ्या स्वाद ते, क्यूँ पल में ले काम।
अंगि अविद्या ऊपजै, जाइ हिरदा मैं राम ॥2॥

शब्दार्थ : हटवाड़ा =हाट , बाजार ; बेसां =वेश्या।

व्याख्या : कबीरदास कहते हैं कि संसार एक बाजार है , जिस में इंद्रियों के स्वाद रूपी अनेक विषय-वासनाओं के ठग एवं माया रूपी वेश्या जीव को ठगने का , अपने जल में फँसाने का उपक्रम करते हैं। हे मानव ! यदि तुम निष्ठा-पूर्वक प्रभु-आश्रम ग्रहण करोगे , प्रभु भक्ति में प्रवृत्त होंगे , तो तुम्हारा कल्याण हो सकता है , तब ये ठग और माया रूपी वेश्या तुम्हारे जीवन-धन को ठगने में असमर्थ होंगे।

विशेष : रूपक अलंकार।

दोहा -2 **`कबीर' माया पापणी, फंध ले बैठी हाटि।**
सब जग तौ फंधै पड्या,गया कबीरा काटि ॥2॥

शब्दार्थ : पापणी = पापिनी, व्यभिचार ; पाप आदि कर्मों में प्रवत्त होने वाली माया से तात्पर्य है। फंद = जाल, पाश; फंधे = पाश में; काटि = तोड़ना।

भावार्थ / अर्थ – यह पापिन माया फन्दा लेकर फँसाने को बाजार में आ बैठी है। बहुत सारों पर फंन्दा डाल दिया है इसने ।पर कबीर उसे काटकर साफ बाहर निकल आया हरि भक्त पर फंन्दा डालनेवाली माया खुद ही फँस जाती है, और वह सहज ही उसे काट कर निकल आता है।

विशेष : रूपक अलंकार।

दोहा : 3 **कबीर माया पापणीं, लालै लाया लोंग।**
पूरी कीनहूँ न भोगई, इनका इहै बिजोग ॥3॥

शब्दार्थ : लालै लाया = अपने आकर्षण पाने की लालसा जगाना ; इहै = यही।

व्याख्या : कबीरदास कहते हैं कि माया पापिनी वेश्या है जो अपने आकर्षण के द्वारा जीव में विषय – वासनाओं की लालसा जगानी है । जिस प्रकार वेश्या पर (स्वकीया के समान) किसी का अधिकार नहीं होता , और न वह किसी एक की होकर रह पाती है, इसलिए उसका कोई पूर्ण उपभोग नहीं कर पाता उसी भाँति माया के विविध आकर्षणों पर एक व्यक्ति – विशेष का पूर्ण अधिकार नहीं होता, यदि होता भी है कुछ समय के लिए माया के विविध विषयों की अप्राप्ति में ही संसार दुःख (वियोग) भोगता है।

विशेष : रूपक एवं काव्यलिंग अलंकार।

दोहा : 4 **कबीरा माया पापणीं, हरि सूँ करे हराम।**
मुखि कड़ियाली कुमति की, कहण न देई राम ॥4॥

शब्दार्थ : हराम = विमुख से तात्पर्य है ; कड़ियाली = कड़ी श्रृंखला।

व्याख्या : कबीरदास जी कहते हैं कि यह माया ऐसी पापिन है कि जीव को प्रभु विमुख कर देती है। यह जीव के मुख से कड़वी वाचनावली का निरन्तर उच्चारण कराकर राम – नाम कहने का अवसर नहीं देती। भाव यह है कि माया प्रभु – भक्ति में बाधक है।

विशेष : मानवीकरण है ।

दोहा : 5 **जाँणी जे हरि को भजौ, मो मनि मोटी आस।**
हरि बिचि घालै अंतरा, माया बड़ी बिसास ॥5॥

टिप्पणी: ख-हरि क्यों मिलौं।

शब्दार्थ : मोटी आस = विषय वासनाओं की तृष्ण ; धालै = डालना ; बिसास = विश्वासघातिनी।

व्याख्या : प्रत्यक्षतः ऐसा लगता है कि मैं (ढोंगी साधक) प्रभु –भक्ति में तल्लीन हैं , किन्तु मेरे मन में माया ने विषय – वासनाओं की अदम्य तृष्ण बसा रखी है। वह माया बड़ी विश्वास – घातिनी है जो इन विषय-वसनाओं के द्वारा प्रभु और जीव के बीच अन्तर डाल देती है।

विशेष : कबीर ने माया को विश्वासघातिनी इसलिए बताया है कि वह अपने जनक प्रभु से जीव को विमुख करती है।

दोहा : 6 **कबीर माया मोहनी, मोहे जाँण सुजाँण।**
भागाँ ही छूटै नहीं, भरि भरि मारै बाँण ॥6॥

शब्दार्थ : जांण = ज्ञानी ; सुजाँण = सुजान , चतुर।

व्याख्या : कबीरदास कहते हैं कि माया ऐसी आकर्षक है कि सामान्य मनुष्यों की तो बात ही क्या , बड़े-बड़े ज्ञानी एवं चतुर भी इसके आकर्षण में सम्मोहित हो गये हैं। यदि कोई जंजाल से भागकर विमुक्त होना चाहे तो असंभव है , क्योंकि यह तान –तान कर मोहक बाणों की वर्षा कर व्यक्ति को अपने जल में फँसा लेती है।

विशेष : रूपक अलंकार है।

दोहा -7 `कबीर' माया मोहनी, जैसी मीठी खांड।
सतगुरु की कृ कबीर माया मोहनी, जैसी मीठी भांड ॥ 7 ॥

शब्दार्थ : भांड =एक जाति-विशेष जिस का समाजिक स्थान अत्यन्त निकृष्ट है।यहाँ नष्ट होने से तात्पर्य। **भावार्थ / अर्थ** – कबीर कहते हैं -यह मोहिनी माया शक्कर-सी स्वाद में मीठी लगती है, मुझ पर भी यह मोहिनी डाल देती पर न डाल सकी। सतगुरु की कृपा ने बचा लिया, नहीं तो यह मुझे भांड़ बना-कर छोड़ती। जहाँ-तहाँ चाहे जिसकी चाटुकारी मैं करता फिरता है।

विशेष : उपमा अलंकार।

दोहा : 8 कबीर माया मोहनी, सब जग घाल्या घाँणि।
कोइ एक जन ऊबरै, जिनि तोड़ी कुल की काँणि ॥8॥

शब्दार्थ : घाल्या = अपने चक्र में लपेट लिया। घाँणि = घानी , तेली जिस गहरे से पात्र में सरसों आदि डालकर तेल निकालता है उसे घानी कहते हैं। यह काठ की बनी होती है ; कुल की काँणि = कुल मर्यादा अर्थात लोक-परंपरा ।

व्याख्या : कबीरदास कहते हैं कि माया बड़ी सम्मोहक है जिसने अपनी घानी में समस्त संसार को डाल रखा है। कोई एकाघ व्यक्ति ही , जिसने संसार की स्वाभाविक परंपरा का परित्याग किया हो , इसके जाल से बच पाते हैं।

विशेष : रूपक अलंकार है।

दोहा : 9 कबीर माया मोहनी, माँगी मिलै न हाथि।
मनह उतारी झूठ करि, तब लागी डौलै साथि॥9॥

शब्दार्थ : मनह = मन से।

व्याख्या : कबीरदास कहते हैं कि यह मोहिनी माया माँगने पर, प्रपट नहीं होती , क्योंकि मायाजन्म आकर्षणों का कितना ही भोग क्यों न किया जाये, फिर भी इंद्रियाँ अतृप्त रहती हैं। किन्तु जब इसे मिथ्या, भ्रम-मात्र जानकर मन को इसके आकर्षण से पृथक कर दिया जाये तो यह पीछे-पीछे फिरती है।

भाव यह है कि माया का परित्याग करने में ही अधिक आनन्द एवं मंगल हैं।

वशेष : मानवीकरण तथा विरोधाबास अलंकार हैं।

दोहा : 10 माया दासी संत की, ऊँभी देइ असीस।
बिलसी अरु लातौं छड़ी सुमरि सुमरि जगदीस ॥10॥

शब्दार्थ : ऊँभी = खड़ी-खड़ी , आज्ञा माननेवाली से तात्पर्य है।

व्याख्या : कबीरदास कहते है कि माया संतों की दासी है खड़ी-खड़ी ही उनकी आज्ञा का पालन करती है। वे इसका उपयोग प्रभु को भजते हुए कराते हैं ,और इस पर भी इसे मुँह नहीं लगाते हैं , लातों और छड़ियों की मार से इसकी खबर लेते हैं।

विशेष : रूपक अलंकार है।

दोहा -11 **माया मुई न मन मुवा, मरि-मरि गया शरीर।**
आसा त्रिष्णां ना मुई, यों कहि गया `कबीर' ॥11॥

शब्दार्थ : मुई = मरी, नष्ट हुई।

व्याख्या : कबीरदास कहते हैं कि आवागमन के चक्र में पद कर शरीर बारंबार नष्ट हुआ , किन्तु किसी भी जन्म में माया का आकर्षण एवं मन की विषयों के पीछे दौड़ समाप्त न हुई। न कभी सांसरिक कामनाओं एवं तृष्ण का अंत हुआ।

भावार्थ / अर्थ – कबीर कहते हैं –न तो यह माया मरी और न मन ही मरा, शरीर ही बार-बार गिरते चले गये।मैं हाथ उठाकर कहता हूँ। न तो आशा का अंत हुआ और न तृष्णा का ही।

विशेष : अर्थ-शक्ति-उद्भव वस्तु से वस्तु ध्वनित है , व्यंजित है – 'मनुष्य की माया , मन तथा आशा-तुष्ण पर विजय पाने का प्रयत्न करना चाहिए'।

दोहा : 12 **आसा जीवै जग मरै, लोग मरे मरि जाइ।**
सोइ मूबे धन संचते, सो उबरे जे खाइ॥12॥

टिप्पणी: ख-सोई बूड़े जु धन संचते।

शब्दार्थ : आसा = तृष्ण ।

व्याख्या : संसार का समस्त वैभव आदि समाप्त हो जाता है, किन्तु यह तृष्ण फिर भी जीवित रहती है । मनुष्य आवागमन के चक्र में पड़-पड़ कर बारंबार मृत्यु को प्राप्य होते हैं, किन्तु फिर भी सांसरिक तृष्ण का अंत नहीं होता। जिन्होंने इस तृष्ण से प्रचलित हो धन का संचय किया, वे ही इस संसार में नष्ट हुए अथवा आवागमन के चक्र में पड़े। जिन व्यक्तियों ने धन का खूब उपयोग किया, वे मिक्त हो गये।

बिशेष : विरोधाभास अलंकार है।

दोहा -13 **`कबीर' सो धन संचिये, जो आगैं कूं होइ।**
सीस चढ़ावें पोटली, ले जात न देख्या कोइ ॥13॥

भावार्थ / अर्थ – कबीर कहते हैं,–उसी धन का संचय करो न, जो आगे काम दे। तुम्हारे इस धन में क्या रखा है ? गठरी सिर पर रखकर किसी को भी आजतक ले जाते नहीं देखा।

विशेष : इस साखी का एक दूसरा अर्थ इस प्रकार भी किया जा सकता है –

कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य ! सांसरिक धन-संग्रह में क्यों लगा हुआ है ,ऐसे धन का संचार कर, ऐसे सुकृत्य कर जो परलोक में भी तेरे काम आ सकें - जिनके बल पर तू मिक्त हो जाये। इस सांसारिक धन की गठरी को मृत्यु के पश्चात अपने साथ ले जाता कोई नहीं देखा , सब यहाँ का यहीं रह जाता है।

दोहा : 14 **त्रीया त्रिण्णाँ पापणी, तासूँ प्रीति न जोड़ि।**
पैड़ी चढ़ि पाछाँ पड़े, लागै मोटी खोड़ि॥14॥

शब्दार्थ : त्रिया = स्त्री ; पापिणी = पापिनी , वेश्या से तात्पर्य ; खोडि = अपराध , पाप।

व्याख्या : तृष्ण एक व्यभिचारिणी स्त्री है जो मन को विविध विषयों में भटकाती रहती है या विविध विषयों में मन का गमन कराती रहती है। हे जीव ! तू इससे प्रेम-संबंध स्थापित मत कर, तू इसके जाल में मत फँस। यह तो पीछे पड़कर जीव को आकर्षित कर लेती है , किन्तु इसके संसर्ग से फिर अनेक पापों को भागी बनना पड़ता है।

विशेष : संगरूपक अलंकार।

दोहा : 15 **त्रिष्णाँ सींची नाँ बुझे, दिन दिन बढ़ती जाइ।**
जबासा के रूप ज्यूँ, घण मेहाँ कुमिलाइ॥15॥

शब्दार्थ : बधती = बढ़ती ; रुष = वृक्ष ; घण = घना , अधिक।

भावार्थ / अर्थ – कबीरदास कहते हैं कि - कैसी आग है यह तृष्णा की ! ज्यौं-ज्यौं इसपर पानी डालो, बढ़ती ही जाती है। जवासे का पौधा भारी वर्षा होने पर भी कुम्हला तो जाता है, पर मरता नहीं, फिर हरा हो जाता है।

विशेष : I . विभावना अलंकार।

II. आक और जावस ग्रीष्म में तो हरे रहते हैं , किन्तु वर्षा प्रारम्भ होते ही सूखने लगते हैं। अन्य कवियों ने भी अपनी अनुभूति को आक जवाब के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

दोहा :16 **कबीर जग की को कहै, भौजलि, बुड़ै दास।**
पारब्रह्म पति छाँड़ि करि, करैं मानि की आस ॥6॥

शब्दार्थ : भौ जलि = भव जल , संसार सागर।

भावार्थ / अर्थ – कबीर कहते हैं– दुनिया के लोगों की बात कौन कहे, भगवान के भक्त भी भवसागर में डूब जाते हैं। इसीलिए परब्रह्म स्वामी को छोड़कर वे दूसरों से मान-सम्मान पाने की आशा करते हैं।

विशेष : रूपक अलंकार।

दोहा : 17 **माया तजी तौ क्या भया, मानि तजी नहीं जाइ।**
मानि बड़े मुनियर गिले, मानि सबनि को खाइ ॥7॥

शब्दार्थ : मुनियर = मुनिवर , श्रेष्ठ मुनिगन। मिले = मिट्टी में मिले , नष्ट हो गये।

भावार्थ / अर्थ – कबीरदास कहते हैं कि इस में क्या हुआ जो माया को छोड़ दिया, मान-प्रतिष्ठा तो छोड़ी नहीं जा रही। बड़े-बड़े मुनियों को भी यह मान-सम्मान सहज ही निगल गया।

यह सबको चबा जाता है, कोई इससे बचा नहीं।

विशेष : मानवीकरण है। अर्थ शक्ति –उद्भव वस्तु से अलंकार ध्वनि है , ध्वनित अलंकार व्यतिरेक है।

दोहा : 18 **रामहिं थोड़ा जाँणि करि, दुनियाँ आगैं दीन।**
जीवाँ कौ राजा कहै, माया के आधीन ॥18॥

शब्दार्थ : थोरा = हीन।

व्याख्या : हे मनुष्य ! तूने प्रभु को तुच्छ समझकर संसार को अधिक महत्व दिया , संसार में ही उलझा रहा। तू उस जीव को ही वास्तविक राजा , स्वामी समझ बैठा जो मायाधीन होकर वैभवपूर्ण ढंग से रहता है।

विशेष : अर्थ –शक्ति उद्भव वस्तु से वस्तु ध्वनि है । ध्वनित है –'सांसरिक राजाओं को राजा समझना मूर्खता है , सच्चे राजा तो राम हैं'।

दोहा : 19 **रज बीरज की कली, तापरि साज्या रूप।**
राम नाम बिन बूड़ि है, कनक काँमणी कूप ॥19॥

शब्दार्थ : साज़्य = बनाया ; बुड़ि है = डूबेगा ,नष्ट हो जायेगा।

व्याख्या : हे मनुष्य ! तू अपने ऊपर क्या गर्व करता है , तू है ही क्या , पुरुष के वीर्य और स्त्री की राज जेसी वस्तुओं से निर्मित एक कली है जिस पर तूने यह साज-सज्जा का आडंबर कर रखा है। तू प्रभु – भक्ति बिना स्वर्ण अर्थात धन और कामिनी रूपी कुएँ में गिरकर नष्ट हो जायेगा।

विशेष : सभंग यमक अलंकार।

दोहा : 20 **माया तरवर त्रिविध का, साखा दुख संताप।**
सीतलता सुपिनै नहीं, फल फीको तनि ताप ॥20॥

शब्दार्थ : त्रिविध = त्रिगुणात्मक ,दैहिक , दैविक , भौतिक संतापों से युक्त।

व्याख्या : कबीरदास कहते हैं कि माया दैहिक , दैविक , भौतिक संततापों से युक्त त्रिगुणात्मक वृक्ष है , दुःख और संताप ही इसकी शाखाएँ हैं। सामान्य वृक्ष छाया शीतल एवं फल मधुर होता है , किन्तु इस माया-वृक्ष के आश्रय में शीतलता-सुख स्वप्न में भी प्राप्त नहीं और इसका फल फीका है , ये सब अर्थात छाया और फल शरीर को दुःख ही प्रदान करते हैं।

विशेष : सांगरूपक अलंकार है।

दोहा : 21 **कबीर माया ढाकिनी, सब किसही कौ खाइ।**
दाँत उपाणौं पापड़ी, जे संतौं नेड़ी जाइ॥21॥

शब्दार्थ : डाकिनी = पिशाचिनी , उपाड़ों = उखाड़ूँ, नेडी =पास।

व्याख्या : माया को डाकिनी के समान बताया है। संतजन के सानिध्य में इसे समाप्त किया जा सकता है। गुरु के सानिध्य के बगैर कोई व्यक्ति स्वंय का मूल्यांकन नहीं कर पाता है और इनमे ही फसकर रह जाता है। माया को डाकिनी

इस लिए बताया है की वो मनुष्य के अनमोल जीवन को कौड़ी में बदल देती है। माया के वश हम भूल जाते हैं की बहुत जतन के बाद मनुष्य जीवन प्राप्त हुआ है और हमें मालिक का सुमिरन करते हुए सदाचार से जीवन व्यतीत करना है।

विशेष : अर्थ-शक्ति उद्भव वस्तु से अलंकार ध्वनि है। व्यतिरेक अलंकार ध्वनित है।

दोहा : 22 **नलनी सायर घर किया, दौं लागी बहुतेणि।**
जलही माँहै जलि मुई, पूरब जनम लिपेणि ॥22॥

शब्दार्थ : सायर = सगार , माया ; दौं = अग्नि , विभिन्न यतनाएँ एवं भवताप।

व्याख्या : कबीरदास कहते हैं कि जिस प्रकार कमलिनी जल में रहती है , उसी भाँति आत्मा ने इस संसार (की माया) को अपना निवास – स्थान बना लिया है , किन्तु वहाँ बहुत से दुःख एवं संसार ताप उसे दग्ध करने लगे। इस प्रकार यह आत्मा इस संसार रूपी जल में ही रहते हुए जल मरी , नष्ट हो गई। यह आश्चर्य जनक परिणाम उसके पूर्वजन्म के दुष्कृत्यों का ही था।

विशेष : अलंकार यमक, विरोधाभास एवं रुपकातिशयोक्ति ।

दोहा : 23 **कबीर गुण की बादली, ती तरबानी छाँहिं ।**
बाहरि रहे ते ऊबरे, भीगें मंदिर माँहिं ॥23॥

शब्दार्थ : गुण = सत ,रज ,तम , त्रिगुण ; तीतरबानीं = तीतरवर्णी , तीतर के पंखों के समान छितरी सी , किन्तु रंग तीतर के पंखों जैसा नहीं होता , उसके रंग के छितराये होने के ही कारण उसे 'तीतरबानी' कहा जाता है।

व्याख्या : कबीरदास कहते हैं कि यह त्रिगुणात्मक माया की तीतर वर्णी घाट बिना बरसे , बिना अपना प्रभाव दिखाये नहीं रहती। जो इस घटा की छाया से बाहर रहे , माया – विमुक्त रहे वे मिक्त हो गये ,माया
उन पर अपना प्रभाव नहीं दिखा सकी , किन्तु जो शरीर रूपी आवास के अंदर रहे अर्थात माया अकर्षणों में ही शरीर को लगा दिया वे भीग गये , माया ने उन पर अपना पूरा प्रभाव कर दिखाया।

विशेष : अलंकार – रूपक , विरोधाभास।

दोहा : 24 **कबीर माया मोह की, भई अँधारी लोइ।**
जे सूते ते मुसि लिये, रहे बसत कूँ रोइ ॥24॥

टिप्पणी: ख-में इसके आगे यह दोहा हैं-

शब्दार्थ : लोइ = (लोचन) नेत्र ; सुते = सुषुप्त , अज्ञान – निद्रा में ; मुसि = ठग लिये ; बसत = वस्तु , सारतत्व , ब्रह्मा

व्याख्या : माया काली रात्रि के समान है, जो चारों तरफ काली रात्रि के सामान व्याप्त है। इसमें जो जीव फँस जाता है वो ज्ञान रूपी अमृत से वंचित रह जाता है। रात्रि में अँधेरा होता है जो प्रकाश के अभाव में उत्पन्न होता है। प्रकाश के अभाव में हम सही राह का चुनाव नहीं कर पाते हैं। सत्य और सद्मार्ग की राह माया ने अंधकार करके धूमिल कर रखी है।

विशेष : शब्द – शक्ति उद्भव वस्तु से वस्तु ध्वनि है , ध्वनित वस्तु है – 'माया – मोह किसी को नहीं छोड़ते , भगवान के भजन में लग जाओ'।

दोहा : 25 **संकल ही तैं सब लहै , माया इहि संसार ।**
ते क्यूँ छूटे बापुड़े, बाँधे सिरजनहार ॥25॥

शब्दार्थ : समकाल = कुंडी , जिससे द्वारा बन्द होता है , श्रृंखला ; बपुड़े = बेचारे ।

व्याख्या : समस्त संसार माया की श्रृंखलाओं में बाँधा हुआ है , वे बेचारे जीव किस प्रकार माया – बंधन से विमुक्त हो सकते हैं जो संसार कर्ता ब्रह्मा को भी माया-संलिप्त बताते हैं ।

विशेष : मानवीकरण तथा रूपक वस्तु से वस्तु ध्वनि है – ध्वनित वस्तु है – 'भगवान के भजन बिना मुक्ति का कोई अन्य मार्ग नहीं' ।

दोहा : 26 **बाड़ि चढ़ती बेलि ज्यूँ, उलझी, आसा फंध ।**
तूटै पणि छूटै नहीं, भई ज बाना बंध ॥26॥

शब्दार्थ : बाडि = बाड़ , किसी बेल के चढ़ने के लिए ग्रामों में प्रायः कटों की एक बाड़-सी लगा देते हैं , यह प्रायः बबूल वृक्ष की शाशकों को गाड़कर बनायी जाती है ; फंध = फंदा ; तूटै = टूट ; बचा –बन्ध = वचन बद्ध ।

व्याख्या : माया इस संसार रूपी बाड़ के ऊपर चढ़ाई गई एक बेल है जो विविध आशाओं , लालसाओं के फंदे में उलझी हुई है , अर्थात जीव को आया , तृष्ण के फन्दे में उलझा लेती है । यदि जीव इससे अपना संबंध समाप्त कर दे तो भी यह संसार से नहीं छूट सकती जैसे वचन बद्ध व्यक्ति , हानी होने पर भी ; अपने वचनों का परित्याग नहीं कर्ता ।

विशेष : उपमा, रूपक अलंकार है ।

दोहा : 27 **सब आसण आस तणाँ, त्रिबर्तिकै को नाहिं ।**
निवरिति कै निबहै नहीं, परिवर्ति परपंच माँहि ॥27॥

शब्दार्थ : आसण =स्थिति ; तणाँ = नीचे ; निवर्ति = निवृत्ति ; परिवर्ति = प्रवृत्ति ।

व्याख्या : संसार के समस्त प्राणियों पर आशा – लालसा –का प्रभु है , कोई भी इस संसार से निवृत्त नहीं । भला जो व्यक्ति प्रवृत्ति मार्ग के टंटों में फँसा हुआ है वह निवृत्ति मार्ग का निर्वाह कैसे कर सकता है ?

भाव यह है कि संसार से तटस्थ होकर , प्रवृत्ति मार्ग का परित्याग करके ही निवृत्ति वैराग्या(ईश्वर से राग)-उत्पन्न हो सकती है ।

विशेष : 1. मानवीकरण चमत्कार विधायक है । अलंकार से वस्तु ध्वनि है , ध्वनित है – हर दशा में आशा पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न वंचित है । **2.** 'तणाँ' 'का' के अर्थ में परसर्ग ।

दोहा : 28 **कबीर इस संसार का, झूठा माया मोह।**
जिहि घरि जिता बधावणाँ, तिहि घरि तिता अँदोह॥28॥

शब्दार्थ : बंधवाण = आनंदोल्लास ; तिता = उतना ही ; अदोह = दुःख ।

भावार्थ / अर्थ – कबीर कहते हैं — झूठा है संसार का सारा माया और मोह। सनातन नियम यह है कि – जिस घर में जितनी ही बधाइयाँ बजती हैं, उतनी ही विपदाएँ वहाँ आती हैं।

विशेष : वस्तु से अलंकार ध्वनि है। निदर्शना अलंकार ध्वनित है।

दोहा :29 **माया हमगौ यों कह्या, तू मति दे रे पूठि।**
और हमारा हम बलू गया कबीरा रूठि ॥29॥

टिप्पणी: माया मन की मोहनी, सुरनर रहे लुभाइ।

शब्दार्थ : दे रे पूठि = पीठ देना , विमुख होना ; हम बालू = अपना बल , आत्मबल।

व्याख्या : कबीरदास कहते हैं कि माया ने मुझ से यह कहा कि तू मुझ से विमुख मत हो – इसलिए माया ने विविध आकर्षण प्रस्तुत किए ; किन्तु यह मेरा आत्मबल है कि मैं माया से अप्रसन्न हो गया , उससे संबंध – विच्छेद कर दिया

विशेष : I 'हम बलू', 'रहबर' की तरह 'हमबर' से विकसित ज्ञात होता हैं। डॉ. तिवारी के पाठान्तर से अर्थ में कोई जटिलता नहीं रह जाती। उनके अनुसार अर्थ होगा – माया कह रही है हमारे वंश में पड़े रहो'।

II मानवीकरण से चमत्कार उत्पन्न हुआ है।

दोहा : 30 **बुगली नीर बिटालिया, सायर चढ्या कलंक।**
और पखेरू पी गये , हंस न बोवे चंच ॥9॥

शब्दार्थ : बगली = बगुला **,** मायासे तात्पर्य है ; बटलिया = समाप्त कर दिया। सायर = सागर ; पखेरू = पक्षी सामान्य, सांसरिक जीव ; हंस = मुक्तात्मा।

भावार्थ / अर्थ – बगुली ने चोंच डुबोकर सागर का पानी जूठा कर डाला ! सागर सारा ही कलंकित हो गया उससे ।और दूसरे पक्षी तो उसे पी-पीकर उड़ गये, पर हंस ही ऐसा था, जिसने अपनी चोंच उसमें नहीं डुबोई।

विशेष : 1. सगरूपक , रूपकतिशयोक्ति।

2. मुक्तत्माओं की इस संसार में स्थिति 'पद्मपत्रमिवाम्मसि' तुल्य मानते हैं।

14.4 कबीर के माया संबंधी विचार

कबीर ने जीवन के प्रत्येक चरण का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। समाज की मूल इकाई व्यक्ति है इसलिए कबीर ने बारीक़ से बारीक़ विषय को तार्किक रूप से लोगों के समक्ष रखा ताकि व्यक्ति के चरित्र का निर्माण किया जा सके। बाहर झाँकने से पहले स्वंय का विश्लेषण आवश्यक है। व्यक्तिगत अवगुणों का त्याग करके ही एक स्वस्थ व्यक्तित्व का निर्माण संभव है।

लोग अपने परिजन और आसपास के लोगों को वृद्ध होकर मरते देखते हैं लेकिन फिर भी वे मालिक का सुमिरन नहीं करते और इस संसार को ही अपना घर मान लेते हैं। जीवन के मूल उद्देश्य के प्रति लापरवाह हो जाते हैं। जीवन का उद्देश्य धन दौलत कमाना, रिश्ते नाते निभाना, बच्चे पैदा करना मात्र ही नहीं है। पता सभी को है फिर रोकता कौन है मालिक का नाम सुमिरन से। कबीर साहेब की वाणी से ज्ञात होता है की ये अज्ञान होता है जो की माया के

कारण पैदा होता है। ईश्वर का मार्ग, अज्ञान और माया तीनों एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। माया जितनी प्रबल होगी वो उतना ही अज्ञान पैदा करती है और उसी अनुपात में व्यक्ति सद्मार्ग से विमुख होने लगता है। माया के क्षीण होने पर वैराग्य उत्पन्न होता है और ज्ञान की प्राप्ति की राह खुलती है। वैराग्य होने से किसी से आसक्ति नहीं होती है और इन्द्रियों मकड़जाल कटने लगता है। ईश्वर ज्ञान का यह मतलब कतई नहीं है की व्यक्ति अपनी जिम्मेदारियों से पल्ला झाड़ ले। ज्ञान प्राप्ति के बाद मन को वश में करना आसान हो जाता है। मोह माया के जाल से सद्गुरु के सानिध्य से ही कोई व्यक्ति पार लग सकता है।

मोह नदी बिकराल है, कोई न उतरै पार
सतगुरु केबट साथ लेई, हंस होय जम न्यार।

सद्गुरु के सानिध्य में ही व्यक्ति मोह माया के जाल से उबर सकता है। इसीलिए कबीर ने आचरण की शुद्धता पर बल दिया है ताकि विषय विकार से छुटकारा पाया जा सके। सादा भोजन, सादे वस्त्र और उच्च विचार के आने पर विषय विकार दूर हट जाते हैं। साथ ही कबीर ने सत्संग का महत्त्व बताया है। अच्छे लोगों के पास उठने बैठने से आध्यात्मिक विचारों के लिए मन में स्थान पैदा होता है , और धीरे धीरे व्यक्ति इस और आकृष्ट होता है।

माया मुई न मन मुवा, मरि-मरि गया सरीर ।
आसा त्रिष्णां ना मुई, यों कहि गया `कबीर' ॥

माया बहुत शक्तिशाली है जो जीव को अपने वश में कर लेती है। मनुष्य का जीवन समाप्त हो जाना है लेकिन माया सदा बनी रहेगी। जीव अपने साथी जीव को दुनिया छोड़ कर जाते हुए देखता है फिर भी माया को नहीं छोड़ता है। लोग आते हैं, उनका जीवन पूरा हो जाता है लेकिन धन, माया और तृष्णा सभी यही रह जाते हैं क्यों की वो युगों से मानव को अपने जाल में फाँस कर रखते हैं।

कबीर ने धन और माया के सन्दर्भ में कहा है की धन संचय भी आवश्यक है लेकिन धन संचय उतना ही किया जाना चाहिए जिससे दिन प्रतिदिन की आवश्यकताएं पूर्ण की जा सके। जीवन में कष्ट पाकर और अनैतिक रूप से धन का संचय नहीं करना चाहिए। सब कुछ यही रह जाना है कुछ साथ नहीं चलना, भले ही कितना भी धन जोड़ लिया जाय। किसी को अपने सर पर धन की पोटली ले जाते मृत्यु उपरांत किसी ने नहीं देखा है। जो समय मिला है उसमे ईश्वर की भक्ति की जानी चाहिए।

कबीर सो धन संचिये, जो आगैं कूं होइ ।
सीस चढ़ावें पोटली, ले जात न देख्या कोइ ॥

सांसारिक जीवन पानी से घी लिकालने के समान है। कोई कितना भी प्रयत्न कर ले उसे सफलता प्राप्त नहीं होती है। भक्ति में जो आनंद है वो किसी अन्य विधि प्राप्त नहीं हो सकता है। हमारा मन किसी भी अवस्था में ज्यादा देर तक बना नहीं रह सकता है। उसका स्वाभाव ही चंचल है। हम रोज नए नए विचार हमारे अंदर भर लेते हैं। मन उनसे विचलित हो जाता है। उसके अधीर होने से जीवन अशांत हो जाता है। सदविचारों से मन को अनुशाषित करना है, जिससे उसमे स्थायित्व आएगा। विचारों में ठहराव आएगा और व्यक्ति ईश्वर की और अग्रसर होगा।

मनह मनोरथ छाँड़ि दे, तेरा किया न होइ।
पाणी में घीव नीकसै, तो रूखा खाइ न कोइ॥

कबीर साहेब के अनुसार माया ना तो सत्य है और ना ही असत्य ही। माया ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति में बाधक है इसलिए सत नहीं है और असत इसलिए नहीं क्यों की क्यों की माया का बोध तो होता है लेकिन असत वस्तुओं का बोध नहीं होता है। यह रज तम और सत से युक्त त्रय अविधा रूपिणी है। माया भगवन की ही शक्ति है जो समस्त संसार के जीवों को अपना बनाने के लिए आतुर है। संसार के जो भी बंधन "आसक्ति"उत्पन्न करते हैं वे सब माया ही है। माया छद्म और प्रत्यक्ष रूप दोनों में ही विद्यमान होती है। कबीर ने माया को मानव जीवन में सबसे बड़ी बुराई बताया है। उन्होंने माया को डाकिनी, पापिनी, मोहिनी, दारुनि और विश्वाश घातिनी बताया है। राम भक्ति की सबसे बड़ी बाधक माया है और जो संत जन इसे पहचान लेते हैं वे माया को दासी बना लेते हैं।

माया महा ठगनी हम जानी।।
तिरगुन फांस लिए कर डोले बोले मधुरे बानी।।
केसव के कमला वे बैठी शिव के भवन भवानी।।
पंडा के मूरत वे बैठीं तीरथ में भई पानी।।
योगी के योगन वे बैठी राजा के घर रानी।।
काहू के हीरा वे बैठी काहू के कौड़ी कानी।।
भगतन की भगतिन वे बैठी बृह्मा के बृह्माणी।।
कहे कबीर सुनो भई साधो यह सब अकथ कहानी।।

इसके द्वारा हमें ठगने के बाद भी सुख का अनुभव होता है। ये माया है जो मनुष्य तो क्या शिव को भी ठगने के लिए भवानी बन जाती है। ब्रह्म को ठगने के लिए ब्रह्मिनी बन जाती है।

कबीर माया मोहिनी , मांगी मिलै न हाथ।
मना उतारी जूठ करु, लागी डोलै साथ

कबीर साहेब की वाणी है की माया मांगने से हाथ में नहीं आती है, जो इसे व्यर्थ जानकर अपने मन से उतारकर फ़ेंक देते हैं, ये उनके पीछे माया दौड़ती है अपने पाश में फांसने के लिए। जो लोग माया को पहचान लेते हैं वो इससे दूरी बना लेते हैं। माया इस अवस्था में व्यक्ति को और ज्यादा आकृष्ट करती है।

कबीर माया मोहिनी, जैसी मीठी खांड।
सद्गुरु की किरपा भई , नातर करती भांड॥

माया मोहिनी है और मीठी है। अपनी और आकृष्ट करती है। मुझे सद्गुरु की कृपा प्राप्त हुयी है, अन्यथा मुझे वो भांड की तरह नचाती। भाव है की माया आकृष्ट करती है अपनी मिठास से। माया के जाल से सद्गुरु ही मुक्ति दिला सकता है अन्यथा मुक्ति और मोक्ष की प्राप्ति संभव ना थी ज्ञान के अभाव से ही व्यक्ति अपने मार्ग से विमुख होता है। बड़े ही जतन से ये काया प्राप्त हुयी भाई जिसे मालिक के सुमिरन में व्यतीत करना है।

माया छाया एक सी, बिरला जानै कोय।
भगता के पीछे फिरै , सनमुख भाजै सोय॥

माया और छायां का स्वभाव एक जैसा होता है। माया की पहचान कोई बिरला ही कर सकता है। सतजनों को सद्मार्ग से विमुक्त करने के लिए ये उनके पीछे भागती है और जो लोभी व्यक्ति होते हैं उनके पकड़ में ये नहीं आती है। इसकी पहचान सद्गुरु ही करवा सकता है।

माया दोय प्रकार की, जो कोय जानै खाय ।
एक मिलावै राम को, एक नरक ले जाय ।।

माया दे दो स्वरूपों के बारे में कबीर साहेब बताते हैं की माया का एक रूप का सहारा लेकर संतजन राम भक्ति की और अग्रसर होते हैं और दूसरा मार्ग उसका उपभोग करने का होता है जिससे व्यक्ति नर्क का भागी होता है।

मोटी माया सब तजै , झीनी तजी न जाय ।
पीर पैगम्बर औलिया, झीनी सबको खाय ।।

माया दे दो स्वरुप हैं। एक बृहद और दूसरी सूक्ष्म। वृहद माया जैसे सांसारिक उपभोग की वस्तुएं, जमीन, धन दौलत आदि और दूसरी सूक्ष्म माया है मान सम्मान और अभिमान। मोटी माया का त्याग संभव है लेकिन पीर पैगम्बर, और साधुजन भी माया के सूक्ष्म रूप को नहीं छोड़ पाते हैं। कौन कितना बड़ा संत है, उसके अनुयायी कितने हैं, इलाके में उसकी मान्यता कैसी है जैसे विषय अभिमान से जुड़े हुए हैं और सूक्ष्म माया के अंग है। यदि इनका त्याग कर दिया जाय तो ब्रह्म प्राप्ति संभव है।

झीनी माया जिन तजी, मोटी गई बिलाय ।
ऐसे जन के निकट से, सब दुःख गये हिराय ।।

वृहद माया का त्याग तो आसान है लेकिन सूक्ष्म माया का त्याग आसान नहीं होता है। जिसने सूक्ष्म माया को पहचान कर उसका त्याग कर दिया है ऐसे संतजन के समीप रहना चाहिए। उसके सानिध्य से समस्त दुःख दूर हो जाते हैं। भाव है की ऐसे संतजन की पहचान कर उनके समीप रहना चाहिए। ऐसे संतजन सूक्ष्म माया को समाप्त करने में सक्षम होते है। सूक्ष्म माया से कोई तपस्वी ही दूर रह सकता है। स्वंय के भक्तिमार्ग पर चलने का अभिमान भी माया ही है। अहंकार कर अभिमान त्याग करके ही सूक्ष्म माया से दूर रहा जा सकता है। वर्तमान सन्दर्भ में देखें तो साधु और संत सांसारिकता को छोड़ने का दम्भ भरते हैं लेकिन मठ का प्रमुख कौन हो ? मंदिर में मुख्य पुजारी कौन हो , मठाधीश कौन हो आदि विषयों पर तनाव रहता है, ये क्या है ? ये सूक्ष्म माया है जिसे वे त्याग नहीं पाए हैं।

माया काल की खानि है, धरै त्रिगुण विपरीत ।
जहाँ जाय तहं सुख नहीं , या माया की रीत ।।

माया समस्त दुखों की जननी है। यह त्रिगुण का विकराल रूप धारण करती है और जहाँ भी माया का अस्तित्व है वहां सुख की प्राप्ति संभव नहीं है। रिश्ते नातों में सुख नहीं है , सांसारिक वस्तुओं में सुख नहीं है, धन दौलत में सुख नहीं है, फिर सुख और बेफिक्री कहाँ है ? राम के नाम में। व्यक्ति पुरे जीवन माया के फंदे में उलझा रहता है। और ज्यादा इकठ्ठा करने की चाह में परेशान रहता है लेकिन कबीर साहेब की वाणी है की इस माया को लेकर कौन गया है, सब यही रह जानी है।

माया दीपक नर पतंग , भ्रमि भ्रमि माहि परन्त ।
कोई एक गुरु ज्ञानते , उबरे साधु सन्त ।।

माया भ्रम पैदा करती है और अपनी और आकर्षित करती है। माया दीपक की भांति है जो व्यक्ति को पतंगे की तरह आकर्षित करती है लेकिन पतंगा उसी दीपक में नष्ट हो जाता है। माया प्रकाश का भ्रम पैदा करती है लेकिन वो स्वंय काली रात्रि के समान है जो दुखों की जननी है। इस माया के इस जाल से गुरु के ज्ञान से ही बच सकता। है साधु संत सत्य की राह दिखाते हैं जिसके फलस्वरूप माया के प्रति आसक्ति पैदा नहीं होती है।

कबीर माया बेसवा , दोनूं की इक जात ।
आवंत को आदर करै , जात न बुझै बात ।।

माया को वेश्या के समान बताया है जिसके लिए कोई महत्वपूर्ण नहीं होता है। माया और वेश्या की एक जात होती है। दोनों को कबीर ने निकृष्ट बताया है। माया के जाल में जब व्यक्ति फसता है तो उसका स्वागत किया जाता है लेकिन माया में फंसकर जब उसका पतन हो जाता है तो उसकी खैर खबर लेने वाला कोई नहीं होता है।

कबीर माया पापिनी, लोभ भुलाया लोग ।
पुरी किनहूं न भोगिया, इसका यही यही बिजोग ।।

माया पापिनी है और ये लोभ पैदा करके व्यक्ति को अपने पाश में फंसा लेती है। इस माया को पूरी तरह से किसी ने नहीं भोगा है। माया कभी मरती नहीं, सिर्फ अपना रूप बदलती रहती है। इसने देवी देवताओं को भी अपने जाल में फंसा लिया था। इसलिए माया को कोई पूर्णतया भोग नहीं पाया है, ये अनंत है और यही इसका वियोग है।

माया लालच और लोभ के माध्यम से लोगों को अपनी और आकृष्ट करती है। सद्मार्ग से विचलित करने के लिए लोभ का माध्यम प्रयोग में लिया जाता है। बड़े बड़े संतजन भी अपनी भक्ति से विमुख होकर छोटे छोटे लोभ का शिकार होकर अपनी भक्ति और तपस्या पर पानी फेर लेते हैं। स्त्री को जहाँ माया माना गया है वहां पर कबीर ने स्त्री का भी विरोध किया है। वस्तुतः कबीर नारी विरोधी नहीं लेकिन नारी को भक्ति मार्ग मेंबाधा अवश्य माना है।

14.5. सारांश

बीरदास जी के काव्य में माया को महाठगिनी कहकर उसका घोर विरोध किय । कबीरदास जी के लिए काव्य साधन था साध्य नही।उन्होंने जग में घूमकर देखा कि लोग माया के पीछेपड़कर सब कुछ भूल चू के हैं।तब उन्होंने अपनी वाणी के माध्यम से समाज को सद्मार्ग दिखाने का काम किया। संसार में रहकर हमें अच्छे का मों में ध्यान लगाना चाहिए। जिस अबोध रूप में मनुष्य संसार में आता है उसी अबोधपन का अनुकरण करते हुए ही

मनुष्य को संसार में रहना चाहिए। मोहमाया ईश्वर प्राप्ति के बाधक है। मोहमाया मनुष्य को सद्मार्ग पर नहीं चल ने देते। अतः हमको माया का त्याग करना चाहिए ।

वृहद माया का त्याग तो आसान है लेकिन सूक्ष्म माया का त्याग आसान नहीं होता है। जिसने सूक्ष्म माया को पहचान कर उसका त्याग कर दिया है ऐसे संतजन के समीप रहना चाहिए। उसके सानिध्य से समस्त दुःख दूर हो जाते हैं। भाव है की ऐसे संतजन की पहचान कर उनके समीप रहना चाहिए। ऐसे संतजन सूक्ष्म माया को समाप्त करने में सक्षम होते है। सूक्ष्म माया से कोई तपस्वी ही दूर रह सकता है। स्वंय के भक्तिमार्ग पर चलने का अभिमान भी माया ही है। अहंकार कर अभिमान त्याग करके ही सूक्ष्म माया से दूर रहा जा सकता है। वर्तमान सन्दर्भ में देखें तो साधु और संत सांसारिकता को छोड़ने का दम्भ भरते हैं लेकिन मठ का प्रमुख कौन हो ? मंदिर में मुख्य पुजारी कौन हो , मठाधीश कौन हो आदि विषयों पर तनाव रहता है, ये क्या है ? ये सूक्ष्म माया है जिसे वे त्याग नहीं पाए हैं।

एक मोह छह महीने से तीन साल के बीच कहीं भी रहता है। यदि यह इससे परे रहता है तो यह अधिक गंभीर संबंध में बदल सकता है। लेकिन लोगों को एक साल बाद भी एहसास होता है कि वे मोहग्रस्त हैं और यह प्यार नहीं है। अगर यह लंबी दूरी का रिश्ता है तो यह अधिक समय तक चल सकता है। माया की **तीन** शक्तियाँ हैं - यह एक ही साथ अनुभवातीत, सार्वभौम और वैयक्तिक है; यह परम विश्वातीत सत्ता है जो स्वयं को सर्व-सत्ता के रूप में, वैश्व आत्मा के रूप में, वैश्व प्रकृति की चित्-शक्ति के रूप में अभिज्ञ करती है, और साथ ही सभी अस्तित्वों में स्वयं को व्यक्तिगत सत्ता और चेतना के रूप में अनुभव करती है। माया व्यापक अविद्या है जिसमें सभी मनुष्य फँसे हैं। कुछ विचारक इसे भ्रम के रूप में देखते हैं, कुछ मतिभ्रम के रूप में। पश्चिमी दर्शन में कांट और बर्कले इस भेद को व्यक्त करते हैं। ज्ञानलाभ के अनुसार आरंभ में हमारा मन कोरी पटिया के समान होता है जिस पर बाहर से निरंतर प्रभाव पड़ते रहते हैं।

14.6 बोध प्रश्न

1. *मोह माया* से ऊपर उठने का वास्तविक क्या *अर्थ* है ?
2. माया कौ अंग – परिचय दीजिये।
3. मोह और माया में क्या अंतर है ?
4. माया की परिभाषा क्या है ?

14.7. सहायक ग्रन्थ

1. संतों की सांस्कृतिक संसुती – डॉ. राज रतन पाण्डेय , उपकार प्रकाशन , दिल्ली।
2. कबीर मीमांसा – डॉ . रामचन्द्र तिवारी – लोक भारती प्रकाशन , इलाहाबाद।
3. कालजयी कबीर – संपादक – हर महेंद्र सिंह गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी , अमृतसर।
4. कबीर साहित्य की परख – परशुराम चतुर्वेदी , भारती भण्डार , इलाहाबाद।
5. कबीर – हजारी प्रसाद द्विवेदी राजकमल प्रकाशन , दिल्ली।

डॉ. एम. मंजुला

15. उपदेश कौ अंग, मन कौ अंग

15.0. उद्देश्य

कबीर का लक्ष्य ही था जन्म और मरण से मुक्त होना। इनके काल में राजनीति और अर्थ की प्रधानता स्थापित नहीं हुई थी। कबीर दास के जीवन का मुख्य उद्देश्य समाज में सभी धर्मों के बीच समन्वय को स्थापित करना, मानव धर्म को सर्वोपरि बनाना, निम्न वर्ग के लोगों को प्रोत्साहित करना, समाज में फैली कुरीतियों का विरोध करना एवं समाज में सुधार कार्यों को बढ़ावा देना था। कबीर के निर्गुण भक्ति मार्ग के अनुयायी थे और वैष्णव भक्त थे। रामानंद से शिष्यत्व ग्रहण करने के कारण कबीर के हृदय में वैष्णवों के लिए अत्यधिक आदर था। कबीर ने धार्मिक पाखण्डों, सामाजिक कुरीतियों, अनाचारों, पारस्परिक विरोधों आदि को दूर करने का सराहनीय कार्य किया है। कबीर द्वारा व्यक्त किए गए प्रमुख विचारों में शामिल हैं- प्रमुख धार्मिक परंपराओं की अस्वीकृति, ब्राह्मणवादी हिंदू धर्म की बाहरी पूजा के सभी रूपों की आलोचना, पुरोहित वर्गों और इस्लाम व्यवस्था की आलोचना किया गया है।

इस इकाई में कबीर दास से रचित साखी के पदेश कौ अंग और मन कौ अंग में बताये गये अंशों को पढ़ेंगे। इस में उपदेश, मन को नियंत्रित करना, व्यर्थ विषयों से मन को दूर रखना आदि के बारे में कबीर दास जी ने जो उदाहरण सहित बताया गया है उनके बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।

रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना

15.2 उपदेश कौ अंग -अंग परिचय

15.3 उपदेश कौ अंग 'सप्रसंग व्याख्या'

15.4. मन कौ अंग-अंग परिचय

15.5. मन कौ अंग- दोहे

15.6 सारांश

15.7 बोध प्रश्न

15.8 सहायक ग्रन्थ

15.1. प्रस्तावना

कबीर जी के अनुसार माला फेरना व्यर्थ हैं। कबीरदास कहते हैं कि भगवान हमारे मन मंदिर में हैं और उसे बाहर के व्यर्थ कर्मकांडों में ढूंढने से कोई लाभ नहीं है। यदि ईश्वर को प्राप्त करना है तो व्यर्थ के अंध विश्वासों को खुद से दूर करना होगा और स्वयं में ईश्वर को ढूंढना होगा। वास्तव में ईमानदारी से कर्म करना ही ईश्वर की सच्ची भक्ति है।

भक्ति शब्द का अर्थ है महान प्रेम या वफादारी। 'भक्त' शब्द भक्ति शब्द का व्युत्पन्न है। भक्त का अर्थ है गंभीरता से, ईमानदार से भगवान के प्रति प्रेम या वफादार दिखाना। संत श्री गोकुलनाथ जी ने कहा है कि जिसके हृदय में प्रेम अंकुर होता है उस व्यक्ति को भक्ति की ओर प्रेरित किया जा सकता है। प्रेम का वृक्ष तभी उग सकता है जब प्रेम का बीज, प्रेम का अंकुर हृदय में मौजूद हो। कबीरदास उपदेश दिया कि संपूर्ण श्रद्धा से ही ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। वे उस पत्थर की पूजा क्यों नहीं करते जो उनके लिए खाने के लिए आटा पीसता है। उनकी कविता में ये सारे विचार उभर कर आते हैं। कोई भी व्यक्ति अपने आध्यात्मिक अनुभव और अपनी कविताओं को अलग नहीं कर सकता है।

15.2. उपदेश कौ अंग- अंग परिचय

प्रस्तुत अंग में कबीर ने विभिन्न विषयों पर अपना विचार प्रकट किये हैं। सबसे पहले वे इस बात की घोषणा करते हैं। कि प्रभु ने उन्हें इस धरातल पर इसलिए भेजा है कि वे अपनी साखियों द्वारा मनुष्यों के अज्ञान को नष्ट करके उन्हें प्रभु की ओर उन्मुख करें। फिर उन्होंने बताया है कि प्रत्येक कर्म का फल तत्काल मिल जाता है , अतः मनुष्य को कभी भी बुरे कर्म नहीं करने चाहिए। जिस प्रकार किसान बायें हाथ में फसल के पौधे पकड़कर दाहिने हाथ के हैंसिया से व्ही काटता है , जो वह बोता है , इसी प्रकार मनुष्य जैसा कार्य करेगा , उसे उसका वैसा ही फल मिलेगा। जीवन और इसकी वासनाएँ क्षणिक हैं जो देखते –देखते नष्ट हो जाती हैं। संशय मुक्ति-प्राप्ति में सबसे बड़ा बाधक है। जब तक मनुष्य के मन में संशय बना रहेगा , वह द्विविधा-ग्रस्त बना रहेगा और किसी भी प्रकार द्विविधाग्रस्त मन किसी निर्णय पर नहीं पहूँचा करता। अतः ईश्वर की ओर उन्मुख होने से पूर्व संशय का परित्याग करना अत्यंत आवश्यक है। संन्यासी को विरक्त और गृहस्थ को उदारचित वाला होना चाहिए। ये दोनों यदि अपनी सीमाओं का त्याग कर देंगे तो समाज की व्यवस्था छिन्न – भिन्न हो जायेगी और ये दोनों मुक्ति से भी वंचित रह जायेंगे। जहाँ तक संभव हो सके , व्यक्ति को विषय – विकारों में पड़कर अपनी आत्मा को कलुषित तहीं करना चाहिए। मनुष्य को सदैव मधुर वचनों का प्रयोग करना चाहिए , क्योंकि इस प्रकार के वचनों से दूसरों को भी सुख मिलता है और स्वयं को भी सीख मिलता है। अंत में, कबीर ने बताया है कि साधक को सदैव सदुपदेशों द्वारा इतना सावधान और सजग रहना चाहिए कि कोई भी विकार उसके मन में प्रवेश न कर सके।

कबीरदास साखी के उपदेश कौ अंग में कहते हैं कि भगवान के प्रति श्रद्धा, प्रेम, भक्ति भावना आदि को मन में लाने के लिए इस अंग में दिए गये अंशों को ध्यान पूर्वक पढ़ना चाहिए। कबीरदास कहते हैं कि मन में जो चिंता कस्ट, ईर्षा, द्वेष आदि भावनाओं को मिटाकर सद् गुरु के द्वारा जो उपदेश दिये गये हैं उनका अनुसरण करते हुए अच्छे जीवन बिताना चाहिए। अंत में भगवान को प्राप्त करना चाहिए। इन सभी अंशों को कुछ दोहों के उदाहरणों से समझाया गया है।

15.3.उपदेश कौ अंग का सप्रसंग व्याख्या

दोहा : 1 **हरि जी यहै बिचारिया, साषी कहौ कबीर।**
भौसागर मैं जीव है, जे कोई पकड़ैं तीर॥1॥

शब्दार्थ : विचारिया = विचार किया , यहाँ निश्चय किया के अर्थ में ; भौसागर = भाव-सागर , संसार - समुद्र।

व्याख्या : कबीर कहते हैं कि प्रभु ने यही निश्चय कर कहा कि कबीर तुम अनुभव – संचित ज्ञान को सखियों के रूप में संसार के सम्मुख प्रस्तुत करो , कहो। इस संसार समुद्र में बहुत से जीव तरने की आशा में पड़े हैं ,कदाचित कोई इन सखियों का सम्बल पाकर ही इस भवसागर से पर हो जाये।

विशेष : रूपक अलंकार

दोहा :2 कली काल ततकाल है, बुरा करौ जिनि कोइ।
अनबावै लोहा दाहिणै बोबै सु लुणता होइ॥2॥

शब्दार्थ : अन = अन्न , फसल के पौधों से तात्पर्य है। बोवै = बायाँ , बायां हाथ। लौहा = हँसिया या दांती। दांहिनै = दक्षिण हाथ।

व्याख्या : कबीर कहते हैं कि कलियुग में कर्मफल तत्काल प्राप्त होता है अतः बुरे कर्म मत करो। जिस प्रकार कृषक बायें हाथ में फसल के पौधे पकड़कर एवं दाहिने हाथ में उसको काटने वाली हँसिया लेकर जो बोता है वही काटता है। उसी भाँति जैसे कर्म करोगे उसका वैसा ही फल तत्क्षण भोगना पड़ेगा।

विशेष : अर्थान्तरन्यास ।

दोहा :3 कबीर संसा जीव मैं, कोई न कहै समझाइ।
बिधि बिधि बाणों बोलता सो कत गया बिलाइ॥3॥

शब्दार्थ : संसा = संशय , शंका से तात्पर्य। बिधि - भिधि = विविध प्रकार की। बिलाइ = नष्ट हो गया।

व्याख्या : कबीर कहते हैं कि मुझे जीव के अस्तित्व के विषय में विभिन्न आशंकाएँ हैं। जो जीवात्मा अभी – अभी भिन्न –भिन्न प्रकार बातें कर रहा था , वह न जाने किधर विलुप्त हो गया। जीव की केसी क्षणिक स्थिति है ?

विशेष : अर्थ – शक्ति उद्भव वस्तु से वस्तु ध्वनित है। ध्वनित हैं , 'जीव की गति विचारणीय है'।

दोहा : 4 कबीर संसा दूरि करि जाँमण मरण भरंम।
पंचतत तत्तहि मिले सुरति समाना मंन॥4॥

शब्दार्थ : जाँमण – मरण = जन्म – मरण।

व्यख्या : इससे पहली सखी में जो शंका उपस्थित की गई थी उसी का समाधान करते हुए कबीर कहते हैं हे मन ! इस शंका को दूर कर दे, क्योंकि यह जन्म मरण तो भ्रम – मात्र है। इस शंका को दूर करने से जीवन्मुक्त हो जायेगा और जिन पंचतत्वों ('क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा') से यह शरीर निर्मित हुआ है वे अपने तत्वों में मिल जायेंगे और तन मन सुरति अवस्था में पहुँच ईश्वर का साक्षात्कार करेगा।

विशेष : 'सुरति' का प्रयोग यहाँ व्यापक अर्थ में हुआ है। यहाँ इसका अर्थ 'स्मृति' तथा आत्मा की परमात्मा के साथ रति भी है।

दोहा : 5 ग्रिही तौ च्यंता घणीं, बैरागी तौ भीष।
दुहुँ कात्याँ बिचि जीव है, दौ हमैं संतौं सीष॥5॥

शब्दार्थ : च्यांता = चिंता। घणीं = अधिक। भीष = भिक्षा। दुहु कत्या = कैंची के दो फलकों का अर्थ। हनै = नष्ट करे।

व्याख्या : कबीर कहते कि गृही तो बहुत सी चिंताओं में ग्रस्त हैं और संन्यासी भी भिक्षा की चिंता से मुक्त नहीं। इस प्रकार गृहस्थ और संन्यास दोनों अवस्थाओं में जीव उसी प्रकार नष्ट होता है जैसे कैंची के फलकों के बीच कोई वस्त्र आदि। इन दोनों अवस्थाओं में साधु – शिक्षा ही चिंताओं को नष्ट कर सकती है।

विशेष : अर्थ – शक्ति उद्भव वस्तु से वस्तु से ध्वनि है। ध्वनित है – 'गृहस्थ रहते हुए विरक्ति के भाव को ग्रहण करना चाहिए'।

दोहा :6 बैरागी बिरकत भला, गिरहीं चित्त उदार।
दुहै चूकाँ रीता पड़ै, ताकूँ वार न पार ॥6॥

शब्दार्थ : विरक्त =विरक्त।

व्याख्या : कबीरदास कहते हैं कि सन्यासी को विरक्त एवं गृहस्थ को उदरा – चित होना चाहिए। यदि ये दोनों अपने इन प्रकृत गुणों का परित्यक्त कर देगे तो इतना अनर्थ होगा कि उसकी सीमा नहीं रहेगी।

अर्थ – बैरागी वही अच्छा, जिसमें सच्ची विरक्ति हो, और गृहस्थ वह अच्छा, जिसका हृदय उदार हो। यदि वैरागी के मन में विरक्ति नहीं, और गृहस्थ के मन में उदारता नहीं, तो दोनों का ऐसा पतन होगा कि जिसकी हद नहीं।

विशेष : विनोक्ति अलंकार।

दोहा : 7 जैसी उपजै पेड़ मूँ, तैसी निबहै ओरि।
पैका पैका जोड़ताँ, जुड़िसा लाष करोड़ि ॥7॥

शब्दार्थ : निबहै ओरि = अन्त एक सुरक्षित रख सके। पैका – पैका = पैसा – पैसा। जुडिसी = जुड़ जाता , संग्रह हो जाता है।

व्याख्या : कबीर कहते है कि जैसा सुन्दर एवं मधुर फल (आम आदि) पेड़ से गिरते समय होता है यदि उसे अन्त तक उसी रूप में सुरक्षित रखा जाय तो वह बहुत ही स्तुत्य प्रयास होगा, उसी भाँति आत्मा जिस निर्दोष और निष्कलंक रूप में उस परम तत्व से पृथक होते समय प्राप्त हुई थी, यदि वैसी ही निर्मल रहे तो बहुत अच्छा रहेगा।

अब दूसरा भाव व्यक्त कराते हुए कबीर कहते हैं कि जीवात्मा ! तूने समस्त जीवन – रत्न व्यर्थ गँवा दिया , प्रभु भक्ति न की। यदि थोड़ा – थोड़ा भी प्रभु – भजन होता तो तू इस महान सुकृत्य से जीवन – मुक्त हो जाता। क्यों कि पैसा – पैसा जोड़कर तो लाख और करोड़ों की संपत्ति संगृहीत की जा सकती है।

विशेष : उपमा अलंकार है।

दोहा :8 **कबीर हरि के नाँव सूँ, प्रीति रहै इकतार।**
तौ मुख तैं मोती झड़ैं, हीरे अंत न पार॥8॥

भावार्थ / अर्थ – कबीर कहते हैं - यदि हरिनाम पर अविरल प्रीति बनी रहे, तो उसके मुख से मोती-ही मोती झड़ेंगे, और इतने हीरे कि जिनकी गिनती नहीं। [हरि भक्त का व्यवहार – बर्ताव सबके प्रति मधुर ही होता है- मन मधुर, वचन मधुर और कर्म मधुर।]

विशेष : रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

दोहा : 9 **ऐसी बाँणी बोलिये, मन का आपा खोइ।**
अपना तन सीतल करै, औरन कौं सुख होइ॥9॥

भावार्थ / अर्थ – अपना अहंकार छोड़कर ऐसी बाणी बोलनी चाहिए कि, जिससे बोलनेवाला स्वयं शीतलता और शान्ति का अनुभव करे, और सुननेवालों को भी सुख मिले।

विशेष : अर्थन्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है।

दोहा : 10 **कोइ एक राखै सावधान, चेतनि पहरै जागि।**
बस्तन बासन सूँ खिसै, चोर न सकई लागि॥10॥

भावार्थ / अर्थ – पहर-पहर पर जागता हुआ जो सचेत रहता है, उसके वस्त्र और बर्तन कैसे कोई ले जा सकता है ?चोर तो दूर ही रहेंगे, उसके पीछे नहीं लगेंगे। भाव यह है कि मन में कोई विकार आते ही साधक को उसे दूर कर देना चाहिए।

विशेष : रूपकतिशयोक्ति अलंकार है।

दोहा :11 **जग में बैरी कोइ नहीं, जो मन सीतल होइ।**
या आपा को डारिदे, दया करै सब कोइ ॥ 11॥

भावार्थ / अर्थ – हमारे मन में यदि शीतलता है, क्रोध नहीं है और क्षमा है, तो संसार में हमसे किसीका बैर हो नहीं सकता। अथवा अहंकार को निकाल बाहर करदें, तो हम पर सब कृपा ही करेंगे।

दोहा :12 **आवत गारी एक है, उलटत होइ अनेक।**
कह `कबीर' नहिं उलटिए, वही एक की एक ॥12॥

भावार्थ / अर्थ – हमें कोई एक गाली दे और हम उलटकर उसे गालियाँ दें, तो वे गालियाँ अनेक हो जायेंगी। कबीर कहते हैं कि यदि गाली को पलटा न जाय, गाली का जवाब गाली से न दिया जाय, तो वह गाली एक ही रहेगी।

दोहा :13 बोलत ही पहिचानिए , साहु चोर को घाट ।
अन्तर की करनी सबै, निकसै मुख की बाट ॥13॥

भावार्थ / अर्थ – कौन तो साह है, और कौन चोर – यह उसके बोलने से ही पहचाना जा सकता है । अन्तर में अच्छा या बुरा जो भी भरा हुआ है, वह मुँह के रास्ते बाहर निकल आता है ।

15.4. मन कौ अंग-अंग परिचय

मन की दृढ़ता पर ही साधना की सफलता आधारित होती हे । मन अत्यंत चंचल होता है , इसीलिए इसको वश में किए बिना किसी भी प्रकार की साधना में सफलता मिलनी कठिन है । अतः प्रस्तुत अंग में कबीर ने मन की चंचलता का अनेक प्रकार से वर्णन कराते हुए बताया है कि मन बहुत चंचल होता है, इसलिए मनुष्य को कभी भी इसके वश में नहीं होना चाहिए । मन ही प्रभु – भक्ति में सबसे प्रबल बाधक होता है । साथ ही यह बहुत आडंबरी भी होता है । देखने में तो ऐसा लगता है जैसे यह प्रभु की भक्ति कर रहा हो , किन्तु वास्तव में यह मायाजनित आकर्षणों की ओर दौड़ रहा होता है । जो व्यक्ति अपने मन को नहीं मारता; अर्थात इस पर नियंत्रण नहीं करता, उसे बाद में अनेक प्रकार के कष्ट भोगने पड़ते हैं और अपने कर्मों पर पछताना पड़ता है । प्रभु – प्राप्ति का सबसे सरल मार्ग यही है कि पहले मन को वश में कर लिया जाये क्योंकि मन सत्य और असत्य का विवेक रखते हुए भी असत्य मार्ग पर चला करता है और यह बड़े दुःख की बात है क्योंकि यदि हाथ में जलते हुए दीपक को लिये हुए कोई व्यक्ति कुंए में गिर जाये तो इससे अधिक दुःख की बात और क्या हो सकती है ?

मन कौ अंग के दोहों में मन के गुण एवं अवगुण की सुंदरता से व्याख्या की गई है । महापुरुषों ने हर दोहे में यह सीख दी है की मन की प्रवृत्ति चंचल होती है । अतः इसे नियंत्रित करना अत्यंत आवश्यक है । यदि मन को नियंत्रित कर लिया जाए तो निश्चय ही मनुष्य जीवन में सफल होता है । चंचलता के अतिरिक्त द्विविधा भी मन का एक कर्म है । जब तक मन में द्विविधा बनी रहती है तब तक कोई काम सिध्द नहीं हो सकता । हृदय के भीतर आत्मा का दर्शन होते हुए भी उस में ब्रह्म दिखाई नहीं देता । इस द्विविधा को समाप्त करने का एक ही मार्ग है और वह यह है कि इसका पूर्ण प्रेम प्रभु के प्रति समर्पित कर दिया जाये । इसी प्रेम के कारण मन सांसारिक विषयों से उदासीन हो जाता है और यही उदासीनता प्रभु-भक्ति का कारण बनती है । यदि मन चंचल न हो तो यह सहज ही मनुष्य को परम पद पर पहुँच देता है और यही इस चराचर का करता, नियामक तथा ब्रह्म बन सकता है । मन पानी से भी पतला, धुएँ से भी अधिक फीका और पवन की गति से भी तेज चलाने वाला होता है । यदि मनुष्य इसको अपने वश में नहीं करता तो यह मनुष्य को अपने वश में करके उसे सांसारिक विषय- आवश्यकता इस बात की है कि मस्त हाथी के समान झूमने वाले इस मन को संयम का अंकुश लगा- लगाकर अपने वश में किया जाये, पाँचों तत्वों के बाण चढ़ाकर तथा शरीर-रूपी मनुष्य कसकर मन रूपी मृग का वाढ किया जाये ।

15.5. मन कौ अंग- दोहे

`कबीर' मारूँ मन कूं, टूक-टूक ह्वै जाइ।
बिष की क्यारी बोइ करि, लुणत कहा पछिताइ ॥1॥

भावार्थ – इस मन को मैं ऐसा मारूँगा कि वह टूक-टूक हो जाय। मन की ही करतूत है यह, जो जीवन की क्यारी में विष के बीज मैंने बो दिये , उन फलों को तब लेना ही होगा, चाहे कितना ही पछताया जाय।

आसा का ईंधण करूँ, मनसा करूँ बिभूति।
जोगी फेरि फिल करूँ, यौं बिनना वो सूति ॥2॥

भावार्थ – आशा को जला देता हूँ ईंधन की तरह, और उस राख को तन पर रमाकर जोगी बन जाता हूँ। फिर जहाँ-जहाँ फेरी लगाता फिरूँगा, जो सूत इक्ट्ठा कर लिया है उसे इसी तरह बुनूँगा। [मतलब यह कि आशाएँ सारी जलाकर खाक कर दूँगा और निस्पृह होकर जीवन का क्रम इसी ताने-बाने पर चलाऊँगा।]

पाणी ही तै पातला, धुवां ही तै झीण।
पवनां बेगि उतावला, सो दोसत `कबीर' कीन्ह ॥3॥

भावार्थ – कबीर कहते हैं कि ऐसे के साथ दोस्ती करली है मैंने जो पानी से भी पतला है और धुएं से भी ज्यादा झीना है। पर वेग और चंचलता उसकी पवन से भी कहीं अधिक है। [पूरी तरह काबू में किया हुआ मन ही ऐसा दोस्त है।]

`कबीर' तुरी पलाणियां, चाबक लीया हाथि।
दिवस थकां सांई मिलौं, पीछै पड़िहै राति ॥4॥

भावार्थ – कबीर कहते हैं -ऐसे घोड़े पर जीन कस ली है मैंने, और हाथ में ले लिया है चाबुक, कि सांझ पड़ने से पहले ही अपने स्वामी से जा मिलूँ। बाद में तो रात हो जायगी , और मंजिल तक नहीं पहुँच सकूँगा।

मैमन्ता मन मारि रे, घट ही माहैं घेरि।
जबहिं चालै पीठि दे, अंकुस दै-दै फेरि ॥5॥

भावार्थ – मद-मत्त हाथी को, जो कि मन है, घर में ही घेरकर कुचल दो। अगर यह पीछे को पैर उठाये, तो अंकुश दे-देकर इसे मोड़ लो।

कागद केरी नाव री, पाणी केरी गंग।
कहै कबीर कैसे तिरूँ, पंच कुसंगी संग ॥6॥

भावार्थ – कबीर कहते हैं –नाव यह कागज की है, और गंगा में पानी-ही-पानी भरा है। फिर साथ पाँच कुसंगियों का है, कैसे पार जा सकूँगा ? [पाँच कुसंगियों से तात्पर्य है पाँच चंचल इन्द्रियों से।]

मनह मनोरथ छाँड़ि दे, तेरा किया न होइ।
पाणी में घीव नीकसै, तो रूखा खाइ न कोइ ॥7॥

भावार्थ – अरे मन ! अपने मनोरथों को तू छोड़ दे, तेरा किया कुछ होने-जाने का नहीं। यदि पानी में से ही घी निकलने लगे, तो कौन रूखी रोटी खायगा ? [मतलब यह कि मन तो पानी की तरह है, और घी से तात्पर्य है आत्म-दर्शन।

15.6. सारांश

कबीर मनुष्य के जीवन में नैतिक मूल्यों की आवश्यकता पर बल देते हैं। वे प्रेम ,दया,दान ,परोपकार ,इंद्रिय संयम सत्संगति,निंदा, त्याग,क्रोधविसर्जन आदि शाश्वत मूल्यों को जीवन के सुख का आधार मानते थे। इन गुणों की रक्षा का स्रोत आत्मपरीक्षण। हमारेपड़ोस में रहने वाला व्यक्ति यदि हमारी निंदा करता है तो उससे हमें अपने दुर्गुणों को दूर कर ने की प्रेरणामिलती है। इसलिए वे निंदक का सम्मान करने को कहते हैं। उन्होंने अपने उपदेश में जीवन के हर क्षेत्र में ' पवित्र' को स्थान दिया है। उनके उपदेशों को शीर्षकों में बांधना सहज साध्य नहीं है। मनुष्य के मन में प्रेम बहुत पवित्र वस्तु है ,उसका उदय होतेही अज्ञान जनित अंधकार नष्ट हो जाता है ,आत्मा निर्मलहोकर ईश्वरोन्मुखबनता है। जो मनुष्य समस्त प्राणी जगत में एक ही ब्रह्म के अस्तित्व को स्वीकार कर व्यवहार करता है उसके लिए किसी से क्रोध करना ,द्वेष करना ,कपट करना तथा अन्य वैमनस्यादि भावों को प्रदर्शित करनेका प्रश्न ही नहीं उठता। नैतिक ता की इसी भावधारा का प्रवाह संत कबीर की वाणी में समाहित है।

मन कौ अंग में कबीरदास कहते है मन को प्रयत्न पूर्वक वश में रखा जाय तो यही इस चराचर का कर्ता, नियामक ब्रह्म बन सकता है। प्रभु प्रति का मार्ग बड़ा संकीर्ण है और यह मन जो साधना का मूलाधार है, चंचल और चोर के समान लोभी वृत्ति का है। हे... साधक इस मन रूपी मदमस्त हाथी को हृदय के भीतर ही धरकर मार दो। जब भी यह किंचित भी साधना- विमुख हो तो बारम्बार संयम का अंकुश लगाकार इसे उचित पथपर ले आ। मन रूपी मदमस्त हाथी को मार-मार कर संयम से वश में कर ले तथा अपने कर्मों के आटे को बारीकअर्थात सुंदर पीस। इस उपाय के द्वारा ही ब्रह्माण्ड मेंपरमात्मा के दर्शन हो सकते हैं जिससे आत्मा प्रसन्न हो कर सुख लाभ करेगी। इस मन को नियंत्रण में रखकर परमात्मा को पाना साधक के लिए उचित होगा।

15.5. बोध प्रश्न

1. उपदेश कौ अंग – परिचय दीजिये।
2. कबीरदास के दोहे को व्याख्या कीजिये।
3. "मन की नियंत्रण रखने की जरूरी क्यों है" ? अपने विचार व्यक्त कीजिए।
4. "हाथ की माला और मन की माला में फर्क क्या है" अपने विचार व्यक्त कीजिए।
5. मन कौ अंग का परिचय दीजिये।
6. क्या मन एक वाइरस के समान है! स्पष्ट कीजिये।
7. मन की प्रकृति क्या है ? इस विषय पर चर्चा कीजिये।

15.6. सहायक ग्रन्थ

1. कबीर : व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धांत – सरनाम सिंह शर्मा, भारतीय शोध संस्थान, गुलावपुरा।

2. संतों रह दुओ हम दीठा – संपादक – भगवानदेव पाण्डेय, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणासी।

3. कबीर दर्शन : रामजी लाल सहायक, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

4. आधुनिक कबीर – डॉ . राजदेव सिंह, लोक भारती, इलाहाबाद।

5. कबीर समग्र : प्रथम खण्ड, द्वितीय खण्ड – प्रो. युगेश्वर, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वारणासी।

*****

डॉ. सूर्य कुमारी. पी.

16. सुमिरन, सांच कौ अंग

16.0. उद्देश्य

यदि आप अपने जीवन में शांति, स्वास्थ्य, जीवन शक्ति आदि चाहते हैं, तो आपको दिन में कम से कम दो बार भगवान के साथ मौन में बिताने के लिए अलग बैठना चाहिए। ध्यान करने का सबसे शुभ समय प्रातःकाल है। दुख में सुमिरन सब करें, सुख में करे न कोई । जो सुख में सुमिरन करे तो दुख काहे को होय । संत कबीर दास जी के दोहे आज भी जीवन को नई प्रेरणा देते हैं। उन्होंने अपना पूरा जीवन समाज सुधार में लगा देने का विवरण दिया गया है ।

कबीर हिंदी साहित्य के अध्यात्म हैं । उनको पढ़ना, सुनना, गुनना मनुष्यता को औदात्य प्रदान करता है. वे किसी के नहीं हैं और इसीलिए सबके हैं । गांधी की तरह, मनुष्य जब धरती पर आता है वह इस पूरी धरती का नागिरक होता है, धीरे-धीरे उसकी नागरिकता सिमटती जाती है । वह किसी जगह, किसी भाषा और किन्हीं लोगों में ही होकर रह जाता है । यही उसकी नश्वरता है. वह इन सीमाओं को तोड़कर जब अपना विस्तार करता है कबीर हो जाता है. बुद्ध हो जाता है । सदानंद शाही कबीर पर वर्षों से लिख बोल रहें हैं. यह आत्मज्ञान ही सत्य है. यह आत्मज्ञान हमें पूरी तरह बदल देता है- मुक्त कर देता है. यह मुक्ति हमें विश्व नागरिक बनाती , कबीर हमें विश्व नागरिक बनाते हैं और गालिब की तरह बे दरो दीवार का घर बनाने की राह खोलते हैं ।

रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना

16.2 सुमिरन का अंग का सरलार्थ

16.3 सुमिरन कौ अंग - परिचय

16.4 सुमिरन कौ अंग के दोहे

16.5 साँच कौ अंग - परिचय

16.6 साँच कौ अंग के दोहे

16.7 सारांश

16.8 बोध प्रश्न

16.9 सहायक ग्रन्थ

16.1. प्रस्तावना

व्यक्ति स्वयं की महानता को नहीं जानता है क्योंकि उसके शरीर पर जंग लगी हुई है। हम सभी के शरीर के अंदर गुणों का खजाना भरा हुआ है, हमें केवल अपने शरीर से पर्दा हटाना है। पर्दा हटते ही हमारे शरीर में गुण रूपी खजाना बाहर आ जाएगा और गुण रूपी खुशबू दूर-दूर तक जाने लगेगी। सुमिरन रोज करना चाहिए उसका महत्व सर्वकालिक है, किंतु लोग परमात्मा को दुख में ही याद करते हैं। इसका प्रचलन कुछ ज्यादा है। संकट से मुक्ति पाने के लिए व्यक्ति तरह-तरह की मनौतियां मानता है, लेकिन संकट टलने पर फिर वह निश्चिंत हो जाता है और सुमिरन बंद कर देता है। वह सुमिरन को संकटमोचन की तरह प्रयोग करता है।

राम के स्मरण में इतना रम गया है कि अब वह राम ही बन गया है। जब आत्मा - परमात्मा में भेद समाप्त हो जाता है तो उपासक को परमात्मा के समक्ष सीस झुकाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। तूं तूं करता तूं भया , मुझ में रही न हूँ। वारी फेरी बलि गई , जित देखौं तित तू। परमेश्वर की भक्ति के लिए साधनाऐं करनी अनिवार्य हैं।

संसार में धर्म के नाम पर लोग प्रायः अधर्म और आडंबर रचते हैं। काजी ढोंग रचकर दिन में पाँच बार नमाज पढ़ता हे , किन्तु अपनी जीभ के स्वाद के लिए अनेक निर्दोष जीवोम की हत्या भी करता केई। एक ओर बन्दिगी और एक ओर जीव हत्या ! अगर यह असत्याचरण का ढोंग नहीं तो और क्या हे ? वस्तुतः काजी और मिलला दोनों ही भ्रम में हैं। वे प्रसन्न होकर इस समय तो जीव – हत्या कर रहे हैं , किन्तु खुदा के सामने अपने कुकर्मों का हिसाब देते समय उन्हें अपनी गर्दन ही झुकानी पड़ेगी।

16.2. सुमिरन का अंग का सरलार्थ

जिसको गीता अध्याय 8 श्लोक 3 में परम अक्षर ब्रह्म कहा है तथा अध्याय 8 के ही श्लोक 8, 9, 10 में परम दिव्य पुरूष तथा श्लोक 20 से 22 में अविनाशी अव्यक्त कहा है। गीता अध्याय 18 श्लोक 61-62, 66 में गीता ज्ञान दाता ने जिस परमेश्वर की शरण में जाने के लिए कहा है, उसी को संत गरीबदास जी ने अविगत राम कहा है।

परमेश्वर की भक्ति के लिए साधनाऐं करनी अनिवार्य हैं:-

राम कहो, प्रभु, स्वामी, अल्लाह, भगवान, ईश, परमात्मा या साहब (साहिब) कहो। ये परमात्मा का बोध कराने वाले नाम हैं।

उदाहरण के लिए:- जैसे तहसीलदार साहब अपने कार्य क्षेत्र का स्वामी है, मालिक है, प्रभु है।

उपायुक्त साहब:– यह अपने जिले में साहब, स्वामी, प्रभु, मालिक है।

आयुक्त साहब:– यह कई जिलों का साहब, स्वामी, प्रभु, मालिक है।

प्रान्त का मंत्री भी साहब है, स्वामी, प्रभु है। मुख्यमंत्री भी साहब (राम, प्रभु, स्वामी) है। केन्द्र सरकार का मंत्री भी साहब (राम, प्रभु, स्वामी) है।

देश के प्रधानमंत्री जी भी साहब (राम, प्रभु, स्वामी) हैं।

देश के राष्ट्रपति जी भी साहब (स्वामी, राम, प्रभु) है।

परंतु इन सबकी अपनी-अपनी सीमाएँ हैं। अपने-अपने कार्यक्षेत्र के सब ही प्रभु हैं, परंतु वास्तव में समर्थ शक्ति राष्ट्रपति जी हैं। उनके पश्चात् प्रधानमंत्री जी समर्थ शक्ति हैं। पूर्ण साहब हैं।

इस **सुमरण के अंग में वाणी नं. 15-16** में कहा है कि मूल कमल में राम है यानि गणेश जी हैं। यह भी स्वामी हैं। राम हैं यानि देव हैं। (स्वाद कमल में राम) ब्रह्मा-सावित्री भी प्रभु हैं। (नाभि कमल में राम) विष्णु-लक्ष्मी भी प्रभु हैं। (हृदय कमल विश्राम) हृदय कमल में शिव-पार्वती भी प्रभु (राम) हैं। (कण्ठ कमल में राम है) देवी दुर्गा भी राम है, मालिक-स्वामी है। (त्रिकुटी कमल में राम) सतगुरू रूप में परमेश्वर त्रिकुटी में विराजमान हैं। वे उस स्थान पर सतगुरू रूप में अपने कार्य के स्वामी (राम-प्रभु) हैं। (संहस कमल दल राम है) काल-निरंजन भी अपने 21 ब्रह्माण्डों का राम (स्वामी-प्रभु) है जो संहस्र कमल दल में अव्यक्त रूप में बैठा है। (सुनि बस्ती सब ठाम) सब स्थानों (लोकों) पर जिसकी सत्ता है, वह सतपुरूष भी राम (स्वामी, प्रभु) है। **सुमरण का अर्थ है परमात्मा के सत मंत्र का जाप करना।**

गरीब, ऐसा निर्मल नाम है, निर्मल करे शरीर। और ज्ञान मण्डलीक हैं, चकवै ज्ञान कबीर॥

भावार्थ:– वेदों, गीता, पुराणों, कुरान, बाईबल आदि का ज्ञान तो मण्डलीक यानि अपनी-अपनी सीमा का है। (क्पअपेपवदंस है) परंतु परमेश्वर कबीर जी द्वारा बताया आध्यात्म सत्य ज्ञान यानि तत्त्वज्ञान (सूक्ष्मवेद) चक्रवर्ती ज्ञान है जिसमें सब ज्ञान का समावेश है। वह कबीर वाणी है।

सुमिरन का अंग का सरलार्थ : परमेश्वर की भक्ति के लिए साधनाऐं करनी अनिवार्य हैं:-

(क) यज्ञ अर्थात् धार्मिक अनुष्ठान:-

यज्ञ कई प्रकार की हैं। जैसे: **1- धर्म यज्ञ:-** धार्मिक भण्डारे करना, धर्मशाला, प्याऊ आदि बनवाना।

2- ध्यान यज्ञ:-

परमेश्वर में अटूट मन लगाना संत मत की ध्यान यज्ञ है। कुछ व्यक्तियों ने इसको अंग्रेजी में मेडिटेशन (Meditation) कहकर इसकी परिभाषा ही बदल डाली। उनका मानना है अर्थात् सिद्धांत है कि एकांत स्थान में बैठकर आँखें बंद करके विचार शुन्य हो जाना मेडिटेशन (Meditation) है। यह योगासन का एक अंग कहा है। वे मानते हैं कि इससे कई शारीरिक उपचार होते हैं। विचार करें यह तो एक व्यायाम है जो दिमाग के लिए की जाती है।

संत मत में जो ध्यान (Meditation) है, वह परमात्मा की प्राप्ति की तड़फ में प्रति क्षण उसी की याद बनी रहे जैसे चिंता (टैंशन=Tension) होती है तो पल-पल मन उसी केन्द्र पर केन्द्रित हो जाता है। कोशिश करने पर भी नहीं हटता। ठीक ऐसे परमात्मा की चिंता जो चिंतन कहा जाता है, संत-मत का ध्यान यज्ञ है।

3- हवन यज्ञ:- इस यज्ञ को कई प्रकार से करते हैं:-

1. जो अपने आपको वेदवित् कहते हैं, वे हवन कुण्ड बनाते हैं या वैसे पृथ्वी को लीपकर शुद्ध करके लकड़ियाँ जलाकर, गाय या भैंस का घी डालकर वेद के कुछ मंत्र बोलते हैं। इस प्रकार हवन यज्ञ करते हैं।
2. कुछ व्यक्ति केवल धूप अगरबत्ती जलाकर ही हवन करते हैं। धूप या अगरबत्ती को घी से बनी मानते हैं।
3. कुछ व्यक्ति कुछ जड़ी-बूटियों को कूटकर घी में मिलाकर अग्नि के अंगारों के ऊपर डालकर हवन यज्ञ करते हैं।

विचार करें:- प्रत्येक साधक को अपने सद्ग्रन्थों में वर्णित भक्ति कर्म ही करने चाहिऐं। श्रीमद् भगवत गीता अध्याय 16 श्लोक 23-24 में भी यही कहा है कि जो साधक शास्त्राविधि को त्यागकर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण करता है, उसको न कोई सुख प्राप्त होता है, न सिद्धि प्राप्त होती है और न ही उसकी गति होती है। (गीता अध्याय 16 श्लोक 23)

इससे तेरे लिए अर्जुन! कर्तव्य अर्थात् जो भक्ति कर्म करने चाहिऐं और अकर्तव्य अर्थात् जो भक्ति कर्म नहीं करने चाहिऐं, उनके लिए शास्त्रा ही प्रमाण हैं। (गीता अध्याय 16 श्लोक 24) भक्ति करने की साधना के सद्ग्रन्थ केवल वेद हैं। वेद दो प्रकार के हैं:

(1) सामान्य वेद:- जो सँख्या में चार हैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद, इन्हीं चारों वेदों का सारांश श्रीमद् भगवत गीता है।

(2) सूक्ष्म वेद:- यह वह वेद है जिसको परमेश्वर स्वयं पृथ्वी पर प्रकट होकर अपने मुख कमल से कवित्व से बोलकर सुनाते हैं। जिसको गीता अध्याय 4 श्लोक 32 तथा 34 के अनुसार तत्वज्ञान भी कहते हैं। वह संपूर्ण आध्यात्मिक ज्ञान है, इसी के विषय में ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 86 मंत्र 26-27, मण्डल 9 सूक्त 82 मंत्र 1-2, ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 20 मंत्र 1, ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 94 मंत्र 1, ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 95 मंत्र 2 और ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 96 मंत्र 17-18 में वर्णन है।

संत-मत:- संत-मत सूक्ष्मवेद पर आधारित है। जिसमें हवन यज्ञ का प्रावधान शुद्ध गाय या भैंस के घी का दीप जलाना है, इसको 'ज्योति यज्ञ' कहा जाता है। इसी का समर्थन ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 86 मंत्र 10 में है कि साधक को ज्योति जलाकर हवन यज्ञ करना चाहिए। सूक्ष्मवेद की अमृतवाणी परमात्मा के श्री मुखकमल से उच्चारित होने के कारण अधिक प्रभाव करती हैं।

हम ज्योति यज्ञ करते हैं तथा साधकों से करवाते हैं। सूक्ष्मवेद की आरती तथा अन्य वाणी बोलते हैं।

4- प्रणाम यज्ञ

यह दो प्रकार की होती है:-

(1) **नमस्कार अर्थात् प्रणाम:**- इसमें दोनों हाथ जोड़कर शीश झुकाकर नमस्कार, प्रणाम या नमस्ते शब्द बोला जाता है जो गणमान्य देवों व मनुष्यों के लिए है। गीता अध्याय 18 श्लोक 65 तथा अध्याय 9 श्लोक 14 तथा 34 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि मुझे नमस्कार कर।

(2) **डण्डवत प्रणाम:**- इसमें जमीन पर मुख के बल लेटकर हाथों को सिर के आगे सीधा जोड़कर दोनों पैरों को भी जोड़कर डण्डे की तरह सीधा रहकर प्रणाम या नमस्कार शब्द बोला जाता है। इसे डण्डवत प्रणाम या दण्डवत प्रणाम कहते हैं। यह केवल परम संत तथा पूर्ण परमात्मा को ही करना होता है जिसका प्रमाण गीता ज्ञान दाता ने गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में दिया है, कहा है कि जिस संत के पास सूक्ष्मवेद अर्थात् तत्वज्ञान है, उसको दण्डवत प्रणाम करो।

5- ज्ञान यज्ञ

सद्ग्रन्थों का पठन-पाठन तथा संतों के विचार सुनना अर्थात् सत्संग सुनना-सुनाना ज्ञान यज्ञ कहलाता है।

(ख) भक्ति की साधना में 'नाम स्मरण' साधना भी है।

अब जो सरलार्थ किया जाएगा, यह नाम स्मरण साधना के विषय में है। सूक्ष्मवेद की कुछ अमृतवाणियों का सरलार्थ यहाँ किया जाएगा जो नित्य पाठ में लिखी हैं। सुमिरण (स्मरण) के अंग से

वाणी:- कबीर, सुमिरन मारग सहज का, सतगुरू दिया बताय।
श्वांस-उश्वांस जो सुमिरता, एक दिन मिल सी आय। ।(1)
कबीर, माला श्वांस-उश्वांस की, फेरैंगे निजदास।
चौरासी भरमै नहीं, कटै कर्म की फाँस ।।(2)

परमेश्वर कबीर जी ने स्वंय पृथ्वी पर प्रकट होकर कलयुग के प्रथम चरण में यह सूक्ष्मवेद (तत्वज्ञान) अपने मुख कमल से बोलकर लोकोक्तियों, साखियों, दोहों तथा चौपाईयों के रूप में बोलकर सुनाया। जिस कारण से परमेश्वर कबीर को प्रसिद्ध कवि की उपाधि भी प्राप्त है। भक्ति की साधना में नाम स्मरण करने का सही तथा सहज(आसान) मार्ग बताया है जो श्वांस-उश्वांस से किया जाता है। श्वांस जो बाहर आता है, उश्वांस जो वापिस शरीर में जाता है। ऐसे सतनाम का स्मरण करने को कहा है, यही वास्तविक साधना है जिसको तत्वदर्शी संत ही जानता है या स्वयं परमेश्वर जानते हैं।

16.3. सुमिरन कौ अंग – परिचय

निर्गुण संतों को भक्ति – पद्धति में आराध्य के नाम – स्मरण को बहुत महत्व दिया है। प्रस्तुतव अंग में कबीर ने नाम – स्मरण की महिमा बताते हुए कहा है कि केवल नाम – समरण ही एक ऐसा आधार है , जिसके द्वारा मनुष्य मुक्ति लाभ कर सकता है। सारे वेदों और शास्त्रों का सर भी यही है। राम का नाम ही संसार में सबसे श्रेष्ठ और सबसे ग्राह्य वस्तु है। समसर अनेक प्रकार के दुखों से भरा हुआ है , राम का स्मरण ही इसका एकमात्र उपचार है , अर्थात

राम का स्मरण सारतत्व है , इसके अतिरिक्त और सब बटें संकट पूर्ण और जी के जंजाल हैं। इसीलिए मनुष्य को राम के राम के नाम का ही चिंतन करना चाहिए। इसको छोड़कर अन्य बातों का चिन्तन मनुष्य को सांसरिक दलदल में फाँसा देता है , जहाँ पर मृत्यु आसानी से उसे कठोर पाशा में आबद्ध कर लेती है। यदि पाँचों इंद्रियों और छठे मन अर्थात इंद्रियों और मन से राम का स्मरण किया जाए तो फिर राम को प्राप्त कर लेना अत्यंत सुलभ हो जाता है।

नाम –स्मरण में ही वह जादू है जो व्यक्ति के अंह का जड़ से नाश कर देता है। जब मनुष्य का अहं नष्ट हो जाता है तो फिर उसे प्रभु के सान्निध्य में कठिनाई नहीं आती , अर्थात वह तुरन्त उसके रूप में मिलकर तदाकार हो जाता है। फिर उसे सर्वत्र भगवान का साक्षात्कार होने लगता है , वह चरों ओर अपने लाल की ही लाली देखता तथा अलौकिक आनंद प्राप्त करता है। इसीलिए कबीर ने मनुष्य को चेतावनी देते हुए कहा है कि हे मनुष्य ! जब तक तू जीवित है , तब तक मनोयोग पूर्वक राम के नाम का स्मरण करता रहा। यदि तू इस अज्ञानवस्था में पड़कर राम के नाम को विस्तृत कर देगा तो अंत समय तुझे पछताना पड़ेगा। अतः इस अज्ञानवस्था में पड़े रहना ठीक नहीं है क्योंकि जब मन में अज्ञान का वास है , तब तक उसमें प्रभु की प्रति उत्पन्न नहीं हो सकती और जिस हृदय में प्रभु – प्रीति का आविर्भाव नहीं हुआ , जिस मनुष्य ने अपनी जिह्वा से कभी राम का स्नारण नहीं किया , उसका इस संसार में आना एकदम बेकार है। वह तो उस अतिथि की भाँति है जो किसी शून्य गृह में आता है और फिर निराशा होकर लौट जाता है।

भगवान अत्यंत दयालु हैं। वे अपने भक्तों के असंख्य पापों को उसी क्षण नष्ट कर देते हैं , जब वे उसकी शरण में आ जाते हैं। हरि के विविध रूप हैं। जो उसको जिस दृष्ट से देखता है , उसे उसी प्रकार का उसका रूप दिखाई देता है और उसी से वह लाभान्वित होता है। जो मनुष्य राम को छोड़कर अन्य सांसरिक बंधनों में बाँध जाता है , उसकी स्थिति वेश्या – पुत्र के समान होती है जो किसी को भी अपना बाप कहने का अधिकारी नहीं होता। इसीलिए व्यक्ति स्वयं भी राम का स्मरण करे और दूसरों को भी उसके लिए प्रेरित करे। यदि मनुष्य अपने मन को इसी प्रकार नाम – स्मरन्मे रमा ले , जिस प्रकार उसका मन माया के अकर्शनों में लिन रहता है , तो वह सूर्य – मण्डल को भेदकर तुरन्त ब्रह्म लोक में निवास करने का अधिकारी बन जाता है। वास्तव में , हरि का नाम – स्मरण उस पानी – भरे घड़े के समान है जो सांसरिक अकर्शनों में जलते हुए मन की अग्नि को बुझाकर उसे शाश्वत शांति प्रदान करता है।

16.4. सुमिरन का अंग के दोहे

राम भजै गुरु शब्द ले , तो पलटै मन देह।
दरिया छाना क्यों रहै , भू पर बूठा मेंह (1)

महाराजश्री ने राम भजन में " गुरु " शब्द को प्रधान कारण बताया है। गुरु शब्द को ग्रहण करने से अंतःकरण में परमात्मा का प्राकट्य होता है।वर्षा होने पर वह छिपी हुई नहीं रहती है। दूर-दराज वर्षा होने पर भी उसकी सुगंध हम तक पहुंच जाती है। इसी प्रकार गुरु शब्द लेने वाले व्यक्ति का जीवन छिपा हुआ नहीं रहता है, ऐसा भगवत नाम का प्रभाव है। राम!

दरिया सुमिरै राम को, करम भरम सब खोय ।
पूरा गुरु सिर पर तपै, विघ्न न व्यापे कोय (2)

महाराजश्री कह रहे हैं कि राम नाम का जाप करने से कर्म और भ्रम सब नष्ट हो जाते हैं । आध्यात्मिक जीवन रूपी फसल को काम , क्रोध और लोभ रूपी जीवजंतु नष्ट न करे, इसके लिए सतगुरु रूपी बाड़ की आवश्यकता होती है । इस प्रकार पूरा गुरु मिलने पर ही विघ्न नहीं आते हैं । राम!

कबीर, सुमिरन सार है, और सकल जंजाल।
आदि अन्त मध्य सोधिया, दूजा देख्या ख्याल।। (3)

सरलार्थ:- परमेश्वर कबीर जी ने बताया है कि भक्ति के लिए की जाने वाली साधनाओं में नाम का स्मरण सार है अर्थात् निष्कर्ष है। भावार्थ है कि जैसे कई साधक केवल सद्ग्रन्थों का पठन-पाठन अधिक करते हैं जो ज्ञान यज्ञ है। कुछ धार्मिक भण्डारे-भोजन कराने को महत्व देते हैं। कई धर्मशाला, प्याऊ आदि के निर्माण में अधिक समय देते हैं। कई हवन करने में अधिक समय लगाते हैं। परंतु इन सर्व साधनाओं में सबसे अधिक समय नाम स्मरण में लगाना चाहिए। नाम स्मरण न करके अन्य क्रियाओं को करना तो जंजाल बताया है अर्थात् व्यर्थ बताया है। आदि से तथा वर्तमान के अंत तक सब शोध करके देख लिया, नाम का स्मरण करना ही लाभदायक है। (यही प्रमाण यजुर्वेद अध्याय 40 मंत्र 15 में भी है, कहा है कि:-

दरिया सुमिरै राम को, करम भरम सब चूर ।
निस तारा सहजै मिटै , जो उगै निर्मल सूर (4)

महाराजश्री कहते हैं कि ईश्वर का स्मरण करने से कर्म और भ्रम का चूरा हो जाता है अर्थात ये जलकर नष्ट हो जाते हैं । सूर्य उदय होने के पश्चात रात्रि, तारा, नक्षत्र, तथा ग्रह सब नष्ट हो जाते हैं । परिवार के सुख-दुख रूपी द्वंद्व ही तारे हैं तथा हमारे अंतःकरण में छाया अज्ञान ही निशा है जो ईश्वर की कृपा से स्वतः ही नष्ट हो जाते हैं ।राम!

कबीर, लूट सकै तो लूट ले, राम नाम की लूट।
फिर पीछै पछताएगा, प्राण जांहिंगे छूट।। (5)

सरलार्थ:- हे मानव! तू भौतिक धन को संग्रह करने के लिए बेसब्रा होकर जनता को लूट रहा है। कोई रिश्वत लेकर, कोई चोरी करके, कोई मिलावट तथा हेराफेरी करके धन लूटने में लगा है, यह साथ चलना नहीं। जब मृत्यु होगी और परमात्मा से रूबरू होने का समय आएगा, तब तुझे याद आएगा कि मुझे मानव शरीर तो भक्ति करने के लिए मिला था, वह तो किया नहीं। जो सारे जीवन म भौतिक धन जोड़ा, वह सब यहीं रह गया। अब घर का रहा न घाट का। तब तुझे पाश्चाताप होगा। इसलिए कुछ समय धंधे (सांसारिक कार्य) से निकालकर राम के नाम की लूट करले, यह वास्तविक लूट है, यदि लूट सकता है तो भक्ति लूट ले।

झल उठी झोली जली खपरा फूटिम-फूट l
जोगी था सो रमि रहा आसन रही विभूति ॥6

अहंकार का विसर्जन और ज्ञान का आगमन लगभग साथ-साथ होता है. ज्ञान असत्य को उड़ा देता है. इसके बाद जो बचता है वह अभेद है. अभेद की यह दशा प्राप्त करने के बाद भेद बुद्धि व्यर्थ लगने लगती है. अभेद की दशा में पहुंचे हुए कबीर का मन उनके साथ नहीं लगता जो भेद बुद्धि में रमे हुए हैं. कबीर आंखन देखी कह रहे हैं. आंखन देखी का अर्थ ज्ञान की आंख है, इसीलिए कागज की लेखी से उनकी अनबन है. ज्ञान की आंख से देखने पर पूरा दृश्य ही बदल जाता है. कागज की लेखी ने उलझा कर रखा. यह मामला कोई आज का नहीं है- **'जुगन जुगन समझावत हारा, कहा न मानत कोई रे'।**

दरिया सूरज ऊगिया, चहूँ दिस भया उजास।

नाम प्रकाशै देह में, तौ सकल भरम का नाश (7)

आचार्यश्री कहते हैं कि सूर्य उदय होता है तो चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश हो जाता है तथा अंधेरा नष्ट हो जाता है। उसी प्रकार शरीर के अंदर नाम प्रकाशित होता है तो सारे भ्रमों का नाश हो जाता है। राम!

आन धरम दीपक जिसा , भरमत होय बिनास।

दरिया दीपक क्या करै, आगे रवि परकास (8)

आचार्यश्री ने राम नाम को सूर्य के समान तथा भगवत नाम को छोड़कर अन्य सभी साधन को दीपक बताया है। इसलिए महाराजश्री कहते हैं कि राम को हृदय में प्रकट करके सूर्य उदय कर लो।राम!

दरिया सुमिरै राम को, दूजी आस निवार।

एक आस लागा रहै , तो कदे न आवै हार (9)

महाराजश्री कह रहे हैं कि यदि तू राम का स्मरण करता है तो दूसरी सभी आशाओं का परित्याग कर दे। केवल एक रामजी महाराज का ही आसरा होना चाहिए। दूसरी आशा ही साधक के लिए बहुत ही बाधक है। राम!

दरिया नरतन पाय कर, कीया चाहै काज।

राव रंक दोनों तरैं , जो बैठे नाम जहाज (10)

आचार्यश्री कह रहे हैं कि मनुष्य शरीर प्राप्त करके वही कार्य करने चाहिए, जो मनुष्य को शोभा देते हैं। राम-नाम रूप जहाज के ऊपर राजा-रंक,गरीब-अमीर,बालक-वृध्द, स्त्री-पुरुष कोई भी बैठता है तो वह अवश्य पार होता है। राम!

नाम जहाज बैठे नहीं, आन करै सिर भार।

दरिया निश्चय बहैंगे , चौरासी की धार (11)

महाराजश्री कहते हैं कि यह संसार समुद्र के समान है। जिस प्रकार सागर को पार करने के लिए जहाज का सहारा लेना पड़ता है, उसी प्रकार जन्म-मरण से छुटकारा पाने के लिए राम नाम रूपी जहाज का आश्रय लेना अति आवश्यक है, अन्यथा चौरासी की धार में बहना पड़ेगा। राम!

जन्म अकारथ नाम बिन, भावै जान अजान।

जन्म मरन जम काल की, मिटै न खैंचा तान (12)

महाराजश्री कहते हैं कि कलियुग में मनुष्य यदि नामजाप नहीं करते हैं तो उनका मनुष्य जन्म बेकार है। यदि इस अवसर

का तिरस्कार कर दिया तो महान अनर्थ हो सकता है तथा नरक और चौरासी का बंधन लग जायेगा। आचार्यश्री आगे कहते हैं कि आप काम करते हुए रसना के द्वारा नामजाप करते रहो तो आपका कल्याण निश्चित है। राम!

मुसलमान हिंदू कहा, षट् दरसन रंक राव।
जन दरिया निज नाम बिन, सब पर जम का डाव (13)

आचार्यश्री कहते हैं कि यदि भगवान की भक्ति नहीं करता है तो चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान, राजा हो या रंक , सभी को काल की परिधि में आना पड़ेगा। यह काल सब को खा रहा है।

स्वर्ग मृत्यु पाताल कहा, कहा तीन लोक विस्तार।
जन दरिया निज नाम बिन, सभी काल को चार (14)

महाराजश्री कहते हैं कि स्वर्गलोक, पाताललोक अथवा मृत्युलोक, तीन लोकों में किसी भी स्थान पर यदि व्यक्ति का निवास स्थान है तो भी वह काल से नहीं बच सकता। प्रत्येक व्यक्ति राम के नाम के बिना काल का ही चारा है। इसलिए अपना काम शीघ्रातिशीघ्र कर लेना चाहिए।

दरिया नर तन पाय कर , किया न राम उचार।
बोझ उतारन आइया , सो ले चले सिर भार (15)

आचार्यश्री कहते हैं कि यह मनुष्य शरीर हमें पापों का नाश करने के लिए ही मिला है। पापों से निवृत्त होकर जीवन को पुण्यमय बनाकर परमात्व स्वरूप को प्राप्त करने के लिए ही हम इस मृत्युलोक में आये हैं। परन्तु यदि "राम "शब्द से प्रेम नहीं किया तो पापों का बोझ और भी ज्यादा हो जाएगा। राम!

जो कोई साधु गृहस्थी में, माहिं राम भरपूर।
दरिया कह उस दास की , मैं चरनन की धूर (16)

महाराजश्री कहते हैं कि आप गृहस्थ में भी साधु बन सकते हैं। जो साधना करता है , भगवान का भजन करता है तथा जिसका चित्त भक्ति में सदैव स्थिर रहता है वही वास्तव में साधु है। जो कोई गृहस्थी में भी साधु है तथा जिसके हृदय में परमात्मा भरपूर हैं, मैं उनके चरणों की धूलि हूँ। राम!

कबीर, राम नाम को सुमरतां, अधम तरे अपार।
अजामेल गणिका स्वपच, सदना सबरी नारी ।। (17)

सरलार्थ:- राम नाम अर्थात् परमात्मा के सत्यनाम का स्मरण करने से बहुत से अधम (नीच कर्मी प्राणी) भी भव सागर से पार हो गए। उदाहरण दिया है कि अजामेल नामक शराबी-कबाबी दुराचारी व्यक्ति सन्तों की शरण में आकर सुधरकर भक्ति करके अपना कल्याण करा गया। इसी प्रकार गणिका (वैश्या) को ज्ञान हुआ, वह भी सुधर गई और सत्यनाम का स्मरण करके पार हो गई। एक सदना कसाई था, सुधरकर नाम स्मरण करके पार हुआ। इसी प्रकार भीलनी जाति की शबरी नारी भी शुद्र होते हुए भी सत्यनाम का स्मरण करके अपना कल्याण करा गई। इस प्रकार सत्यनाम का स्मरण करके अनेकों बुरे व्यक्ति भी सुधरकर पार हो गए तो अन्य व्यक्ति भी सत्यनाम का स्मरण करके अपना कल्याण आसानी से करा सकते हैं।

राम सुमिर रामहिं मिला, सो मेरे सिर का मौर।
दरिया भेष बिचारिये, खैर मैर की ठौर (18)

आचार्यश्री कहते हैं कि नाम स्मरण करके जो राम के अंदर मिल गया है वह मेरे सिर का मौर है। जो भेषधारी साधु नामजाप नहीं करता है वह खैर मैर की ठौर है। भगवान के हृदय में उनके लिए कोई स्थान नहीं है। राम!

दरिया सुमिरै राम को, कोट कर्म की हान।
जम और काल का भय मिटै , ना काहू की कान (19)

आचार्यश्री कहते हैं कि परमात्मा का नाम जाप करने से करोड़ों कर्म क्षय हो जाते हैं जिससे आप कर्मों से स्वतंत्र हो जाओगे तथा आपका जीवन पूर्णतः कर्मातीत हो जाएगा , फिर किसी का भय नहीं रहेगा। राम!

दरिया सुमिरै राम को, आतम को आधार।
काया काची काँच सी , कंचन होत न बार (20)

आचार्यश्री कहते हैं कि भगवान का सुमिरन ही आत्मा का आधार है तथा नामजाप करने से यह शरीर पवित्र हो जाता है। हमारी यह काया काँच के समान है परन्तु भगवत नाम जाप से इसे कंचन बनने में समय नहीं लगता है। महाराजश्री कहते हैं कि राम-राम करने से काया कंचन होती है। राम!

दरिया राम संभालते, काया कंचन सार।
आन धर्म और भ्रम सब, डाला सिर से भार (21)

आचार्यश्री कहते हैं कि राम का सुमिरन करने से आन धर्म और भ्रम रूपी भार मेरे सिर से उतर गया। परमात्मा को छोड़कर दूसरे सभी धर्म आन धर्म कहलाते हैं। इसलिए सर्वोपरि परमात्मा का ही हाथ पकड़ना चाहिए। राम!

दरिया सुमिरै राम को, सहज तिमिर का नाश।
घट भीतर होय चाँदना , परम ज्योति प्रकाश (22)

आचार्यश्री कह रहे हैं कि राम नाम सुमिरन करने से हृदय में व्याप्त अज्ञान रूपी अंधकार का नाश हो जाता है तथा परमात्मा रूपी प्रकाश का प्राकट्य होता है। इस प्रकार से परमात्मा तो हमारे हृदय में ही विराजमान है , केवल उनकी खोज करनी है। जो केवल नाम जाप से ही संभव है। राम!

सतगुरु संग न संचरिया, राम नाम उर नांहि।
ते घट मरघट सारिखा , भूत बसै ता मांहि (23)

महाराजश्री कह रहे हैं कि जिसने सतगुरु के संग संचरण नहीं किया है , वह किसी काम का नहीं है। जिसने सतगुरु के सिद्धांत के साथ संचरण नहीं किया है तथा जिसके हृदय में राम का नाम नहीं है , वह श्मशान के समान है , उसके हृदय में केवल भूत ही निवास करते हैं। अतः सतगुरु के साथ रहते हुए उनके स्वरूप को प्राप्त करना चाहिए। राम!

राम नाम ध्याया नहीं , हुआ बहुत अकाज।
दरिया काया नगर मे, पंच भूत का राज (24)

महाराजश्री कहते हैं कि राम नाम जाप नहीं किया तो बहुत अकाज हो गया अर्थात कोई काम सिद्ध नहीं हुआ। यदि इस शरीर में राम का राज नहीं है तो इस पर पांच भूत अपना राज कर लेंगे। अतः मनुष्य को शीघ्र राम नाम जाप में लग

जाना चाहिए ताकि अपना उद्धार हो जाय। राम !

पंच भूत के राज में, सब जग लागा धुंध।
जन दरिया सतगुरु बिना, मिल रहा अंधो अंध (25)

आचार्यश्री कहते हैं कि आज सारी दुनिया पांच भूतों के वश में है तथा पंच भूतों के राज में पूरी दुनिया धुंध के समान लग रही है।अतः श्रीदरियावजी महाराज कहते हैं कि मनुष्य सतगुरु के बिना पांच भूतों के वशीभूत होकर केवल अंधे से अंधे मिल रहे हैं अर्थात कोई सही मार्ग नहीं मिल रहा है। राम!

सब जग अंधा राम बिन , सूझे न काज अकाज।
राव रंक अंधा सबै , अंधों ही का राज (26)

महाराजश्री कहते हैं कि जिनके अंतःकरण में राम नाम नहीं , वे अंधे ही है।क्योंकि भगवत भक्ति के अभाव में कुछ भी नहीं दिखता है। कार्य -अकार्य , सुख-दुख, हानि-लाभ क्या है। इसीलिए आचार्यश्री कहते हैं कि राजा अंधा है तो प्रजा भी अंधी होगी। अंधे का तात्पर्य विवेक , विचार एवं ज्ञान से अंधा होना है।राम!

दरिया सब जग आंधरा , सूझे सो बेकाम।
सूझा तब ही जानिए, जा को दरसे आतम राम (27)

आचार्यश्री दरियावजी महाराज कहते हैं कि सारा जग अंधा है तथा जिसे दिखता है वह भी किसी काम का नहीं है। क्योंकि जो नहीं दीख रहा है , उसे वह देखता है तथा जो दीख रहा है , उसे वह देख नहीं पाता। अपनी आत्मा में जो राम को देखता है , उसे ही वास्तव में सूझता है।राम!

मन बच काया समेट कर, सुमिरै आतम राम।
दरिया नेड़ा नीपजै , जाय बसै निज धाम (28)

आचार्यश्री कहते हैं कि साधक अपनी सारी इन्द्रियों और मन को समेट कर पूरी शक्ति परमात्मा के सुमिरन में लगा देता है क्योंकि जो तत्व इस जगत के अंदर सर्वत्र प्रकाशवान है वह परमात्मा है जो राम के नाम से पुकारा जाता है। अतः रात-दिन नाम जाप करना चाहिए । राम!

सकल ग्रंथ का अर्थ है, सकल बात की बात।
दरिया सुमिरन राम का, कर लीजे दिन रात (29)

महाराजश्री कहते हैं कि चारों वेद ढूँढने के पश्चात अंत में तो राम राम ही करना पड़ेगा तो इससे अच्छा है कि पहले से ही राम नाम से प्रीति कर लें। अतः श्री दरियावजी महाराज भी बार बार रात दिन नाम स्मरण करने के लिए प्रेरणा दे रहें है। राम!

ध्रुव लोक ध्रुव राम कहे, कहे पताला शेष,
दरिया परगट नाम बिन, कहु कौन आयो देख (30)

महाराजश्री कहते हैं कि ध्रुव लोक में ध्रुवजी नाम स्मरण करते हैं तथा पाताल में शेष भगवान राम राम करते हैं।

दरियावजी कहते हैं कि महापुरूषों की कीर्ति संसार में छाई हुई है परन्तु भगवन्नाम के बिना उनका अनुभव कोई भी प्राप्त नहीं कर सकता। ध्यान करने से मनुष्य में महान परिवर्तन आता है कि साधक का जीवन ही परिवर्तित हो जाता है। राम!

16.4. सांच कौ अंग – परिचय

समस्त संसार विषय – वासनाओं में पड़कर संसार और जीवन की सत्यता को भूलकर असत्य वस्तुओं को ही भ्रमवश सत्य मान बैठा है । इस अंग में कबीर ने बताया हे कि वास्तव में सती क्या है । वे कहते हैं कि कर्मों का योग सत्य और अनिवार्य है । जो व्यक्ति जैसे कार्य करेगा , उसे वैसे ही फल भोगने पड़ेंगे। जिस प्रकार व्यक्ति यदि किसी साहूकार से उधार लेता है और समय पर उसका धन नहीं लौटाता तो उसकी बड़ी दुर्दशा होती है , इसी प्रकार जो व्यक्ति इस जीवन में भगवान की भक्ति नहीं करता तो उसे अन्त में पछताना पड़ता है । यदि मनुष्य का मन सच्चा है और सत्य भावना से ही उसने सारे कार्य किए हैं तो भगवान के समक्ष अपने कार्यों का हिसाब देते समय उसे अत्यंत आनन्द का अनुभव होगा , चित्रगुप्त के बहीखाते में उसका हिसाब ठीक और सही निकलेगा। यदि उसने सत्य भावना से प्रेरित होकर कार्य नहीं किये हैं तो जब उसके कार्यों का हिसाब देखा जायेगा तो उसे बहुत ही लज्जित होना पड़ेगा , क्योंकि तब उसके कुकर्मों का वार –यार नहीं होगा।

यदि मन शुद्ध नहीं है तो हज और काबे की यात्रा भी केवल एक प्रकार का आडंबर है। आडंबरों से मनुष्य को कभी सच्ची शांति नही मिला करती।

मुसलमानों की भाँति हिन्दू भी धर्म के नाम पर कम मिथ्याचरण नहीं कराते। एक ओर तो वे अपने आराध्य की पूजा करते हैं और दूसरी ओर आनंद पूर्वक बैठकर मांस तथा मदिरा का सेवन करते हैं और शक्त निरीह जीओं को बलिदेवी पर चढ़ाते हैं और फिर प्रसाद – रूप में उसे ग्रहण करके अपनी जिह्वा की तृप्ति करते हैं। इस प्रकार के ढ्रोंग और असत्याचरण मनुष्य को पाटन की ओर ले जाते हैं।

अन्त में कबीर ने बताया है कि इन मिथ्याचरणों को छोड़कर सत्याचारण करना ही मुक्ति और ब्रह्म प्राप्ति का एकमात्र साधन है। सत्य तो यह है कि जिन लोगों ने यह जान लिया है कि इस सृष्टि में ब्रह्म ही सब कुछ है , वे कभी भी मिथ्या आचरण नहीं करते और मोह तथा माया से दूर रहते हैं।

16.5.सांच कौ अंग के दोहे

कबीर, कहता हूँ कह जात हूँ, सुनता है सब कोय।
सिमरन से भला होएगा, नातरै भला न होय ।। (1)

सरलार्थ:- कबीर परमेश्वर जी ने स्पष्ट किया है कि भक्ति की साधना में नाम स्मरण सर्वोत्तम है। जैसे कुछ साधक ज्ञान यज्ञ अर्थात् सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय या सत्संग करना, कीर्तन-जागरण करना अधिक पसंद करते हैं। कुछ

साधक हवन यज्ञ को अधिक महत्व देते हैं। कुछ धर्म यज्ञ को ही करके मोक्ष मानते हैं। परमेश्वर कबीर जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि:-

जप-तप सयंग साधना, सब स्मरण के मांहीं ।
कबीर जाने रामजन, सुमिरन सम कछु नाहीं ।।

सरलार्थ : पहले कर दिया है। कबीर जी के कहने का तात्पर्य है कि यज्ञ भी करना है, परंतु नाम बिना यज्ञ व्यर्थ है।

उदाहरण के लिए - जैसे किसान गेहूँ बीजता है। उसके पश्चात् खाद भी डालता है, सिंचाई भी करता है। यदि किसान खेत में बीज डाले नहीं और खाद-पानी डालता रहे तो उसको गेहूँ प्राप्त नहीं हो सकते। अब गेहूँ के बीज को तो नाम मानो और खाद-पानी को यज्ञ। यज्ञों की जानकारी पूर्व में बता दी है। (धर्म यज्ञ, ध्यान यज्ञ, ज्ञान यज्ञ, हवन यज्ञ और प्रणाम यज्ञ) इसलिए उपरोक्त वाणी सँख्या 1 में कहा है कि नाम स्मरण से भला होगा अन्यथा लाभ नहीं होगा ।

साँच कहूं तो मारिहैं, झूठे जग पतियाइ ।
यह जग काली कूकरी, जो छेड़ै तो खाय ॥2॥

भावार्थ / अर्थ – सच-सच कह देता हूँ तो लोग मारने दौड़ेंगे, दुनिया तो झूठ पर ही विश्वास करती है । लगता है, दुनिया जैसे काली कुतिया है, इसे छेड़ दिया, तो यह काट खायेगी ।

यहु सब झूठी बंदिगी, बरियाँ पंच निवाज ।
सांचै मारे झूठ पढ़ि, काजी करै अकाज ॥3॥

भावार्थ / अर्थ – काजी भाई ! तेरी पाँच बार की यह नमाज झूठी बन्दगी है, झूठी पढ़-पढ़कर तुम सत्य का गला घोंट रहे हो , और इससे दुनिया की और अपनी भी हानि कर रहे हो । [क्यों नहीं पाक दिल से सच्ची बन्दगी करते हो ?]

सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप ।
जिस हिरदे में सांच है, ता हिरदै हरि आप ॥4॥

भावार्थ / अर्थ – सत्य की तुलना में दूसरा कोई तप नहीं, और झूठ के बराबर दूसरा पाप नहीं । जिसके हृदय में सत्य रम गया, वहाँ हरि का वास तो सदा रहेगा ही ।

प्रेम-प्रीति का चोलना, पहिरि कबीरा नाच ।
तन-मन तापर वारहूँ, जो कोइ बोलै सांच ॥5॥

भावार्थ / अर्थ – प्रेम और प्रीति का ढीला-ढाला कुर्ता पहनकर कबीर मस्ती में नाच रहा है, और उसपर तन और मन की न्यौछावर कर रहा है, जो दिल से सदा सच ही बोलता है ।

काजी मुल्लां भ्रंमियां, चल्या दुनीं कै साथ ।
दिल थैं दीन बिसारिया, करद लई जब हाथ ॥6॥

भावार्थ / अर्थ – ये काजी और मुल्ले तभी दीन के रास्ते से भटक गये और दुनियादारों के साथ-साथ चलने लगे, जब कि इन्होंने जिबह करने के लिए हाथ में छुरी पकड़ ली दीन के नाम पर।

साईं सेती चोरियां, चोरां सेती गुझ ।
जाणैंगा रे जीवणा, मार पड़ैगी तुझ ॥7॥

भावार्थ / अर्थ – वाह ! क्या कहने हैं, साईं से तो तू चोरी और दुराव करता है और दोस्ती कर ली है चोरों के साथ ! जब उस दरबार में तुझपर मार पड़ेगी, तभी तू असलियत को समझ सकेगा ।

खूब खांड है खीचड़ी, माहि पड्याँ टुक लूण ।
पेड़ा रोटी खाइ करि, गल कटावे कूण ॥8॥

भावार्थ / अर्थ – क्या ही बढ़िया स्वाद है मेरी इस खिचड़ी का !जरा-सा, बस, नमक डाल लिया है पेड़े और चुपड़ी रोटियाँ खा-खाकर कौन अपना गला कटाये ?

'कबीर लेखा देणा सोहरा.....पला न पकड़े कोई।।9॥

हे मनुष्य! कर्मों का लेखा-जोखा या हिसाब-किताब देना बहुत ही आसान है। जिसने जीवन में अच्छे कर्म किए होते हैं उसे किसी से भी डर नहीं लगता है। यदि मनुष्य का दिल सच्चा है तो तब उसे भगवान् के दरबार में कोई भी वस्त्र नहीं पकड़ सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि कोई भी दरबार में उस का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता है। कर्मों की अच्छाई ही उसे हमेशा बचाती है ।

16.7.सारांश

संत गरीबदास जी ने अपनी अमृतवाणी रूपी वन में प्रत्येक प्रकार के पेड़-पौधे, जड़ी-बूटियां, फूल, फलदार वृक्ष, मेवा की लता आदि-आदि उगाए हैं। इसका मुख्य कारण यह रहा है कि जो मूल ज्ञान है, उसको गुप्त रखना था । यह परमात्मा कबीर जी का आदेश था। इसी कारण से संत गरीबदास जी ने अनेकों वाणियाँ कही हैं। मन की आदत है कि यदि कम वाणी हैं तो उनको कण्ठस्थ करके अरूचि करता है। ये ढ़ेर सारी अमृतवाणी लिखवाकर संत गरीबदास जी ने मन को व्यस्त तथा रूचि बनाए रखने का मंत्र बताया है। मन पढ़ता रहता है या सुनता रहता है, आत्मा आनन्द का अनुभव करती है ।

यदि साधक को परमात्मा पर विश्वास ही नहीं है तो नाम-सुमरण का कोई लाभ नहीं। उसके मानव जीवन को काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार रूपी पाँच चोर मुस (चुरा) रहे हैं। इन पाँचों की पाँच-पाँच प्रकृति यानि 25 ये तथा रजगुण के आधीन होकर कोठी-बंगले बनाने में, कभी कार-गाड़ी खरीदने में जीवन नष्ट कर देता है। सतगुण के प्रभाव से पहले तो किसी पर दया करके बिना सोचे-समझे लाखों रूपये खर्च कर देता है। फिर उसमें त्रुटि देखकर तमोगुण के प्रभाव से झगड़ा कर लेता है। इस प्रकार तीन गुणों के प्रभाव से मानव जीवन नष्ट हो जाता है। यदि तत्त्वदर्शी संत से ज्ञान सुनकर विश्वास के साथ नाम का जाप करे तो जीवन सफल हो जाता है ।

कबीर, राम नाम को सुमरतां, अधम तरे अपार।
अजामेल गणिका स्वपच, सदना सबरी नारी।।

सरलार्थ :- राम नाम अर्थात् परमात्मा के सत्यनाम का स्मरण करने से बहुत से अधम (नीच कर्मी प्राणी) भी भव सागर से पार हो गए। उदाहरण दिया है कि अजामेल नामक शराबी-कबाबी दुराचारी व्यक्ति सन्तों की शरण में आकर सुधरकर भक्ति करके अपना कल्याण करा गया। इसी प्रकार गणिका (वैश्या) को ज्ञान हुआ, वह भी सुधर गई और सत्यनाम का स्मरण करके पार हो गई। एक सदना कसाई था, सुधरकर नाम स्मरण करके पार हुआ। इसी प्रकार भीलनी जाति की शबरी नारी भी शुद्र होते हुए भी सत्यनाम का स्मरण करके अपना कल्याण करा गई। इस प्रकार सत्यनाम का स्मरण करके अनेकों बुरे व्यक्ति भी सुधरकर पार हो गए तो अन्य व्यक्ति भी सत्यनाम का स्मरण करके अपना कल्याण आसानी से करा सकते हैं।

16.8. बोध प्रश्न

1. सुमिरन कौ अंग परिचय के बरेमे लिखिए।
2. सुमिरन का अंग का सरलार्थ में परमेश्वर की भक्ति के लिए साधनाऐं लिखिए।
3. सांच कौ अंग – परिचय दीजिये।
4. कबीरदास सुमिरन और साँच कौ अंग का सारांश लिखिए।
5. साँच कौ अंग में दोहे को भावार्थ क्या बताया ?

16.9. सहायक ग्रन्थ

1. निर्गुण काव्य : प्रेरणा और प्रवृत्ति – डॉ. रामपाण्डेय , सद्भाव निरंजन , प्रकाशन , दिल्ली।

2. संतों की सांस्कृतिक संसुती – डॉ. राज रतन पाण्डेय , उपकार प्रकाशन , दिल्ली।

3. कबीर मीमांसा – डॉ . रामचन्द्र तिवारी – लोक भारती प्रकाशन , इलाहाबाद।

4. कालजयी कबीर – संपादक – हर महेंद्र सिंह गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी , अमृतसर।

5. कबीर साहित्य की परख – परशुराम चतुर्वेदी , भारती भण्डार , इलाहाबाद।

6. कबीर – हजारी प्रसाद द्विवेदी राजकमल प्रकाशन , दिल्ली।

7. हिन्दी काव्य में निर्गुण संप्रदाय – पीताम्बर दत्त बडथ्वाल अवध पब्लिशिंग हाउस , लखनऊ।

—

डॉ. यम .मंजुला

17. ग्यान बिरह, निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग

17.0. उद्देश्य

कबीर दास के साखी ग्रंथ के ग्यान विरह कौ अंग में ज्ञान के बारे में बताया गया है। परमात्मा को बाने के लिए मनुष्य को किस प्रकार से जीवन को बिताना है और परमात्मा में लीन होने के लिए किस मार्ग को अपनाना है आदि के बारे में बताया गया है। निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग में आत्मा और परमात्मा के बारे में बताया गया है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आत्म परमात्मा का संबंध, आत्मा को परमात्मा में विलीन होने के विषय के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

रूपरेखा

17.1.प्रस्तावना

17.2. ग्यान बिरह कौ अंग -अंग-परिचय

17.3. ग्यान बिरह कौ अंग-दोहे

17.4.साखी में ज्ञान विरह

17.5. निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग -अंग-परिचय

17.6. निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग-दोहे

17.7. नारी के संदर्भ में विचार

17.8. सारांश

17.9. बोध प्रश्न

17.10.अध्यन ग्रन्थ सूची

17.1. प्रस्तावना

कबीर हिंदी साहित्य के अध्यात्म हैं। उनको पढ़ना, सुनना, गुनना मनुष्यता को औदात्य प्रदान करता है. वे किसी के नहीं हैं और इसीलिए सबके हैं। गांधी की तरह, मनुष्य जब धरती पर आता है वह इस पूरी धरती का नागिरक होता है, धीरे-धीरे उसकी नागरिकता सिमटती जाती है। वह किसी जगह, किसी भाषा और किन्हीं लोगों में ही होकर रह जाता है। यही उसकी नश्वरता है. वह इन सीमाओं को तोड़कर जब अपना विस्तार करता है कबीर हो जाता है. बुद्ध हो जाता है। सदानंद शाही कबीर पर वर्षों से लिख बोल रहें हैं. यह आत्मज्ञान ही सत्य है. यह आत्मज्ञान हमें पूरी तरह बदल देता है- मुक्त कर देता है. यह मुक्ति हमें विश्व नागरिक बनाती , कबीर हमें विश्व नागरिक बनाते हैं8 और गालिब की तरह बे दरो दीवार का घर बनाने की राह खोलते हैं।

कबीर ने भक्तिपरक दोहों में ईश्वर के प्रति **विरह**-वेदना को प्रकट किया है। वे कहते हैं कि अपने ईश्वर से बिछड़ने पर जीव (आत्मा) को कहीं भी सुख की प्राप्ति नहीं होती है। न तो उसे दिन में चैन पड़ता है और न ही रात को आराम; न उसे धूप में सुख मिलता है और न ही छाँव में। "बासुरि सुख, नाँ रैणि सुख, ना सुख सुपिनै माहिं।

पतिव्रता उस स्त्री को कहते हैं जो अपने पति के अतिरिक्त अन्य किसी पुरूष को पति भाव से न चाहे। यदि कोई सुंदर-सुडोल, धनी भी क्यों न हो, उसके प्रति मलीन विचार न आऐं। भले ही कोई देवता भी आ खड़ा हो। उसको देव रूप में देखे न कि पति भाव यानि प्रेमी भाव न बनाए। सत्कार सबका करें, परंतु व्याभिचार न करे, वह पतिव्रता स्त्री कही जाती है।

इस पतिव्रता के अंग में आत्मा का पति पारब्रह्म है यानि सब ब्रह्मों (प्रभुओं) से पार जो पूर्ण ब्रह्म है, वह संतों की भाषा में पारब्रह्म है जिसे गीता अध्याय 8 श्लोक 3 में परम अक्षर ब्रह्म कहा है तथा अध्याय 8 के ही श्लोक 8ए 9ए 10 में जिसकी भक्ति करने को कहा है। गीता अध्याय 18 श्लोक 61,62 तथा 66 में जिसकी शरण में जाने को कहा है। उस परम अक्षर ब्रह्म में पतिव्रता की तरह भाव रखकर भक्ति करे। अन्य किसी भी प्रभु को ईष्ट रूप में न पूजे। सम्मान सबका करे तो वह भक्त आत्मा पतिव्रता कही जाती है।

17.2. ग्यान बिरह कौ अंग - परिचय

निर्गुण संतों में ज्ञान की महत्ता को स्वीकार किया गया है । उनकी मान्यता है कि जब तक जीव अज्ञान के अंधकार में पडा रहेगा ; तब तक वह प्रभु से साक्षात्कार नहीं कर सकता । इसलिए इन अंग में कबीर ने ज्ञान और विरह के समन्वय का वर्णन किया है । वे कहते हैं कि मैं ने जीवात्मा रूपी दीपक में ज्ञान – ज्योति प्रज्वलित करके उसमे स्नेह का तेल डाल लिया है । इस प्रकार की ज्योति ही विषय – वासनाओं के पतंगों को जलाने में समर्थ होती है ; अर्थात मन के विकार तभी दूर हो सकते हैं , जब ज्ञान और विरह का समुचित समन्वय हो । मनुष्य की मृत्यु के लिए हिंसात्मक शास्त्रों की आवश्यकता नहीं , क्यों कि इस प्रकार कि मृत्यु से व्यक्ति को कुछ भी प्राप्त हो जाती है । यह प्रेम की आग बड़ी विलक्षण होती है , क्योंकि इससे धुओं नहीं निकलता , किन्तु यक अंदर ही अंदर हृदय को जलाती रहती है । इसकी वेदना को वही व्यक्ति जान सकता है , जो इस आग में जल रहा हो , केवल दूसरों के कहने से इसका वास्तविक ज्ञान नहीं हो सकता ।

योग्याग्नि के प्रज्वलित होने पर शरीर की झोली जलाकर क्षारहों जाती है , खोपड़ी का खप्पर टूट-टूट कर टुकड़े –टुकड़े हो जाता है और जब काया का बंधन हो जाता है , तब ब्रह्म की प्राप्त हो जाना बहुत ही आसान होता है । यही अग्नि विषय विकारों को नष्ट करने में समर्थ होती है और जब विषय – वासनाएँ नष्ट हो जाति हैं तब मन में अनेक प्रकार के उदात्त पवन बैराग्य , विवेक , करुणा आदि आविर्भूत हो जाते हैं । यही अग्नि तभी प्रज्वलित होती है , जब शिष्य पर गुरु की कृपा होती हैं । इस आग में जलकर ही मनुष्य ब्रह्म को प्राप्त करके उसके साथ तदाकार हो जाता है ; अर्थात वह जीवनमुक्त हो जाता है ।

17.3. ग्यान बिरह कौ अंग-दोहे

कागज की लेखी और आंखिन देखी का द्वंद्व युगों युगों से चल रहा है. यह कोई आज का झगड़ा नहीं है. कागज की लेखी से जीवन सत्य रंगा हुआ है. रंगी का विहंगी फिरना इसी का प्रमाण है. यह रंगा हुआ होना ही समस्या की जड़ है। सतगुरु की निर्मल धारा में काया को धो लें, 'तब ही वैसा होई रे' यानी सतगुरु जैसा होना या शुद्ध बुद्ध होना है। कबीर कागज की लेखी पर संदेह करना सिखाते हैं. कागज की लेखी जिसने युगों युगों से भ्रम में डाल रखा है, झगड़े में डाल रखा है, अपने और पराये में उलझा रखा है, उस पर संदेह और आखिन देखी पर भरोसा करना सिखाते हैं।

दीपक पावक आंणिया, तेल भी आंण्या संग।
तीन्यूं मिलि करि जोइया, (तब) उड़ि उड़ि पड़ैं पतंग॥1॥

भावार्थ : कबीरदास खाते हैं कि जैसे दीपक में तेल और एजी मिल जाते हैं तो प्रकाश होने लगता है। उसी प्रकार जीवात्मा रूपी दीपक , ज्ञान रूपी अग्नि और स्नेह रूपी तेल को मिलकर जो ज्योति प्रज्ज्वलित होगी , उसमे सांसारिकता रूपी वासना का पतंगा जलकर नष्ट हो जायेगा।

मार्‌या है जे मरेगा, बिन सर थोथी भालि।
पड्‌या पुकारे ब्रिछ तरि, आजि मरै कै काल्हि॥2॥

भावार्थ : जिसे परमात्मा ने मारा है वह बिना तीर और भाले के स्वतः ही मर जाता है। अर्थात परमात्मा के प्रेम रूपी बाण वह संसार रूपी वृक्ष के नीचे कराहने लगता है। इस पीड़ा में वह जल्दी जीवन मिक्त होने कि कामना करता है।

हिरदा भीतरि दौ बलै, धूंवां प्रगट न होइ।
जाके लागी सो लखे, के जिहि लाई सोइ॥3॥

भावार्थ : सामान्य अग्नि से धूंवां प्रकट होता है लेकिन हृदय में विरह की जो अग्नि जल रही है , उससे धुआ भी नहीं होता। इसे दो ही जन सकते हैं या तो जिसके हृदय में आग लगी हो या जिसने आग लगाई हो।

झल उठा झोली जली, खपरा फूटिम फूटि।
जोगी था सो रमि गया, आसणि रही बिभूत॥4॥

भावार्थ : साधक की तपस्या के चरम का वर्णन कराते हुये कबीर कहते हैं कि ज्ञान अग्नि प्रज्वलित होने एसआर शरीर रूपी झोली जल गई और अज्ञान रूपी खपरा टूट – फुट गया। इस प्रकार आत्मा की परम ब्रह्म से मुलाक़ात हुई और आसन पर केवेल राख रह गई।

अगनि जू लागि नीर में, कंदू जलिया झारि।
उतर दषिण के पंडिता, रहे विचारि बिचारि॥5॥

भावार्थ : माया रूपी नीर में ज्ञान रूपी अग्नि के प्रदीप्त होने से पाप रूपी कीचड़ जल कर समाप्त हो गया। इस उत्तर से दक्षिण के तमाम ज्ञानी विचार कराते रह गए लेकिन यह रहस्य नहीं समझ पाये।

दौं लागी साइर जल्या, पंषी बैठे आइ।
दाधी देह न पालवै सतगुर गया लगाइ॥6॥

भावार्थ : ज्ञान रूपी अग्नि के उदय से वासना रूपी सागर में आग लग जीआई जिसे देखने के लिए वैराग्य रूपी पक्षी आ गए। साधक स्वकरता है कि ज्ञान अग्नि को गुरु ने प्रकट किया है इसलिए अब जले हुये शरीर को पुनः पल्लवित नहीं होने दूँगा। भाव यह है कि आत्मा को बार – बार शरीर धारण से मिक्त करा लूँगा।

गुर दाधा चेल्या जल्या, बिरहा लागी आगि।
तिणका बपुड़ा ऊबर्‌या, गलि पूरे के लागि॥7॥

भावार्थ : यह द्वारा प्रदत्त ज्ञान अग्नि द्वारा शिष्य का अज्ञान जल गया जिससे अन्तर्मन में संसार से वैरागी रूपी विरह अग्नि जागृत हो गई। शिष्य की तिनके के समान आत्मा ब्रह्म के साथ लगकर पूर्णतः ब्रह्माकार हो गई।

आहेड़ी दौ लाइया, मृग पुकारै रोइ।
जा बन में क्रीला करी, दाझत है बन सोइ॥8॥

भावार्थ : सांसरिक वासना के शिकारी रूपी गुरु ने इस वासनयुक्त संसार रूपी वन में ज्ञानी रूपी अग्नि लगा दी है। इससे अज्ञानी जीव रिपी मृग हाहाकर कार रहे हैं कि जिस वन में हमने सांसरिक सुख भोगा वह जलकर नष्ट हो रहा है। भाव यह है कि गुरु के ज्ञान से विषय वासना रूपी संसार जल लार नष्ट रहा है और शिष्य की और आत्मा का कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो रहा है।

पाणी मांहे प्रजली, भई अप्रबल आगि।
बहती सलिता रहि गई, मेछ रहे जल त्यागि॥9॥

भावार्थ : संसार रूपी जल में ज्ञान रूपी अग्नि इतनी तीव्रता से फैल गई कि उससे सारे माया नष्ट – ब्रष्ट हो गए। माया रूपी सरिता का प्रभाव रुक जाने से मचलियों ने जल त्याग करके मुक्ति प्राप्त की।

समंदर लागी आगि, नदियां जलि कोइला भई।
देखि कबीरा जागि, मंछी रूषां चढ़ि गई ॥10॥

टिप्पणी: ख-में इसके आगे यह दोहा है-
बिरहा कहै कबीर कौं तू जनि छाँड़े मोहि।
पारब्रह्म के तेज मैं, तहाँ ले राखौं तोहि॥

17.4.साखी में ज्ञान विरह

साखी आंखी ज्ञान की समुझ देखि मन माहि।

बिनु साखी संसार का झगरा छूटत नांहि ॥ 2

कबीर की यह साखी प्राय: उद्धृत की जाती है. इसे उद्धृत करते समय हमारा ध्यान यह समझने समझाने पर होता है कि कबीर के दोहे साक्षी की तरह जीवन के सत्य को देखने की दृष्टि देते हैं. या कि कबीर की साखियों (कबीर के दोहों को साखी कहा जाता है.) में जीवन सत्य को साक्षी भाव से देखा गया है। साखी आँखी ज्ञान की. साखी में क्या है? ज्ञान की आंख से देखा हुआ सत्य है.यानी साखियों में निबद्ध जो बातें हैं, वे ज्ञान की आंख से देखी गई हैं. कबीर हमें ताईद करते हैं कि उनके इस कथन को अच्छी तरह देख समझ लिया जाए. पूछ लिया जाए, परख लिया जाये. यह समझना और बूझना मन के भीतर ही होना है. कबीर दोहे के पहले चरण में एक बात कहते हैं –

'साखायां ज्ञान की आँख से देखे गए सत्य का अंकन हैं'.

खंडन-मंडन के लिए बदनाम कबीर अपनी बात एक झटके में मान लेने के लिए नहीं कहते. ज़ोर देकर या आग्रह पूर्वक अपनी बात नहीं मनवाते. पहले वे अपनी बात कहते हैं. फिर दूसरे चरण में उस पर अच्छी तरह मनन करके, भीतर-भीतर समझने और बूझने के लिए कहते हैं. कबीर कह रहे हैं कि मैं कह रहा हूँ सिर्फ इसलिए मत मान लीजिए. पहले समझ लीजिए, अच्छी तरह विचार कर लीजिए फिर मानिए.

दोहे के तीसरे और चौथे चरण में कबीर एक दृष्टांत देकर अपनी बात साफ करते हैं-

'बिन साखी संसार का झगरा छूटत नाहि'.

यह कहकर कबीर समझने में हमारी मदद करते हैं. साक्षी या गवाह प्रत्यक्षदर्शी होता है. प्रत्यक्षदर्शी कि गवाही के बिना संसार का झगरा नहीं छूटता. अगर झगड़े का निपटारा करना है तो उसके लिए साक्षी की जरूरत होती है. यहां सांसारिक झगड़े के प्रकरण को महज सादृश्य विधान के रूप में प्रस्तुत किया गया है। लेकिन यहाँ सांसरिक झगड़ा महज दृष्टांतके रूप में प्रस्तुत किया गया है. असल झगड़ा तो कोई और है जिसे निपटाना जरूरी है। जिसके लिए ज्ञान की आंख से देखने की जरूरत है. कोई और झगड़ा है जो रोज-रोज के झगड़े से भिन्न और कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण है. कबीर का मानना है कि इस झगड़े के निपटारे के लिए साखियों की जरूरत पड़ेगी।

यह विचार करना बेहद जरूरी है कि आखिर यह कौन सा झगड़ा है जिसे कबीर छुड़ाना चाहते हैं. झगड़े को छुड़ाने के लिए साक्षी की जरूरत है. कबीर की साखियां इसी के निमित्त लिखी गई हैं। जाहिर है यह कोई खेत और मेड़ का झगड़ा नहीं है. फिर वह क्या है? इसके उत्तर पर हम थोड़ी देर में विचार करते हैं। यहीं पर हम थोड़ा रुक कर साखी की विषय वस्तु पर नजर डाल लें तो बेहतर होगा. सब जानते हैं कि कबीर ने अपने दोहों को साखी कहा है. कबीर के दोहे या साखियों को विषय के अनुसार क्रम से संकलित किया गया है।

इस क्रम विभाजन को अंग कहा गया है. इन अंगों के नाम

'गुरुदेव को अंग', विरह को अंग, ज्ञान विरह को अंग, परचा को अंग, लै को अंग, चितावनी को अंग, मन को अंग, सुषिम मारग को अंग, माया को अंग, कथनी और करनी को अंग, सांच को अंग, साधु - असाधु को अंग, काल को अंग, से लेकर कस्तूरिया मृग, साषीभूत को अंग, अभिहड को अंग से लेकर कुल 59 अंग हैं।

यहाँ यह सूची दोहराने का अभिप्राय सिर्फ इतना है कि इन विभिन्न अंगों के नाम से कबीर की साखियों की विषय वस्तु का अंदाज हो जाता है. कहने की जरूरत नहीं कि साखी की विषय वस्तु है- **'सत्य का अभिज्ञान'**, **'सत्य की खोज'**, **'सत्य को जानने की उत्कंठा'**. फिर झगड़ा क्या है?

पहला सवाल तो यही है कि सत्य एक है कि अनेक. आमतौर पर यह धारणा है कि सत्य एक है. हमारा सामान्य बोध भी यही कहता है कि सत्य एक है. लेकिन सामान्य बोध हमेशा सही नहीं होता। सत्य को लेकर कई सारे मत मतांतर हैं। झगड़ा इस बात का भी हो सकता है कि सत्य एक है कि अनेक। सब अपने अपने सत्य को

सत्य मानते हैं। अनेक धर्म हैं, अनेक धर्म ग्रंथ हैं, अनेक समूह और संप्रदाय हैं, जो अपने-अपने सत्य का जयकारा लगा रहे हैं। बात इतनी ही होती कि अपने सत्य का जयकारा लगा रहे हैं, तो भी ठीक था। कई बार ज़ोर दूसरे के सत्य को गलत साबित करने पर होता है. झगड़े का प्रमुख बिंदु यह भी है।

इसका निपटारा कैसे हो ? कौन सा सत्य सत्य है और कौन सा सत्य असत्य. इसका निपटारा करने के लिए ज्ञान की आंख चाहिए। कबीरदास कहते हैं **'आंखी ज्ञान की'**। यानि सामान्य आंख से जो चीजें दिखाई पड़ रही हैं, जो हमारी ज्ञानेंद्रियां हैं जो अनुभव करती हैं वे ही पर्याप्त नहीं है। कबीरदास कहते हैं ज्ञान की आंख से देखें। यह ज्ञान की आंख क्या है? क्या यह ज्ञानेंद्रियों से फर्क कोई चीज है? क्या यह अंतःप्रज्ञा जैसी कोई चीज है? और क्या यह कोई ऐसी चीज है जो इंद्रियों से परे देख पाती है, जैसे बहुत से सवाल खड़े होते हैं। कबीर का जोर प्रत्यक्ष अनुभव पर है। **'बिन साखी संसार का झगड़ा छूटत नाहिं'**। यह साक्षी होना ही महत्वपूर्ण है। साक्षी भाव कैसे उपलब्ध करें ? ज्ञान की आँख कैसे हासिल करें? यह साक्षी भाव जरूरी साक्षी भाव जरूरी है। साक्षी भाव यानि एक खास तरह की तटस्थता। यह तटस्थता कैसे हासिल करें? कबीरदास ने एक रास्ता सुझाया है –

कबिरा यह घर प्रेम का खाला का घर नाहिं।

सीस उतारै हाथ सौं,तब पैसे घर माहि॥ 3

'यह घर प्रेम का' में कौन सा घर है? क्या यह जान का घर है? ज्ञान की खोज का घर है! कबीरदास जिसे प्रेम का घर बता रहे हैं. कई बार ऐसा लगता है कि कबीरदास के यहां ज्ञान का घर और प्रेम का घर आपस में घुल मिल गया है. ज्ञान की आंधी जब सब कुछ को ध्वस्त कर देती है आँधी थम जाती है तब जो पानी बरसता है वह तो प्रेम का ही पानी है. जिसमें कबीर सराबोर होते हैं। ज्ञान और प्रेम एक दूसरे में घुलमिल जाते हैं. ज्ञान और प्रेम मिलकर एकमेक हो जाते हैं4. ज्ञान और प्रेम का एक होना कबीर का अभीष्ट है। ज्ञान और प्रेम से लैस होकर व्यक्ति काल से भी होड़ ले सकता है5, काल को चुनौती दे सकता है और उस पर विजय भी प्राप्त कर सकता है। यह ज्ञान और प्रेम की एकता आसान नहीं है. इसीलिए चेताते रहते हैं. पहले वे सकारात्मक ढंग से बताते हैं कि यह प्रेम का घर है, इसमें अदब से जाइए. हमारी आदत है कि हम चीजों को टेकेन फॉर ग्रांटेड ले लेते हैं. हल्के में ले लेते हैं. इसीलिए कबीर आगाह करते हैं कि यह खाला (मौसी) का घर नहीं है. जैसे खाला का घर खुला हुआ है, जब चाहे जैसे चाहे आ जा सकते हैं, प्रेम के घर में वैसे नहीं आ जा सकते. इस घर में आने जाने का अनुशासन है. ज्ञान के घर में प्रवेश करने की विधि है. उसका भी अनुशासन है।

'सीस उतारे भुई धरे तब पइसे घर माहि'. सीस उतार कर उसे जमीन पर रखने का अर्थ है- 'अहंकार का विसर्जन'. अहंकार का विसर्जन ज्ञान और प्रेम दोनों की प्राप्ति के लिए आवश्यक है। अहंकार इतनी जगह घेर लेता है कि बाकी किसी चीज के लिए जगह ही नहीं बचती. अहंकार भी कई तरह के होते हैं- जाति का, कुल का, ज्ञान का, शक्ति का, कभी सत्ता का तो कभी सुंदरता का अहंकार. कभी-कभी पूर्व धारणाओं का अहंकार होता है, जो चीजों को सही परिप्रेक्ष्य में देखने ही नहीं देता. कभी भेद बुद्धि सही ढंग से देखने में बाधा पहुंचाती है। यह भेद बुद्धि

भी अहंकार है. जितने तरह की धारणाएं हैं, जितने तरह की भेद बुद्धि है, जितने तरह के संचित ज्ञान हैं सबका विसर्जन ही अहंकार का विसर्जन है. अहंकार के पूर्ण विसर्जन के बाद हम जो बचते हैं– शुद्ध बुद्ध बच जाते हैं। ज्ञान की आंधी के रूपक में जो भी चीजें उड़ जाती हैं वे अहंकार के ही अलग अलग रूप हैं । इसके बाद जो बचता है वह 'विभूति' है, तत्व है, या कहें कि सत्य है-

झल उठी झोली जली खपरा फूटिम-फूट l

जोगी था सो रमि रहा आसन रही विभूति ॥

अहंकार का विसर्जन और ज्ञान का आगमन लगभग साथ-साथ होता है। ज्ञान असत्य को उड़ा देता है। इसके बाद जो बचता है वह अभेद है. अभेद की यह दशा प्राप्त करने के बाद भेद बुद्धि व्यर्थ लगने लगती है. अभेद की दशा में पहुंचे हुए कबीर का मन उनके साथ नहीं लगता जो भेद बुद्धि में रमे हुए हैं। कबीर आंखन देखी कह रहे हैं. आंखन देखी का अर्थ ज्ञान की आंख है, इसीलिए कागज की लेखी से उनकी अनबन है। ज्ञान की आंख से देखने पर पूरा दृश्य ही बदल जाता है. कागज की लेखी ने उलझा कर रखा. यह मामला कोई आज का नहीं है- **'जुगन जुगन समझावत हारा, कहा न मानत कोई रे'।**

कागज की लेखी और आंखिन देखी का द्वंद्व युगों युगों से चल रहा है. यह कोई आज का झगड़ा नहीं है. कागज की लेखी से जीवन सत्य रंगा हुआ है। रंगी का विहंगी फिरना इसी का प्रमाण है। यह रंगा हुआ होना ही समस्या की जड़ है। सतगुरु की निर्मल धारा में काया को धो लें, 'तब ही वैसा होई रे' यानी सतगुरु जैसा होना या शुद्ध बुद्ध होना है. कबीर कागज की लेखी पर संदेह करना सिखाते हैं। कागज की लेखी जिसने युगों युगों से भ्रम में डाल रखा है, झगड़े में डाल रखा है, अपने और पराये में उलझा रखा है, उस पर संदेह और आखिन देखी पर भरोसा करना सिखाते हैं।

17.5. निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग-परिचय

कबीर ने आत्मा को नारी के रूप में चित्रित किया और परमात्मा को पति के रूप में प्रस्तुत अंग में आत्मा उस पतिव्रता नारी के समान चित्रित की गई है , जो निष्काम भाव से अपने पति से मिलने के लिए अत्यन्त आतुर है और उसके दर्शन – प्राप्ति के लिए विविध उपायों में संलग्न है।

जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री केवल अपने पति को छोड़ कर और किसी अन्य पुरुष की और देखती भी नहीं , इसी प्रकार कबीर की आत्मा परमात्मा को संबोधित करते हुए कहती है कि हे अनंत गुणवान प्रियतम ! मेरी प्रीति केवल तुम से है। यदि मैं और किसी से हंसूंगी तथा बोलूँगी तो इससे मेरा प्रतिव्रत धर्म कलंकित हो जाएगा। उस आत्मा का अपने प्रियतम के प्रति इतना अनन्य भाव है कि वह चाहती है कि उसका प्रियतम जब उसकी आँखों में आ जाएगा तो वह अपनी आँखों को मूँद लेगी ताकि ण तो उसका प्रियतम फिर अन्यत्र जा सके और ण कोई उसे देख सके। आत्मा का स्वतः कोई रूप नहीं होता। वह तो परतमा का ही एक अंश होती है , इसीलिए कबीर ने कहा है मेरा मुझ

पर कुछ नहीं है। मिझ पर जो कुछ भी है , वह सब प्रियतम का है। अतः मिझे उसी का उस पर सर्वस्व न्यौछावर कर देना चाहिए। वह आत्मा रिपी निष्कामी पतिव्रता नारी अपने प्रियतम के प्रति इतना अधिक उत्कट अनुराग रखती है कि अपनी आँखों में काजल भी नहीं लगती , क्योंकि जिन आँखों में उसका प्रियतम बसा हिय है , वहाँ ण तो कागज लगाना उपयुक्त ही है और ण एक स्थान पर दो वस्तुएँ ठहर सकती हैं। इसलिए अपनी माँग में केवल सिंदूर व्ही भरती है। जिस प्रकार समुद्र में स्थित सीप केवल स्वाति नक्षत्र की बूँद के लिए ही तरसती रहती है और अहर्निश उसी का स्मरण करती रहती है , उसी प्रकार वह पतिव्रता भी सर्वथा अपने पति की स्मृति में ही रत रहती है। संसार के अन्य अकर्शनों तथा विषयों से उसका कोई लगाव नहीं होता।

17.6. निहकर्मी पतिव्रता का अंग-दोहे

मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर।

तेरा तुझकौं सौंपता, क्या लागै है मोर ॥1॥

भावार्थ / अर्थ – मेरे साईं, मुझमें मेरा तो कुछ भी नहीं,जो कुछ भी है, वह सब तेरा ही है। तब,तेरी ही वस्तु तुझे सौंपते मेरा क्या लगता है, क्या आपत्ति हो सकती है मुझे ?

`कबीर' रेख स्यंदूर की, काजल दिया न जाइ।

नैनूं रमैया रमि रह्या, दूजा कहाँ समाइ ॥2॥

भावार्थ / अर्थ – कबीर कहते हैं -आँखों में काजल कैसे लगाया जाय, जबकि उनमें सिन्दूर की जैसी रेख उभर आयी है ?मेरा रमैया नैनों में रम गया है, उनमें अब किसी और को बसा लेने की ठौर नहीं रही। [सिन्दूर की रेख से आशय है विरह-वेदना से रोते-रोते आँखें लाल हो गयी हैं।]

`कबीर' एक न जाण्यां, तो बहु जांण्या क्या होइ।

एक तैं सब होत है, सब तैं एक न होइ ॥3॥

भावार्थ / अर्थ – कबीर कहते हैं – यदि उस एक को न जाना, तो इन बहुतों को जानने से क्या हुआ ! क्योंकि एक का ही तो यह सारा पसारा है, अनेक से एक थोड़े ही बना है।

जबलग भगति सकामता, तबलग निर्फल सेव।

कहै `कबीर' वै क्यूं मिलैं, निहकामी निज देव ॥4॥

भावार्थ / अर्थ – भक्ति जबतक सकाम है, भगवान की सारी सेवा तबतक निष्फल ही है। निष्कामी देव से सकामी साधक की भेंट कैसे हो सकती है ?

`कबीर' कलिजुग आइ करि, कीये बहुत जो मीत।

जिन दिलबाँध्या एक सूं, ते सुखु सोवै निचींत ॥5॥

भावार्थ / अर्थ – कबीर कहते हैं — कलियुग में आकर हमने बहुतों को मित्र बना लिया, क्योंकि (नकली) मित्रों की कोई कमी नहीं। पर जिन्होंने अपने दिल को एक से ही बाँध लिया, वे ही निश्चिन्त सुख की नींद सो सकते हैं।

`कबीर' कूता राम का, मुतिया मेरा नाउं।

गले राम की जेवड़ी, जित कैंचे तित जाउं ॥6॥

भावार्थ / अर्थ – कबीर कहते हैं–मैं तो राम का कुत्ता हूँ, और नाम मेरा मुतिया (मोती) है गले में राम की जंजीर पड़ी हुई है; उधर ही चला जाता हूँ जिधर वह ले जाता है। [प्रेम के ऐसे बंधन में मौज-ही-मौज है।]

पतिबरता मैली भली, काली, कुचिल, कुरूप।

पतिबरता के रूप पर, बारौं कोटि स्वरूप ॥7॥

भावार्थ / अर्थ – पतिव्रता मैली ही अच्छी, काली मैली-फटी साड़ी पहने हुए और कुरूप।तो भी उसके रूप पर मैं करोंड़ों सुन्दरियों को न्यौछावर कर देता हूँ।

पतिबरता मैली भली, गले काँच को पोत।

सब सखियन में यों दिपै , ज्यों रवि ससि की जोत ॥8॥

भावार्थ / अर्थ – पतिव्रता मैली ही अच्छी, जिसने सुहाग के नाम पर काँच के कुछ गुरिये पहन रखे हैं। फिर भी अपनी सखी-सहेलियों के बीच वह ऐसी दिप रही है, जैसे आकाश में सूर्य और चन्द्र की ज्योति जगमगा रही हो।

17.7. नारी के संदर्भ में विचार

शास्त्रों का सार है " यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता: यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्रफला:" जहाँ नारी का सम्मान होता है वहां देवता रहते हैं और जहाँ पर नारी का अपमान होता है वहां तमाम तरीके से पूजा पाठ के बाद भी देवता निवास नहीं करते हैं। लेकिन निराशा का विषय है की जो कबीर समाज में व्याप्त धार्मिक कर्मकांड, हिन्दू मुस्लिम वैमनष्य, पोंगा पंडितवाद, भेदभाव और कुरीतियों का विरोध करते हुए एक समाज सुधारक की भूमिका में नजर आते हैं वो स्त्री के बारे में निष्पक्ष दृष्टिकोण नहीं रख पाए। शायद इसका कारन उस समय के समाज के हालात रहे होंगे जो पुरुष प्रधान था। मध्यकालीन कवियों ने नारी को दोयम दर्जे में रख कर उसका अस्तित्व पुरुष की सहभागी, सहचारिणी सहगामिनी तक ही सीमित कर रखा था। नारी को कभी भी स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में चित्रित नहीं किया गया। कबीर के विचार हर युग और काल में प्रासंगिक रहे हैं। वर्तमान समय के विश्लेषण से ज्ञात होता है की छह सौ साल बाद भी कबीर के विचार प्रासंगिक हैं। भले ही साम्प्रदायिकता, धार्मिक कर्मकांड, और समाज में व्याप्त भेदभाव हो, कबीर के विचार प्रासंगिक हैं। मुझे लगता है की जहाँ भी कबीर के नारी सम्बन्धी विचार तात्कालिक पुरुष प्रधान समाज की देन है और कबीर का नारी मूल्यांकन निष्पक्ष नहीं है।

नारी के प्रति कबीर के विचार मूलतः दो बातों पर आधारित हैं। कबीर के अनुसार दो तरह की नारियां होती हैं। एक नारी तो साधना में बाधा नहीं पहुँचाती है और पतिव्रता होती है और दूसरी नारी जो साधना में अवरोध पैदा करती है उसे कबीर ने तिरस्कृत किया है, जिससे ज्ञात होता है की मूलतः कबीर नारी विरोधी नहीं थे। कबीर का मानना था की उपासना और ध्यान में नारी का त्याग आवश्यक है। कबीर ने ना तो हर जगह नारी की स्तुति की है और ना ही हर जगह भर्त्सना ही। कबीर के नारी संबधी विचारों में एक बात और निकल कर आती है वो है, पुरुष प्रधान समाज का अहम्। ये अहम् ही है जो नारी को मायावी, पुरुषों को जाल में फांसने वाली और ठगिनी ठहराती है। ऐसा प्रतीत होता है की कबीर जैसे प्रगतिशील, कर्मकांड और पाखंड विरोधी, दलित चेतना सबंधित क्रांतिकारी विचारक ने भी स्त्री के मूल्यांकन में चूक की है।

स्त्री के मात्र कामिनी कहना उसके शरीर की व्याख्या हो सकती है लेकिन स्त्री भी एक स्वंतंत्र व्यक्तित्व होता है, जिसे मध्यकालीन कवियों ने नजरअंदाज किया है। धर्म के साथ नारी का क्या विरोध है, समझ से परे है लेकिन ये तो सत्य है की जो भी व्यक्ति धर्म से जुड़ा है वो थोड़ा बहुत नारी के विरोध में तो होता ही है। क्या नारी सिर्फ पुरुष की सेवा के लिए है ? क्या उसे हरदम घर में घुट कर रहना चाहिए ? ये कुछ ऐसे विषय हैं जिन पर पुरुष प्रधान भक्तिकालीन कवियों ने मूल्यांकन में चूक की है। ये भोगवादी दृष्टिकोण ही है जहाँ नारी को सर्पिणी घोषित किया गया हैं। भारतीय समाज के पितृप्रधान होने के कारन ही कबीर के विचारों में नारी विरोध के तत्व दिखाई देते हैं।

कागज की लेखी पुराना पड़ गया सत्य है, जो कागज की लेखी से चिपका हुआ है वह जीवन सत्य को नहीं जानता. इसीलिए कबीर की उसके साथ अनबन है. इस अनबन के बावजूद कबीर उसे उसी हाल पर छोड़ नहीं देते. उससे निरंतर संवाद करते हैं. क्योंकि कबीर का ज्ञान प्रेम के साथ चलता है, प्रेम को साथ लेकर चलता है. वे जानते हैं कि जिससे अनबन है वह भी भिन्न नहीं है, अन्य नहीं है. कबीर भिन्नता और अन्यता की धारणा से ऊपर उठ गए हैं और हमें भी ऊपर उठने की सलाह देते हैं. वे ज्ञान की आंख से देखने का प्रस्ताव करते हुए आत्मज्ञान तक ले जाते हैं. यह आत्मज्ञान ही सत्य है. यहां पहुंचकर व्यक्ति **'अप्प दीपो भव'** हो जाता है । ज्ञान की आंख से देखने का प्रस्ताव करते हुए आत्मज्ञान तक ले जाते हैं ।

17.8. सारांश

संतमत मे ब्रह्म की कल्पना बडी स्पृहणीय है। वह एक, अद्वैत, निर्गुण, निर्विकार, निर्विक्लप, अनादि, अनन्त, अजन्म,अजात, अमर, अनाम और अभेद है। वह मगुया और नोगुंया से परे है। वह अनिवांचनीय है , वह अलख और निरजन है। संसार के कया-कया मे वह परिव्याप्त है। व्रहा की अनुभूति सद्ग्रुरू की कृया से ही होती है। संतमत में माया श्रिगुयात्माक है वह साधना मे वाधक है। माया दो प्रकार की मानी गई है , एक विधा और दूसरा अविधा। अविधा माया से ग्रमित प्रायी सासारिक भोग विलासो मे अनुरतृ रहता है। और विधा सृषटि की सृजनात्मक शक्ति है,ईश्वर प्राप्ति मे सहायक है। अविधा माया 'खाड' के समान मधुर है ।

प्रियतम जहां भी मिल जाएं , वही स्वर्ग बन जाता है । कबीर की आत्मा भी इसीलिए कहती है कि मुझे मिकती का कोई लोभ नहीं है । यदि नरक में भी उसे मेरे प्रियतम का दर्शन हो जाये तो मैं नरक की यातनाएँ सहन करने के लिए भी हर्ष से तैयार हूँ । ब्रह्म –ज्ञान सबसे बड़ा और उत्तम ज्ञान है । जिसने उस ब्रह्म को ज्ञान लिया है , फिर उसके लिए कुछ भी जानने केलिए शेष नहीं रह जाता और यदि उसका ज्ञान नहीं हुआ है तो संसार के सारे ज्ञान व्यर्थ हैं । जब तक भक्ति में निष्काम भाव बना रहता है , तभी तक भक्ति श्रेष्ठ ओर उत्तम है और उसी के द्वारा प्रियतम की प्राप्ति हो सकती है ।

जगत - सन्त कान्य मे जगत का जो स्वरूप विकसित हुआ है वह क्षया भंगुरता से परिपूया है। यह जीवन नश्वर है और संसार अस्थिर हैं। संसार के क्या-क्या मे वृहा व्यपत है और संसार उस वृहा मे पूयांतथा परिव्याप्त है। कबीर ने स्वतः कहा है -- खालिक खलक खलक मैं खालिक सव घट राहों समाई | लोक जानि ना भूलो भाई।। स्न्त साहित्य मे इसी जगत की प्रस्थापना हुई है। स्न्त मत के प्रवतंक कबीर थे कबीर का व्यक्तित्व युग प्रवतंक और महान था कबीर जिस युग मे अवतरित हुए थे वह विडम्बनाओ,विपमताओ और विविध प्रकार के पारस्परिक विरोवो का युग था ।

17.9. बोध प्रश्न

1. निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग-परिचय दीजिये ।
2. ग्यान बिरह कौ अंग का परिचय दीजिये ।
3. नारी के संदर्भ में कबीरदास की जो विचार है उसके बारे में चर्चा कीजिए।।
4. साखी में कबीरदास ज्ञान बिरह के अंग के द्वारा विरह के बारे में बताया था इस के बारे में सोदाहरण चर्चा कीजिये ।

17.10. सहायक ग्रन्थ

1. कालजयी कबीर – संपादक – हर महेंद्र सिंह गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी , अमृतसर ।
2. कबीर साहित्य की परख – परशुराम चतुर्वेदी , भारती भण्डार , इलाहाबाद ।
3. कबीर – हजारी प्रसाद द्विवेदी राजकमल प्रकाशन , दिल्ली ।
4. हिन्दी काव्य में निर्गुण संप्रदाय – पीताम्बर दत्त बडथ्वाल अवध पब्लिशिंग हाउस , लखनऊ ।
5. कबीर : व्यक्तित्व , कृतित्व एवं सिद्धांत – सरनाम सिंह शर्मा , भारतीय शोध संस्थान , गुलावपुरा ।

डॉ. अन्नदासु. सरला देवी

18. चितावणी, सहज कौ अंग

18.0. उद्देश्य

संसार नश्वर और क्षणभंगुर है। इसके आकर्षनों में पड़कर ही मनुष्य परमात्मा को विस्मृत कर देता है। अतः प्रस्तुत अंग में संसार की नश्वरता और क्षणभंगुरता का वर्णन करते हुए कबीर ने मनुष्य को चेतावनी दी है कि वह इस संसार के विषयों में न पड़कर भगवान का स्मरण करता रहे। मानव जीवन के मूल्यों की बेहतरीन तरीके से व्याख्या के साथ भारतीय संस्कृति, भाषा और धर्म, आदि का भी बेहद अच्छे से वर्णन किया है। इस इकाई में चितावणी कौ अंग के दोहे और सहज कौ अंग के दोहों में वर्णित अंशों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

रूपरेखा

18.1 प्रस्तावना

18.2 चितावणी कौ अंग- अंग परिचय

18.3 चितावणी कौ अंग व्याख्या भाव

18.4 सहज कौ अंग – परिचय

18.5 सहज समाधि

18.6 सहज कौ अंग- दोहे

18.7 सारांश

18.8 बोध प्रश्न

18.9. सहायक ग्रंथ

18.1. प्रस्तावना

सत भक्ति करने से मनुष्यों को दैविक शक्तियां पूर्ण लाभ देती है और साधक परमेश्वर पर आश्रित रहने से बिना किसी चिंता के जीवन जीता है। सहज का शाब्दिक अर्थ है - 'एक साथ उत्पन्न' या 'बिना परिश्रम के प्राकृतिक रूप से उत्पन्न' है यह शब्द भारतीय तथा तिब्बती बौद्ध दर्शन में महत्वपूर्ण है। वह ज्ञान या चेतना-शक्ति जिससे आत्मा सदा आनन्द और शांति से सम्पन्न रहती है। इन वाणियों में सतगुरू की भूमिका प्रमाण सहित समझाई है।

18.2. चितावणी कौ अंग – अंग परिचय

सारांश नश्वर और क्षणभंगुर है। इसके आकर्षणों में पड़कर ही मनुष्य परमात्मा को विस्मृत कर देता है। अतः प्रस्तुत अंग में संसार की नश्वरता और क्षणभंगुरता का वर्णन करते हुए कबीर ने मनुष्य को चेतावनी दी है कि वह इस संसार के विषयों में न पड़कर भगवान् का स्मरण करता रहे।

संसार की नश्वरता और क्षणभंगुरता का वर्णन करते हुए कबीर कहते हैं कि यहाँ पर जो व्यक्ति आता है, वह केवल कुछ ही दिनों का मेहमान होता है और शीघ्र ही पुनः मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। चाहे किसी व्यक्ति के पास कितने ही ऐश्वर्य से परिपूर्ण साधन हों, किन्तु यदि फसके मन में भगवान की भक्ति नहीं है तो वे सब ऐश्वर्य व्यर्थ हैं, क्योंकि जिन महलों में कभी सातों स्वरों के साथ छत्तीसों राग गाये जाते थे- अर्थात अत्यन्त आमोद-प्रमोद हुआ करते थे, वे महल अब खाली पड़े हुए हैं और उन पर बैठकर कौवे बोल रहे हैं। इस संसार में जिसने भी जन्म लिया है वही मृत्यु को प्राप्त हुआ है। मृत्यु मनुष्य में कोई भेद-भाव नहीं रखती। उसके लिए चाहे कोई राज हो या रंक हो, अवसर आने पर सभी को अपना ग्रास बनाती है। इस शरीर में जो दस इन्द्रियाँ हैं, वे चोरों के समान हैं। जिस प्रकार चोर चुपके-चुपके सारा धन चुराकर ले जाते हैं, उसी प्रकार ये इन्द्रियाँ भी अनजाने मनुष्य के सारे सात्विक भावों को नष्ट करती रहती हैं। इन चोरों से मुक्ति मनुष्य को तभी मिल सकती है, जब यह ईश्वर नाम-स्मरण में तल्लीन हो जाये।

संसार की भाँति यह शरीर भी नश्वर और क्षणभंगुर है। इसके सौन्दर्य पर भी मनुष्य को कभी भी गर्व नहीं करना चाहिए क्योंकि यह तो उस टेसू के फूल के समान है जो चार दिन फूलकर फिर ठूंठ बन जाती है। इसी प्रकार इस शरीर का सौन्दर्य भी क्षणभंगुर है। जिस प्रकार सांप शीघ्र ही अपनी केंचुली छोड़ देता है, उसी प्रकार शीघ्र ही शरीर का सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। अतः इस अस्थि और चर्म से युक्त शरीर पर भूलकर भी गर्व नहीं करना चाहिए, क्योंकि जो मस्तक कभी ताजों से सुशोभित होते हैं, उन्हें भी एक दिन जंगल में सूने स्थान पर गड्ढे में पड़े हुए देखा गया है। जब मनुष्य मर जाता है तो उसका सारा शरीर जलकर भस्म हो जाता है और उसके सौन्दर्य के स्थान पर केवल मुट्ठी-भर राख कह जाती है। जब शरीर एक बार नष्ट हो जाता है तो वह फिर दोबारा नहीं आता। उसकी स्थिति उस मन्दिर जैसी होती है जो ढह कर धूलि-धूसरित हो जाता है और उसके स्थान पर लम्बी-लम्बी घासें उग आती हैं। वस्तुतः यह शरीर तो लाख के उस मन्दिर के समान है जो हीरे-मोतियों से तो जड़ हुआ है, किन्तु जिसकी आयु बहुत ही कम है, जो आग की एक चिनगारी से ही राख बन जाता है।

इस संसार में रहने वाले मनुष्य भी मूर्ख और धोखेबाज होते हैं। वे राम का नाम तो स्मरण करते नहीं हैं और दूसरे लोगों को ठगने में ही लगे रहते हैं। अतः मनुष्य यहाँ पर बड़ी-बड़ी इच्छाएँ लेकर आता है, किन्तु वह कर कुछ भी नहीं पता। हरि की भक्ति के बिना यह जीवन धिक्कारने के योग है, क्योंकि जिन लोगों ने हरि को विस्मृत कर दिया, उनकी गर्दन बगुले की भाँति सदैव लज्जा से नीचे झुकी रहती है।

अतः कबीरदास मनुष्य को चेतावनी देते हुए कहते हैं कि हे मनुष्य! तू संसार के विषय-वासनाओं से नहीं मिल सकता। इस शरीर के दो ही उद्देश्य हैं- भगवान की भक्ति और साधुओं का सेवा। यदि कोई व्यक्ति चाहे कि वह सांसारिक पदार्थों में लिप्त रहकर भी भक्ति करता रहे, तो यह समझना उसकी मूर्खता है, क्योंकि जिस प्रकार एक ही स्तभ से दो हाथी नहीं बाँधे जा सकते, सी प्रकार एक ही मन से प्रभु और संसार के प्रति अनुराग नहीं किया जा सकता। इन माया के आकर्षणों में पड़कर तो मनुष्य की स्थिति उस मनुष्य के समान हो जाती है जो अपने ही हाथों अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारता है। यह संसार विषम कष्टों एवं दुःखों से परिपूर्ण हाँ। यह एक विकट बंधन है जिसमें मनुष्य जाने-

अनजाने अपने को बन्दी बनाए रखता है। इन दुःखों से और इन बंधनों से छूटने का एकमात्र उपाय है भगवान की भक्ति करना। केवल राम-नाम की ओट लेकर ही मनुष्य इन दुःखों से तथा बंधनों से बच सकता है। इसके अतिरिक्त उसके लिए और कोई उपाय बचने का नहीं है।

इस संसार के सम्बन्ध भी झूठे और स्वार्थ पूर्ण हैं। यहाँ माता-पिता आदि के जो सम्बन्ध हैं, वे सब स्वार्थ से भरे हुए हैं और शीघ्र ही नष्ट होने वाले हैं। अतः कबीर संसार, जीवन, शरीर और सांसारिक सम्बन्धों की नश्वरता और क्षणभंगुरता का मार्मिक वर्णन करते हुए मनुष्य को चेतावनी देते हैं कि वह इन बन्धनों में न पड़ कर भगवान की भक्ति और साधुओं की संगति करे तभी उसका कल्याण होगा।

कबीर नौबति आपणीं, दिन दस लेहु बजाइ।

18.3. चितावणी कौ अंग- व्याख्या भाव

`कबीर' नौबत आपणी, दिन दस लेहु बजाइ।
ए पुर पाटन, ए गली, बहुरि न देखै आइ ॥1 ॥

भावार्थ – कबीर कहते हैं– अपनी इस नौबत को दस दिन और बजालो तुम। फिर यह नगर, यह पट्टन और ये गलियाँ देखने को नहीं मिलेंगी ? कहाँ मिलेगा ऐसा सुयोग, ऐसा संयोग, जीवन सफल करने का, बिगड़ी बात को बना लेने का
जिनके नौबति बाजती, मैंगल बंधते बारि।
एकै हरि के नाव बिन, गए जनम सब हारि ॥2॥

भावार्थ – पहर-पहर पर नौबत बजा करती थी जिनके द्वार पर, और मस्त हाथी जहाँ बँधे हुए झूमते थे। वे अपने जीवन की बाजी हार गये। इसलिए कि उन्होंने हरि का नाम-स्मरण नहीं किया।
इक दिन ऐसा होइगा, सब सूं पड़ै बिछोह।
राजा राणा छत्रपति, सावधान किन होइ ॥3॥

भावार्थ – एक दिन ऐसा आयगा ही, जब सबसे बिछुड़ जाना होगा। तब ये बड़े-बड़े राजा और छत्र-धारी राणा क्यों सचेत नहीं हो जाते ? कभी-न-कभी अचानक आ जाने वाले उस दिन को वे क्यों याद नहीं कर रहे ?
`कबीर' कहा गरबियौ, काल गहै कर केस।
ना जाणै कहाँ मारिसी, कै घरि कै परदेस ॥4॥

भावार्थ – कबीर कहते हैं -यह गर्व कैसा,जबकि काल ने तुम्हारी चोटी को पकड़ रखा है? कौन जाने वह तुम्हें कहाँ और कब मार देगा ! पता नहीं कि तुम्हारे घर में ही, या कहीं परदेश में।
बिन रखवाले बाहिरा, चिड़िया खाया खेत।
आधा-परधा ऊबरे, चेति सकै तो चेति ॥5॥

भावार्थ – खेत एकदम खुला पड़ा है, रखवाला कोई भी नहीं। चिड़ियों ने बहुत कुछ उसे चुग लिया है। चेत सके तो अब भी चेत जा, जाग जा , जिससे कि आधा-परधा जो भी रह गया हो, वह बच जाय।

कहा कियौ हम आइ करि, कहा कहैंगे जाइ।
इत के भये न उत के, चाले मूल गंवाइ ॥6॥

भावार्थ – हमने यहाँ आकर क्या किया ? और साईं के दरबार में जाकर क्या कहेंगे ? न तो यहाँ के हुए और न वहाँ के ही – दोनों ही ठौर बिगाड़ बैठे। मूल भी गवाँकर इस बाजार से अब हम बिदा ले रहे हैं।

`कबीर' केवल राम की, तू जिनि छाँड़े ओट।
घण-अहरनि बिचि लौह ज्यूं, घणी सहै सिर चोट ॥7॥

भावार्थ – कबीर कहते हैं, चेतावनी देते हुए — राम की ओट को तू मत छोड़, केवल यही तो एक ओट है। इसे छोड़ दिया तो तेरी वही गति होगी, जो लोहे की होती है , हथौड़े और निहाई के बीच आकर तेरे सिर पर चोट-पर-चोट पड़ेगी। उन चोटों से यह ओट ही तुझे बचा सकती है।

उजला कपड़ा पहरि करि, पान सुपारी खाहिं।
एकै हरि के नाव बिन, बाँधे जमपुरि जाहिं ॥8॥

भावार्थ – बढ़िया उजले कपड़े उन्होंने पहन रखे हैं, और पान-सुपारी खाकर मुँह लाल कर लिया है अपना। पर यह साज-सिंगार अन्त में बचा नहीं सकेगा, जबकि यमदूत बाँधकर ले जायंगे। उस दिन केवल हरि का नाम ही यम-बंधन से छुड़ा सकेगा।

नान्हा कातौ चित्त दे, महँगे मोल बिकाइ।
गाहक राजा राम है, और न नेड़ा आइ ॥9॥

भावार्थ – खूब चित्त लगाकर महीन-से-महीन सूत तू चरखे पर कात, वह बड़े महँगे मोल बिकेगा। लेकिन उसका गाहक तो केवल राम है , कोई दूसरा उसका खरीदार पास फटकने का नहीं।

मैं-मैं बड़ी बलाइ है, सकै तो निकसो भाजि।
कब लग राखौ हे सखी, रूई लपेटी आगि ॥10॥

भावार्थ – यह मैं -मैं बहुत बड़ी बला है। इससे निकलकर भाग सको तो भाग जाओ। अरी सखी, रुई में आग को लपेटकर तू कबतक रख सकेगी ? [राग की आग को चतुराई से ढककर भी छिपाया और बुझाया नहीं जा सकता।]

17.4. सहज कौ अंग - परिचय

कबीर के आविर्भाव से पूर्व नाथ और सिद्ध समुदाय काफी लोकप्रिय हो चुके थे। सहज साधक और सहज समाधि इन समुदायों के सर्वाधिक प्रचलित शब्द थे जो कबीर के समय तक आते-आते विकृत हो चुके थे। अर्थात लोग इन शब्दों का प्रयोग केवल जनता पर प्रभाव डालने के लिए ही करते थे। इनके प्रयोग पक्ष की ओर स्वयं उपदेष्टा भी ध्यान नहीं देते थे। प्रस्तुत अंग में कबीर ने बताया है कि सहज साधक कौन है , वे कहते हैं कि 'सहज' शब्द की रट तो सभी लोग लगाते रहते हैं , किन्तु सहज शब्द का अर्थ कोई नहीं जानता। जो साधक सहज रूप से सारे विषय-विकारों का त्याग कर देता है, पाँचों इंद्रियों को अपने वश में कर लेता है , वही –साधक कहलाता है और ऐसे ही साधक को सहज ही प्रभु का साक्षात्कार हो जाता है।

18.5. सहज समाधि

परमात्मा कबीर जी ने अपनी प्रिय आत्मा संत गरीबदास जी को तत्त्वज्ञान को पूर्ण रूप में बताया था। परमात्मा कबीर जी कहते हैं भक्त नाम का जाप करे तथा नाम के स्मरण में ध्यान लगाए। सतलोक के सुख को याद करके रह-रहकर उसकी प्राप्ति के बाद के आनंद की कल्पना करे। सतलोक के ऊपर ध्यान रहे, स्मरण करे, तब नाम पर ध्यान रहे। इसे सहज समाधि कहते हैं। उदाहरण के लिए - किसान हल चलाता हुआ बीज बो रहा होता है। कई किसानों के खेत एक गाँव से दूसरे गाँव को जाने वाले रास्ते पर होते हैं। किसान बीज भी बो रहा होता है। रास्ते पर चलते (पंथी) पैदल याटी आर यात्री से बातें भी कर रहा होता है। बीज के दाने उसी प्रकार जमीन में बो रहा होता है। उसके बीज बोने के ध्यान में कमी नहीं आती। बिना बात करे जिस औसत से दाने छोड़ रहा होता है, यात्री से बातें करते समय भी वह उसी औसत से बीज के दाने छोड़ता रहता है। उसमें अंतर नहीं आता। इसे सहज समाधि कहा जाता है।

अन्य उदाहरण ‘‘नट’’ यानि बाजीगर का बताया है। कबीर के वाणी है कि -

कबीर जैसे नटनी चढ़ै बांस पर, नटवा ढ़ोल बजावै जी।
इधर-उधर से निगाह बचाकर, ध्यान बांस में लावै जी॥

अर्थात् नट की पत्नी खेल करते समय लगभग 12-15 फुट लम्बे बाँस पर बिना जमीन में गाढ़े केवल जमीन के ऊपर रखकर उसके ऊपर चढ़ती है जो महासंतुलन का अनोखा खतरा भरा करतब होता है। पृथ्वी में गाड़कर भी बाँस पर चढ़ना कठिन है। वह तो बिना पृथ्वी में गाढ़े उसके ऊपर चढ़कर अंतिम सिरे पर पेट रखकर हाथ से भी बाँस को छोड़कर पैर भी सीधे कर लेती है। उसका पति ढ़ोल बजाकर उसके ध्यान को डिगाना चाहता है। दर्शक भी ताली पीट-पीटकर प्रसन्नता प्रकट करते हैं। परंतु नटनी सब ओर से ध्यान हटाकर अपनी सुरति बाँस पर रखती है। इसलिए अपना (कर्तब) चमत्कारी अनोखा कार्य करने में सफलता प्राप्त करती है। कहीं-कहीं नट यही कर्तब दिखाता है। अन्य ढ़ोल जोर-जोर से बजाता है। वह भी अपने ध्यान को बाँस में एकाग्र करके सफल हो जाता है। इसी प्रकार साधक को नाम के स्मरण में ध्यान एकाग्र करके जाप करना चाहिए। भले ही कोई गाना गा रहा है या गाने किसी यंत्र में चलाकर ऊँची आवाज से सुन रहा है। साधक का ध्यान उस ओर न जाए, यह सहज समाधि है।

अन्य उदाहरण दिया है (धम घृति) पत्थर में हीरे को बताने वाला ध्यान से उस पहाड़ के पास खड़ा हो जाता है जिसमें हीरा है। हीरा पत्थर को चीरकर किसी दिशा की ओर चल पड़ता है। धमघृती ध्यान से उसकी गति (movement) को जानता है। साथ में खड़े व्यक्ति अपनी बातें कर रहे होते हैं, परंतु धमघृती का ध्यान हीरे की चाल पर होता है। धमघृती बता देता है कि इतनी देर में हीरा इतने फुट फांसला (distance) तय करेगा। उसी अनुसार पहाड़ को काटा जाता है। उसकी गहराई (depth) भी धमघृती बता देता है। हीरा चलता-चलता उस पहाड़ के कटे हुए स्थान यानि खाई में गिर जाता है। हीरे का व्यापारी उसे प्राप्त कर लेता है। साधक को परमात्मा के नाम रूपी हीरे पर निंरतर ध्यान रखकर परमात्मा रूपी लाल को प्राप्त करना चाहिए।

18.6. सहज कौ अंग-दोहे

1. सहज सहज सबकौ कहै, सहज न चीन्है कोइ।
जिन्ह सहजै विषिया तजी, सहज कही जै सोइ॥1॥

सहज के विषय में सभी कोई बात करता है लेकिन सहज क्या है ? सहज किसे कहते हैं यह किसी ने चिन्हित नहीं किया है, जाना नहीं है। सहज वही है जिसने विषय विकारों का त्याग कर दिया हो, विषय वासनाओं के त्याग करने वाले को ही सहज कहा जा सकता है। विषय वासनाओं में लिप्त व्यक्ति को सहज नहीं कहा जा सकता है।

2. सहज सहज सबको कहै, सहज न चीन्हें कोइ।
पाँचू राखै परसती, सहज कही जै सोइ॥

भावार्थ : हर कोई सहज के विषय में बताता है, सरल ब्रह्म के विषय में बताता है लेकिन कोई भी सहज को नहीं जान पाया है, सहज क्या है। सहज को वही जान सकता है जो पाँचों इन्द्रयों को अपने वश में रखे और विषय विकारों से दूर रहे। सहज को जानने के लिए स्वंय पर नियंत्रण परम आवश्यक है।

3. सहजै सहजै सब गए, सुत बित कांमणि कांम।
एकमेक ह्वै मिलि रह्या, दास, कबीरा रांम॥

भावार्थ : संसार में प्रत्येक वस्तु नश्वर है, एक रोज उसे समाप्त हो ही जाना है। पुत्र की कामना, धन स्त्री ये सभी कामनाएं धीरे धीरे सभी समाप्त हो जाती हैं और के रोज कुछ नहीं बचता है तो वैराग्य उत्पन्न हो जाता है और भक्त अपने परमात्मा से मिलकर एकाकार हो जाता है।

4. सहज सहज सबको कहै, सहज न चीन्हैं कोइ।
जिन्ह सहजै हरिजी मिलै, सहज कहीजै सोइ॥

भावार्थ : सभी लोग सहज सहज कहते हैं, ईश्वर प्राप्ति को सहज कहते हैं, भक्ति को सहज कहते हैं लेकिन सहज को चिन्हित किसी ने किया नहीं है। सहज वही है जिसमे सहज माध्यम से हरी से मिलन हो सके, अन्यथा वह सहज नहीं है।

5. कबीर पूँजी साह की, तूँ जिनि खोवै ष्वार।
खरी बिगूचनि होइगी, लेखा देती बार॥

भावार्थ : जीव को संबोधित करते हुए साहेब की वाणी है की तुम क्यों मालिक की पूंजी को व्यर्थ में ही गँवा रहे हो ? जब परमात्मा को तुम अपने कर्मों का हिसाब दोगे तो तुम्हें बहुत ही कठिनाई होने वाली है। भाव है की यह मानव जीवन बहुत ही अमूल्य है यह परमात्मा की पूंजी है जिसे हमें व्यर्थ में नहीं गवां देना चाहिए क्योंकि इसका लेखा जोखा एक रोज तो ईश्वर लेंगे तब बहुत ही कठिनाई होगी इसलिए हरी सुमिरण ही इस जीवन का आधार है ।

6. लेखा देणाँ सोहरा, जे दिल साँचा होइ।

उस चंगे दीवाँन मैं, पला न पकड़े कोइ॥

भावार्थ : सत्य को आधार मान कर चलने वाला व्यक्ति ही खरा उतरता है। सांच को आधार मानने वाला व्यक्ति, दिल का सच्चा आदमी, इसके कर्मों का जब हिसाब होगा तो कोई उसका पल्ला नहीं पकड़ेगा, कोई उसे मुक्ति से नहीं रोकेगा। भाव है की सच्चे व्यक्ति की मुक्ति संभव है और सत्य के विरक्त व्यक्ति को अवश्य ही दण्डित होना पड़ेगा।

7. कबीर चित्त चमंकिया, किया पयाना दूरि।
काइथि कागद काढ़िया, तब दरिगह लेखा पूरि॥

भावार्थ : जब आत्मा दूर देश के लिया प्रयाण करती है तो चित्त खुश हो जाता है, जब चित्रगुप्त मेरे कर्मों के हिसाब का कागज निकालता है तो वह पूर्ण निकलता है तो चित्त प्रशन्न हो उठता है। भाव है की व्यक्ति सद्कर्मों के द्वारा अपने जीवन को सार्थक बना सकता है और मुक्ति को प्राप्त करता है। एक रोज सभी के कर्मों का हिसाब होना है इसलिए अपने कर्मों को व्यक्ति को श्रेष्ठ ही रखने चाहिए।

8. काइथि कागद काढ़ियां, तब लेखैं वार न पार ।
जब लग साँस सरीर मैं, तब लग राम सँभार ॥

भावार्थ : इस जीवन के रहते हुए राम नाम का सुमिरण कर लेना चाहिए। जब चित्रगुप्त के द्वारा तुम्हारे कर्मों का हिसाब होगा तब तुम्हारे कर्मों का कोई आर और पार नहीं होगा। इसलिए जब तक शरीर में सांस हैं तब तक तुम राम के नाम का सुमिरण कर लो। सद्मार्ग पर चलते हुए पापों के नाश के लिए राम के नाम का सुमिरण ही इस जीवन का आधार है।

9. यहु सब झूठी बंदिगी, बरियाँ पंच निवाज ।
साचै मारै झूठ पढ़ि, काजी करै अकाज ॥

भावार्थ : ऐसे व्यक्ति जो सत्य की राह पर नहीं चलते हैं और भक्ति का मात्र दिखावा करते हैं ऐसे लोग भले ही दिन में पाँच बार नमाज पढ़ लें, परमात्मा की प्रार्थना कर लें, सत्य की हत्या करके झूठी नमाज पढने से कोई लाभ नहीं है। ऐसी लोग अकाज करते हैं, यह अनर्थ ही है। भाव है की हरी का सुमिरण यदि करना है तो सच्चे हृदय से करना चाहिए, यदि बाह्याचार और आत्मा दोनों में समानता नहीं है तो कुछ भी लाभ नहीं होगा। इसलिए दिखावा मत करो सच्चे हृदय से भक्ति करो।

10. कबीर काजी स्वादि बसि, ब्रह्म हतै तब दोइ।
चढ़ि मसीति एकै कहै, दरि क्यूँ साचा होइ॥

भावार्थ : काजी मांसाहार करता है और जब बकरे को मारता है तो वह समझता है की ब्रह्म और जीव दोनों अलग अलग हैं लेकिन मस्जिद में खड़ा होकर वह कहता है की अल्लाह एक है तो उसे कैसे सच्चा मान लिया जाए। भाव है की धर्म के नाम पर जीव हत्या करना उचित नहीं है, जीव और ब्रह्म एक ही हैं इसलिए हमें जीव हत्या नहीं करनी चाहिए।

11 काजी मुलाँ भ्रमियाँ, चल्या दुनीं कै साथि ।

दिल थैं दीन बिसारिया, करद लई जब हाथि ॥

भावार्थ : काजी और मुल्ला दोनों ही भ्रम के शिकार हो गए हैं, वे दुनिया की देखा देखी ही चलने वाले हैं। इन्होने अपने दिल से मालिक को भुला दिया है जब ये अपने हाथों में पशु की बलि चढाने के लिए करद/कुठार हाथ में उठा लेते हैं। भाव है की जीव् हिंशा करना वह भी धर्म के नाम पर यह कोई धर्म नहीं सीखाता है। धर्म के नाम पर जीवों को मारने वाला हरी का भक्त कैसे हो सकता है। सभी जीवों को उनके जीवित रहने के अधिकार से हमें हमारे स्वार्थ के लिए वंचित नहीं करना चाहिए।

12 जोरी कलिर जिहै करै, कहते हैं ज हलाल ।
जब दफतर देखंगा दई, तब हैगा कौंण हवाल ॥

भावार्थ : मुस्लिम धर्म के अनुयाई धर्म के नाम पर पशुओं की हत्या करते हैं लेकिन उस समय क्या होगा जब इनके कर्मों का हिसाब होगा। भाव है की धर्म के नाम पर जीव हिंशा को उचित नहीं ठहराया जा सकता है।

13 जोरी कीयाँ जुलम है, माँगे न्याव खुदाइ ।
खालिक दरि खूनी खड़ा, मार मुहे मुहि खाइ ॥

भावार्थ : धरम के नाम पर हिंशा ठीक नहीं है, खुदा इसका न्याय अवश्य ही करेगा। जब खुदा के दरबार में व्यक्ति के कर्मों का हिसाब किया जाएगा तब उसे मुंह की खानी पड़ेगी। भाव है की जितना कष्ट वह दुसरे जीवों को दे चूका है उतने ही कष्ट उसे भी सहन करने पड़ेंगे, इसलिए धर्म के नाम पर हिंशा नहीं करनी चाहिए।

14 साँई सेती चोरियाँ, चोराँ सेती गुझ ।
जाँणैगा रे जीवड़ा, मर पड़ैगी तुझ ॥

भावार्थ : जीव तुम हरी के समक्ष चोरी करते हो, हरी के रहते चोरी करते हो और चोरों से दोस्ती रखते हो, यहाँ इन्द्रियों को चोर बताया गया है। जीव तुझे उस रोज समझ में आएगी, जान पड़ेगी जब तुमको हरी के हाथों मार पड़ेगी। भाव है की हमें इन्द्रियों से सतर्क रहने की जरुरत है और हरी का सुमिरण करते रहना चाहिए।

15 सेष सबूरी बाहिरा, क्या हज काबैं जाइ ।
जिनकी दिल स्याबति नहीं, तिनकौं कहाँ खुदाइ ॥

भावार्थ : सेख जब तुम्हारे हृदय में, दिल में स्थायित्व नहीं है, सबर नहीं है तो हज का क्या फायदा है ? क्या ऐसे में तुमको खुदा की प्राप्ति होगी ? भाव है की हमें अपने दिल को सच्चा रखना चाहिए ऐसा नहीं की दिल में कुछ तथा आचरण में कुछ और ही। सच्चे हृदय से हरी का सुमिरण करते हुए नेक राह पर चलना ही मुक्ति का मार्ग है, बाकि सभी बाह्याचार और दिखावा हमें भक्ति की और नहीं लेकर जाता है।

16 खूब खाँड है खोपड़ी, माँहि पड़ै दुक लूँण ।
पेड़ा रोटी खाइ करि, गला कटावै कौंण ॥

भावार्थ : यदि खिचड़ी में थोडा सा नमक मिला दे तो वह और अधिक स्वादिष्ट हो जाती है ऐसे में पेडा और रोटी खाकर कौन गला कटावे ? भाव है की हमें सादा जीवन गुजर बसर करना चाहिए।

17 पापी पूजा बैसि करि, भषै माँस मद दोइ ।
तिनकी दष्या मुकति नहीं, कोटि नरक फल होइ ॥

भावार्थ : पापी लोग पूजा के नाम पर मांस और मदिरा का सेवन करते हैं और इनके इस आचरण पर उन्हें मुक्ति नहीं मिलती है तथा करोड़ों नरक की यातनाएं भी सहन करनी पड़ती हैं। भाव है की हमें धरम के नाम पर किसी भी प्रकार की हिंशा नहीं करनी चाहिए और हरी के नाम का सुमिरण करना चाहिए।

18 सकल बरण इकत्रा है, सकति पूजि मिलि खाँहिं।
हरि दासनि की भ्रांति करि, केवल जमपुरि जाँहिं ॥

भावार्थ : शाक्य लोग इकठ्ठा होकर शक्ति पूजा करते हैं और पशु की बलि देकर उसका मांस खाते हैं, यह उनका भ्रम है की वे ईश्वर के भक्त हैं जाना उनको नरक में ही है।

19 कबीर लज्या लोक की, सुमिरै नाँही साच।
जानि बूझि कंचन तजै, काठा पकड़े काच ॥

भावार्थ : व्यक्ति लोक लाज के कारण सत्य की राह को छोडकर कुरीतियों का पालन करता है और जानबूझ कर सोने को छोडकर काठ को पकड़ लेता है। भाव है की हम स्वर्ण को छोडकर काठ के पीछे लगे रहते हैं। हरी नाम का सुमिरण ही स्वर्ण है बाकी सब व्यर्थ हैं।

20 कबीर जिनि जिनि जाँणियाँ, करत केवल सार ।
सो प्राणी काहै चलै, झूठे जग की लार ॥

भावार्थ : जिन लोगों ने यह समझ लिया है की इस जगत का करता धर्ता केवल एक ब्रह्म ही है वे इस जगत का पीछा नहीं करते हैं और उनकी राह प्रथक होती है। भाव है की जिसको यह ज्ञान हो गया है की पूर्ण ब्रह्म ही इस जगत का करता धर्ता है वे कुरीतियों और पाखण्ड और कर्मकांड को नहीं करते हैं और सच्चे हृदय से हरी के नाम का सुमिरण करते हैं जो एकमात्र मुक्ति का द्वार है।

21 झूठे को झूठा मिलै, दूणाँ बधै सनेह ।
झूठे कूँ साचा मिलै, तब ही तूटै नेह ॥

भावार्थ : यदि झूठे को, किसी पाखंडी को ईश्वर के मार्ग से विमुख है उसे दूसरा उसके जैसा ही पाखंडी और झूठा मिलता है तो दोनों में अधिक स्नेह बढ़ जाता है। यदि इन झूठों को कोई सत्य के मार्ग पर चलने वाला मिल जाए तो इनका स्नेह टूटने लगता है।

18.8. सारांश

कबीरदास मनुष्य को चेतावनी देते हुए कहते है कि हे मनुष्य ! तू संसार के विषय – वासनाओं को छोड़कर हरि कि भक्ति में लग जा , क्योंकि यह मनुष्य शरीर फिर तुझे दोबारा आसानी से नहीं मिल सकता। इस शरीर के दो ही उद्देश्य हैं – भगवान की भक्ति और साधुओं की सेवा। यदि कोई व्यक्ति चाहे कि वह संसारिक पदार्थों में लिप्त रहकर भी भक्ति करता रहे , तो यह समझना उसकी मूर्खता है , क्योंकि जिस प्रकार एक ही स्तम्भ से दो हाथी नहीं बांधे जा सकते , उसी प्रकार एक ही मन से प्रभु और संसार के प्रति अनुराग नहीं किया जा सकता। इन माया के आकर्शनों में पड़कर तो मनुष्य की स्थिति उस मनुष्य के समान हो जाती है जो अपने ही हाथों अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारता है। यह संसार विषय कष्टों एवं दुःखों से परिपूर्ण है। इन दुःखों से और इन बंधनों से छूटने का एकमात्र उपाय है भगवान की भक्ति करना। केवल राम –नाम की ओट लेकर ही मनुष्य इन दुःखों से तथा बंधनों से बच सकता है। इसके अतिरिक्त उसके लिए और कोई उपाय बचाने का नहीं है।

इस संसार के संबंध भी झूठे और स्वार्थपूर्ण हैं। यहाँ मता –पिता आदि के जो संबंध हैं , वे सब स्वार्थ से भरे हुए हैं और शीघ्र ही नष्ट होने वाले हैं। अतः कबीर संसार , जीवन , शरीर और सांसरिक संबंधों की नश्वरता और क्षण भंगुरता का मार्मिक वर्णन करते हुए मनुष्य को चेतावनी देते हैं कि वह इन बंधनों में ण पड कर भगवान की भक्ति और साधुओं की संगति करे तभी उसका कल्याण होगा।

परमात्मा के सब जीव हैं। दोनों धर्म (हिन्दू तथा मुसलमान) हमारे हैं। एक परमात्मा के दायीं ओर जानो, दूसरा बायीं ओर। दोनों के मध्य में परमात्मा निवास करता है। कबीर जी स्वयं ही सृष्टि के रचयिता हैं। अविनाशी (बड़) बड़ा (अल्लाह) परमात्मा हैं। राम कहो, रहीम कहो। (करीम) दयालु हैं। (किजो सुरति निगाह) ध्यान से देखो यानि विचार करो। परमात्मा (नर) मानव रूप में हैं। सबका (धनी) मालिक सर्वव्यापक है।

कोई तो मुर्दे को पृथ्वी में गाड़ देता है। कब्र बनाता है। कोई अग्नि में जला देता है। यह सब मुझे (कबीर परमेश्वर जी को) अच्छा नहीं लगता। पूर्ण मुक्ति प्राप्त करो। वह तो (परमात्मा) चारों दागों में नहीं आता। एक जमीन में गाड़ते हैं। एक धर्म अग्नि में जला देता है। एक जल प्रवाह कर देता है। एक जंगल में पक्षियों के खाने के लिए डाल देता है। ये चार दाग कहे जाते हैं। परंतु परमात्मा कबीर जी किसी दाग में नहीं आया अर्थात् अजर-अमर है कबीर जी। परमात्मा के कोई माता-पिता नहीं हैं। उनके जन्म का कहीं पर प्रमाण नहीं है। कबीर परमात्मा पूर्ण ब्रह्म भक्तों को (अमान) शांति प्रदान करता है। आत्मा तथा परमात्मा की एक जैसी छवि है। बीच में पाप कर्मों का (झांई) मैल है। इसलिए परमात्मा जीव से दूर कहा जाता है । परमात्मा तो पूर्ण ब्रह्म बताया है। आत्मा जीव धर्म से जन्मती-मरती है। इसलिए जीव धर्म में है।

18.9. बोध प्रश्न

1. चितावणी कौ अंग – परिचय कीजिये।
2. सहज कौ अंग – परिचय कीजिये।
3. कबीर की काव्य में चेतावनी भावना क्या है ? वर्णन कीजिये।
4. 'सहज सहज सबको कहै' अर्थ को स्पष्ट कीजिये।

18.10. सहायक ग्रन्थ

1. कबीर की विचार धारा – गोविन्द त्रिगुणय , साहित्यनिकेतन, कानपुर ।
2. हिन्दी का निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि-डॉ. गोविन्द त्रिगुनायत, साहित्यनिकेतन कानपुर।
3. निर्गुण काव्य : प्रेरणा और प्रवृत्ति – डॉ. रामपाण्डेय, सद्भाव निरंजन, प्रकाशन, दिल्ली।
4. संतों की सांस्कृतिक संसुती – डॉ. राज रतन पाण्डेय, उपकार प्रकाशन, दिल्ली।
5. कबीर मीमांसा – डॉ . रामचन्द्र तिवारी – लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
6. कालजयी कबीर – संपादक – हर महेंद्र सिंह गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी, अमृतसर।

डॉ . यम. मंजुला

305HN21

Model Paper

M.A. (Hindi)

Third Semester

Paper V-SPECIAL STUDY OF AN AUTHOR

KABIRDAS

Time: Three hours **Maximum: 70 marks**

विशेष अध्ययन - कबीरदास

प्रथम प्रश्न अनिवार्य है। (4x71/2 = 30)

अन्य प्रश्नों में से किन्हीं चार के उत्तर दीजिए। (4 × 10 = 40)

1. सप्रसंग व्याख्या कीजिए।

(a) (i) सतगुरु की महिमा अनंत किया उपगार।
लोचन अनंत उपाड़िया, अनंत दिखावणहार ॥

अथवा

(ii) गुरु गोविंद तो एक है, दूजा यह आकार।
आपा मेट जीवत मरे, तो पाण करतार ॥

(b) (i) सतगुरू हम सूं रीझि करि, एक कहया प्रसंग।
बरस्या बादल प्रेम का भीजि गया सब अंग ॥

अथवा

(ii) रात्यूँ रानी बिरहनी, ज्यूँ बंची कुँ कुँज।
कबीर अंतर प्रजल्या, प्रगटया बिरहा पुंज ॥

(c) (i) सुखिया सब संसार है, खाये अरू सौवै।
दुखिया दास कबीर है, जागे अरू रौवे ॥

अथवा

(ii) कबीर बादल प्रेम का हम परि बरष्या आई।
अंतरि भीगी आत्माँ हरी भई बनराई ॥

(d) (i) अब तोहि जान न देहुँ राम पियारे, ष्युँ भावै त्युं होहु हमारे।
बहुत दिनन के बिछुरे हरि पाये, भाग बड़े घरि बैठे आये ॥

चरननी लागि करौं बरियायी, प्रेम प्रीति राखौं उरझाई।

इत अन मंदिर रहौ नित चीपै, कहै कबीर करहु मति घोषै॥

अथवा

(ii) संती भाई आईग्यान की आँधी रे।

भ्रम की टाटी सबै उडाँणी, माया रहै न बाँधी।

हिति चित की दवै युँनी, गिरानी, मोह बलिंजा तुटा।

त्रिस्नाँ छाँनि पारि घर ऊपरि, कुबधि का माँडाँ फुटा॥

2. (a) संत काव्य परंपरा में कबीर के स्थान को निर्धारित कीजिए।

अथवा

(b) कबीर की युगीन परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए।

3. (a) कबीर की जीवनी एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए।

अथवा

(b) समाज सुधारक के रूप में कबीर का परिचय दीजिए।

4. (a) कबीर की दार्शनिक विचारधारा पर लेख लिखिए।

अथवा

(b) गुरु के संबंध में कबीर के विचारों को स्पष्ट कीजिए।

5. (a) किन्हीं **दो** पर टिप्पणियाँ लिखिए।

(i) कबीर के योग संबंधी विचार।

(ii) कबीर का काव्य-शिल्प।

(iii) कबीर की उलटबांसियाँ।

(iv) भक्ति आंदोलन और कबीर।

अथवा

(b) किन्हीं **दो** पर टिप्पणियाँ लिखिए।

(i) निर्गुण भक्ति और कबीर।

(ii) कबीर की प्रासंगिकता।

(iii) कबीर की भक्ति भावना।

(iv) ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रवर्तक कबीर।